हिन्दी परामर्श समिति ग्रन्थमाला—१

भारतीय ज्योतिष का इतिहास

लेखक
गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन)
रीडर, गणित विभाग इलाहाबाद युनिवर्सिटी

प्रकाशन ब्यूरो
उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ

प्रथम संस्करण
१९५६

मूल्य
चार रुपये

मुद्रक
टेकनिकल प्रेस प्रयाग

प्रकाशकीय

भारत की राजभाषा के रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा के पश्चात् यद्यपि इस देश के प्रत्येक जन पर उसकी समृद्धि का दायित्व है किन्तु इससे हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के विशेष उत्तरदायित्व में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। हमें संविधान में निर्धारित अवधि के भीतर हिन्दी को न केवल सभी राज कार्यों में व्यवहृत करना है उसे उच्चतम शिक्षा के लिए भी परिपुष्ट बनाना है। इसके लिए अपेक्षा है कि हिन्दी में वाङ्मय के सभी अवयवों पर प्रामाणिक ग्रन्थ हों और यदि कोई व्यक्ति केवल हिन्दी के माध्यम से ज्ञानार्जन करना चाहे तो उसका मार्ग अवरुद्ध न रह जाय।

इसी भावना से प्रेरित होकर उत्तर प्रदेश शासन ने अपने शिक्षा विभाग के अन्तर्गत साहित्य को प्रोत्साहन देने और हिन्दी के ग्रन्थों के प्रणयन की एक योजना परिचालित की है। शिक्षा विभाग की अध्यक्षता में एक हिन्दी परामर्श समिति की स्थापना की गयी है। यह समिति विगत वर्षों में हिन्दी के ग्रन्थों को पुरस्कृत करके साहित्यकारों का उत्साह बढ़ाती रही है और अब इसने पुस्तक प्रणयन का कार्य आरम्भ किया है।

समिति ने वाङ्मय के सभी अंगों के सम्बन्ध में पुस्तकों का लेखन और प्रकाशन कार्य अपने हाथ में लिया है। इसके लिए एक पंच वर्षीय योजना बनायी गयी है जिसके अनुसार ५ वर्षों में ३०० पुस्तकों का प्रकाशन होगा। इस योजना के अन्तर्गत प्रायः वे सब विषय ले लिये गये हैं जिन पर संसार के किसी भी उन्नतिशील साहित्य में ग्रन्थ प्राप्त हैं। इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि इनमें से प्राथमिकता उन्हीं विषयों अथवा उन विषयों में दी जाय जिनकी हिन्दी में नितान्त कमी है।

भूमिका

यह पुस्तक लोकप्रिय साहित्य की श्रेणी की है। इसमें किसी नवीन खोज का या वर्तमान ज्ञान के सभी ब्योरों का विवरण देने की चेष्टा नहीं की गयी है। लक्ष्य यह रहा है कि पाठक विषय को सुगमता से समझ सके और सब महत्वपूर्ण बातों को जान सके। मुझे आशा है कि ज्योतिष न जानने वाले भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकेंगे क्योंकि ज्योतिष में जो पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हुए हैं सरल रीति से समझा दिये गये हैं।

इस पुस्तक के प्रथम भाग अध्याय लिखने में शंकर बालकृष्ण दीक्षित के अपूर्व मराठी ग्रंथ 'भारतीय ज्योतिषशास्त्र अथवा भारतीय ज्योतिषशास्त्राचा प्राचीन आणि अर्वाचीन इतिहास" से विशेष सहायता मिली है। ज्योतिष के प्रकांड विद्वान स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने मेरे आग्रह से मेरी पुस्तक "सरल विज्ञान सागर" के लिए एक लेख भारतीय ज्योतिष पर लिखा था। मैंने उसका भी विशेष उपयोग किया है। अधिकांश संस्कृत श्लोकों के जो अर्थ यहाँ छापे गये हैं उनके लिए मैं श्री गंगा प्रसाद उपाध्याय, श्री क्षेत्रेशचंद्र चट्टोपाध्याय अथवा डाक्टर आद्या प्रसाद मिश्र का ऋणी हूँ। पृष्ठ-संशोधन में डाक्टर कृपाशंकर शुक्ल ने बड़ी सहायता की है जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। श्री के महोदय की "जयसिंह की ज्योतिष वेधशालाएँ" नामक अंग्रेजी पुस्तक से मैंने कुछ चित्र लिये हैं और मैं उनका अनुगृहीत हूँ।

गोरख प्रसाद

प्रदेशीय सरकार द्वारा प्रकाशन का काम आरम्भ करने का यह आशय नहीं है कि व्यवसाय के रूप में यह कार्य हाथ में लिया गया है। हम केवल ऐसे ही ग्रन्थ प्रकाशित करना चाहते हैं जिनका प्रकाशन कतिपय कारणों से अन्य स्थानों से नहीं हो पाता। हमारा विश्वास है कि इस प्रयास को सभी क्षेत्रों से सहायता प्राप्त होगी और भारती के भंडार को परिपूर्ण करने में उत्तर प्रदेश का शासन भी किंचित योगदान देने में समर्थ होगा।

भगवती शरण सिंह
सचिव
हिन्दी परामर्श समिति

अध्याय १

प्रारम्भिक बातें

ज्योतिष की महत्ता

भारतीय ज्योतिष का प्राचीनतम इतिहास सुदूर भूतकाल के गर्भ में छिपा हुआ है। वैदिक ऋग्वेद आदि अति प्राचीन ग्रंथों के स्फुट वाक्यांशों से आभास मिलता है कि उस समय ज्योतिष का ज्ञान कितना रहा होगा।

ज्योतिष का अध्ययन अनिवार्य था। जंगली जातियों में भी ज्योतिष का थोड़ा-बहुत ज्ञान रहता ही है क्योंकि इसकी आवश्यकता प्रति दिन पड़ा करती है इसलिए आर्यों के ज्योतिष-ज्ञान का समुन्नत स्थिति में पहुँचना आश्चर्य की बात नहीं है। ज्योतिष का विशेष रूप से अध्ययन उस समय भी होता था इसका प्रमाण यह है कि यजुर्वेद में 'नक्षत्रदर्श' (=ज्योतिषी) की चर्चा है। छांदोग्य उपनिषद में नक्षत्रविद्या का उल्लेख है। ज्योतिष अति प्राचीन काल से वेद के छः अंगों में गिना जाता रहा है।

ज्योतिष के ज्ञान की आवश्यकता कृषकों को भी पड़ती है और पुजारियों को भी। यों तो सभी को समय-समय पर ऐसी बातों के जानने की आवश्यकता पड़ जाती है जिसे ज्योतिषी ही बता सकता है परन्तु कृषक विशेष रूप से जानना चाहता है कि पानी कब बरसेगा और फसलों के बोने का समय आ गया या नहीं। पुजारी तो बहुत-सी बातें जानना चाहता है। प्राचीन समय में साल-साल भर तक चलनेवाले यज्ञ हुआ करते थे और अवश्य ही वर्ष में नियत दिन होते हैं। वर्ष कब आरम्भ हुआ कब समाप्त होगा यह सब जानना बहुत आवश्यक था।

[1] ३।१९ ।
[2] ७।१।२ ७।१।४ ७।२।१ ७।७।१ ।
[3] आपस्तंब धर्मसूत्र २।४।८।१ ।

विषय-सूची

अध्याय १

प्रारम्भिक बातें

ज्योतिष की महत्ता

भारतीय ज्योतिष का प्राचीनतम इतिहास सुदूर भूतकाल के गर्भ में छिपा हुआ है। केवल ऋग्वेद आदि अति प्राचीन ग्रंथों के स्फुट वाक्यांशों से आभास मिलता है कि उस समय ज्योतिष का ज्ञान कितना रहा होगा।

ज्योतिष का अध्ययन अनिवार्य था। जंगली जातियों में भी ज्योतिष का थोड़ा-बहुत ज्ञान रहता ही है क्योंकि इसकी आवश्यकता प्रति दिन पड़ा करती है इसलिए आर्यों के ज्योतिष-ज्ञान का समुन्नत स्थिति में पहुँचना आश्चर्य की बात नहीं है। ज्योतिष का विशेष रूप से अध्ययन उस समय भी होता था इसका प्रमाण यह है कि यजुर्वेद में 'नक्षत्रदर्श' (=ज्योतिषी) की चर्चा है। छांदोग्य उपनिषद में नक्षत्रविद्या का उल्लेख है[2]। ज्योतिष अति प्राचीन काल से वेद के छः अंगों में गिना जाता रहा है[3]।

ज्योतिष के ज्ञान की आवश्यकता कृषक को भी पड़ती है और पुजारियों को भी। यों तो सभी को समय-समय पर ऐसी बातों के जानने की आवश्यकता पड़ जाती है जिसे ज्योतिषी ही बता सकता है परन्तु कृषक विशेष रूप से जानना चाहता है कि पानी कब बरसेगा और बीजों के बोने का समय आ गया या नहीं। पुजारी तो बहुत-सी बातें जानना चाहता है। प्राचीन समय में साल-साल भर तक लगातार यज्ञ हुआ करते थे और अवश्य ही वर्ष में कितने दिन होते हैं वर्ष कब आरम्भ हुआ कब समाप्त होगा यह सब जानना बहुत आवश्यक था।

[1] १ ।१ ।

[2] ७।१।२ ७।१।४ ७।२।१ ७।७।१ ।

[3] आपस्तंब धर्मसूत्र २।४।८।१ ।

आजकल पंचांग इतना सुलभ हो गया है और उसके नियम इतने सुगम हो गये हैं कि इसकी कल्पना ही प्रायः असम्भव है कि अत्यन्त प्राचीन समय में क्या-क्या कठिनाइयाँ पड़ती रही होंगी। इसलिए इस प्रश्न पर विचार करना कि प्राचीनतम ज्योतिषी का वातावरण कैसा रहा होगा लाभदायक होगा।

समय की तीन एकाइयाँ

प्राचीनतम मनुष्य ने भी देखा होगा कि दिन के पश्चात् रात्रि, रात्रि के पश्चात् दिन होता है। एक रातदिन—ज्योतिष की भाषा में एक अहोरात्र और साधारण भाषा में केवल दिन—समय नापने की ऐसी एकाई थी जो मनुष्य के ध्यान के सम्मुख बरबस उपस्थित हुई होगी। परन्तु कई कामों के लिए यह एकाई बहुत छोटी पड़ी होगी। उदाहरणतः बच्चे की आयु कौन जोड़ता चलेगा कि कितने दिन की हुई। सौ दिन के ऊपर असुविधा होने लगी होगी।

सौभाग्यवश एक दूसरी एकाई थी जो प्रायः इतनी ही महत्त्वपूर्ण थी। लोगों ने देखा होगा कि चन्द्रमा घटता-बढ़ता है। कभी वह पूरा गोल दिखायी पड़ता है, कभी वह अदृश्य भी रहता है। एक पूर्णिमा से दूसरी तक या एक अमावस्या से दूसरी तक के समय को एकाई मानने में सुविधा हुई होगी। यह एकाई—एक मास या एक चान्द्र मास—कई कामों के नापने में सुविधाजनक रही होगी, परन्तु सबके नहीं। कुछ दीर्घ काल जैसे बालक-बालिकाओं की आयु बताने में मासों का उपयोग भी असुविधाजनक प्रतीत हुआ होगा। इससे भी बड़ी एकाई की आवश्यकता पड़ी होगी।

परन्तु लोगों ने देखा होगा कि ऋतुएँ बार-बार एक विशेष क्रम में आती रहती हैं—जाड़ा, गरमी, बरसात; फिर जाड़ा, गरमी, बरसात; और सदा यही क्रम लगा रहता है। इसलिए लोगों ने बरसातों की संख्या बताकर काल-मापन आरम्भ किया होगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वर्ष शब्द की उत्पत्ति वर्षा से हुई है, और वर्ष के पर्यायवाची शब्द प्रायः सभी ऋतुओं से सम्बन्ध रखते हैं, जैसे शरद, हेमन्त, वत्सर, संवत्सर, अब्द, इत्यादि। शरद और हेमन्त दोनों का सम्बन्ध जाड़े की ऋतु से है; वत्सर और संवत्सर से अभिप्राय है वह काल जिसमें सब ऋतुएँ एक बार आ जायँ। अब्द का अर्थ जल देने वाला या बरसात है।

समय की एकाइयों में सम्बन्ध

सैकड़ों वर्षों तक अहोरात्र, मास और वर्ष के सम्बन्ध को सूक्ष्म रूप से जाने बिना ही काम चल गया होगा, परन्तु जैसे-जैसे गणित का ज्ञान बढ़ा होगा, जैसे-जैसे राजकाज में क्रमबद्ध आय-व्यय का लेखा वर्षों तक रखने की आवश्यकता पड़ी होगी या लम्बे

परन्तु यह मानने में कि मास में बराबर ठीक तीस दिन के होते हैं एक विशेष कठिनाई पड़ती रही होगी। वस्तुतः एक महीने में लगभग २९½ दिन होते हैं। इसलिए यदि कोई बराबर तीस-तीस दिन का महीना गिनता चला जाय तो ३१ दिन में लगभग १ दिन का अन्तर पड़ जायगा। यदि पूर्णिमा से मास आरम्भ किया जाय तो जब बारहवें महीने का अन्त तीस-तीस दिन बारह बार लेने से आवेगा तब आकाश में पूर्णिमा के बदले अधकटा चन्द्रमा रहेगा। इसलिए यह कभी भी माना नहीं जा सकता कि लगातार बारह महीने तक तीस-तीस दिन का महीना माना जाता था।

मास में दिनों की संख्या

पूर्णिमा ऐसी घटना नहीं है जिसके घटित होने का समय केवल चन्द्रमा की आकृति को देखकर कोई पल-विपल तक बता सके। यदि इस समय चन्द्रमा गोल जान पड़ता है तो कुछ मिनट पहले भी वह गोल जान पड़ता रहा होगा और कुछ मिनट बाद भी वह गोल ही जान पड़ेगा। मिनटों की क्या बात कई घण्टों में भी अधिक अन्तर नहीं दिखायी पड़ता। इसलिए एक मास में २९½ दिन के बदले ३० दिन मानने पर महीने दो महीने तक तो कुछ कठिनाई नहीं पड़ी होगी परन्तु ज्योंही लोगों ने लगातार गिनाई आरम्भ की होगी उनको पता चला होगा कि प्रत्येक मास में तीस दिन मानते रहने से साल भर में गणना और वेध में एकता नहीं रहती। जब गणना कहती है कि मास का अन्त हुआ तब आकाश में चन्द्रमा पूर्ण गोल नहीं रहता जब वेध बताता है कि आज पूर्णिमा है तब गणना बताती है कि अभी महीना पूरा नहीं हुआ।

अवश्य ही कोई उपाय रहा होगा जिससे लोग किसी-किसी महीने में केवल २९ दिन मानते रहे होंगे। इन २९ दिन वाले महीनों के लिए ऋग्वेद के समय में क्या नियम था यह अब जाना नहीं जा सकता परन्तु कुछ नियम रहे अवश्य होंगे। पीछे तो भारतीय ज्योतिष में ऐसे पक्के नियम बन गये कि लोग उन नियमों के दास बन गये ऐसे दास कि आज भी हिन्दू ज्योतिषी तभी ही पूर्णिमा मानते हैं जब उनकी गणना कहती है कि पूर्णिमा हुई, चाहे वेध (आँख से देखी बात) कुछ बतावे। मुसलमान वेध के भक्त हैं गणित के। चाहे गणना कुछ भी कहे जब तक मुसलमान ईद के चाँद को आँखों से देख न लेगा—चाहे निजी आँखों से चाहे विश्वस्त पुजारियों की आँखों द्वारा—वह ईद मनायगा ही नहीं। परन्तु आज का हिन्दू डेढ़ हजार वर्ष पहले के बने नियमों का इतना भक्त है कि वह वेध को माप में तोलने के लिए

उद्धृत है। दृश्यमान—गणना में ऐसा सुधार करना कि उससे वही परिणाम निकले जो वेध से प्राप्त होता है—आज के प्रायः सभी पंडितों को पाप-सा प्रतीत होता है। वेध की अवहेलना अभी इसलिए किसी जा रही है कि सूर्य-सिद्धान्त के गणित से निकले परिणाम और वेध में अभी कष्ट दो कष्ट से अधिक का अन्तर नहीं पड़ता और कष्टे दो कष्टे आगे या पीछे पूर्णिमा बतान से साधारण मनुष्य साधारण अवसरों पर गलती पकड़ नहीं पाता। इसी से काम चला आ रहा है। ग्रहण के अवसरों पर अवश्य कष्ट भर की गलती सुगमता से पकड़ी जा सकती है। परन्तु पण्डितों ने चाहे वे कितने भी कट्टर प्राचीन मतावलम्बी हों, ग्रहणों की गणना आधुनिक पाश्चात्य रीतियों से करना स्वीकार कर लिया है। अस्तु। चाहे आज का पंडित कुछ भी कर ऋग्वेद के समय के लोग हाथ भर तक किसी भी प्रकार तीस दिन ही प्रति मास न मान सके होंगे। सम्भवतः कोई नियम रहा होगा, एसे नियम वेदांग ज्योतिष में दिये हैं और उनकी चर्चा नीचे की जायगी। परन्तु यदि कोई नियम न रहे होंगे तो कम-से-कम अपनी आँखों देखी पूर्णिमा के आधार पर उस काल के ज्योतिषी समय-समय पर एक-दो दिन छोड़ दिया करते रहे होंगे।

वर्ष में कितने मास

यह तो हुआ मास में दिनों की संख्या का हिसाब। अब यह प्रश्न अवश्य उठता होगा कि वर्ष में कितने मास होते हैं। यहाँ पर कठिनाई और अधिक पड़ी होगी। पूर्णिमा की तिथि वेध से निश्चित करने में एक दिन या अधिक से अधिक दो दिन की अशुद्धि हो सकती है। इसलिए बारह या अधिक मासों में दिनों की संख्या गिनकर पकड़ना कैसा पर कि एक मास में कितने दिन होते हैं, अधिक त्रुटि नहीं रह जाती है।

परन्तु यह पता लगाना कि वर्षाऋतु कब आरम्भ हुई या वसन्तऋतु कब आयी सरल नहीं है। पहला पानी किसी साल बहुत पहले किसी साल बहुत पीछे गिरता है। इसलिए वर्षाऋतु के आरम्भ को वेध से ऋतु को देखकर निश्चित करने में पन्द्रह दिन की त्रुटि हो जाना साधारण-सी बात है। बहुत काल तक पता ही न चला होगा कि एक वर्ष में ठीक-ठीक कितने दिन होते हैं। आरम्भ में लोगों की यही धारणा रही होगी कि वर्ष में मासों की संख्या कोई पूर्ण संख्या होगी। बारह ही

क्योंकि चन्द्रग्रहण का मध्य पूर्णिमा पर और सूर्यग्रहण का मध्य अमावस्या पर ही हो सकता है।

परन्तु यह मानने में कि मास में बराबर ठीक तीस दिन के होते हैं एक विशेष कठिनाई पड़ती रही होगी। वस्तुतः एक महीने में लगभग २९½ दिन होते हैं। इसलिए यदि कोई बराबर तीस-तीस दिन का महीना गिनता चला जाय तो ११ दिन में लगभग ६ दिन का अन्तर पड़ जायगा। यदि पूर्णिमा से मास आरम्भ किया जाय तो जब बारहवें महीने का अन्त तीस-तीस दिन बारह बार लेने से आवेगा तब आकाश में पूर्णिमा के बदले अधकटा चन्द्रमा रहेगा। इसलिए यह कभी भी माना नहीं जा सकता कि लगातार बारह महीने तक तीस-तीस दिन का महीना माना जाता था।

मास में दिनों की संख्या

पूर्णिमा ऐसी घटना नहीं है जिसके घटित होने का समय केवल चन्द्रमा की आकृति को देखकर कोई पल-विपल तक बता सके। यदि इस समय चन्द्रमा गोल जान पड़ता है तो कुछ मिनट पहले भी वह गोल जान पड़ता रहा होगा और कुछ मिनट बाद भी वह गोल ही जान पड़ेगा। मिनटों की क्या बात, कई घण्टों में भी अधिक अन्तर नहीं दिखायी पड़ता। इसलिए एक मास में २९½ दिन के बदले ३० दिन मानने पर महीने दो महीने तक तो कुछ कठिनाई नहीं पड़ी होगी, परन्तु ज्योंही लोगों ने लगातार गिनती आरम्भ की होगी उनको पता चला होगा कि प्रत्येक मास में तीस दिन मानते रहने से साल भर में गणना और वेध में एकता नहीं रहती। जब गणना कहती है कि मास का अन्त हुआ तब आकाश में चन्द्रमा पूर्ण गोल नहीं रहता, जब वेध बताता है कि आज पूर्णिमा है तब गणना बताती है कि अभी महीना पूरा नहीं हुआ।

अवश्य ही कोई उपाय रहा होगा जिससे लोग किसी-किसी महीने में केवल २९ दिन मानते रहे होंगे। इन २९ दिन वाले महीनों के लिए ऋग्वेद के समय में क्या नियम थे यह अब जाना नहीं जा सकता, परन्तु कुछ नियम रहे अवश्य होंगे। पीछे तो भारतीय ज्योतिष में ऐसे पक्के नियम बन गये कि लोग उन नियमों के दास बन गये, ऐसे दास कि आज भी हिन्दू ज्योतिषी तभी ही पूर्णिमा मानते हैं जब उनकी गणना कहती है कि पूर्णिमा हुई, चाहे वेध (आँख से देखी बात) कुछ बतावे। मुसल-मान वेध के भक्त हैं, हिन्दू गणित के। चाहे गणना कुछ भी कहे, जब तक मुसलमान ईद के चाँद को आँखों से देख न लेगा—चाहे निजी आँखों से, चाहे विश्वस्त पुजारियों की आँखों द्वारा—वह ईद मनायेगा ही नहीं। परन्तु आज का हिन्दू डेढ़ हजार वर्ष पहले के बने नियमों का इतना भक्त है कि वह वेध को भाड़ में झोंकने के लिए

न इसे २७ ही दिन माना होगा। इसलिए चन्द्रमा के एक चक्कर का २७ भागों में बाँटना और उसके मार्ग में २७ चमकीले या सुगमता से पहचान में आनेवाले तारों या तारका-पुंजों को चुन लेना उनके लिए स्वाभाविक था। ठीक-ठीक बराबर दूरियों पर तारों का मिलना असम्भव था क्योंकि चन्द्रमा के मार्ग में तारों का पड़ना मनुष्य का काम तो था नहीं। इसलिए आरम्भ में मोटे हिसाब से ही वेध द्वारा चन्द्रमा की गति का पता चल पाता रहा होगा परन्तु गणित के विकास के साथ इसमें सुधार हुआ होगा और तब चन्द्र-मार्ग को ठीक-ठीक बराबर २७ भागों में बाँटा गया होगा। चन्द्रमा २७ के बदले लगभग २७⅓ दिन में एक चक्कर लगाता है इसका भी परिणाम जोड़ लिया गया होगा।

चन्द्रमा के मार्ग के इन २७ बराबर भागों को ज्योतिष में नक्षत्र कहते हैं। साधारण भाषा में नक्षत्र का अर्थ केवल तारा है। इस शब्द से किसी भी तारे का बोध हो सकता है। आरम्भ में नक्षत्र तारे के लिए ही प्रयुक्त होता रहा होगा। परन्तु चन्द्रमा अमुक नक्षत्र के समीप है कहने की आवश्यकता बार-बार पड़ती रही होगी। समय पाकर चन्द्रमा और नक्षत्रों का सम्बन्ध ऐसा घनिष्ठ हो गया होगा कि नक्षत्र कहने से ही चन्द्र-मार्ग के समीपवर्ती किसी तारे का ध्यान आता रहा होगा। पीछे जब चन्द्रमार्ग को २७ बराबर भागों में बाँटा गया तो स्वभावतः इन भागों के नाम भी समीपवर्ती तारों के अनुसार अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी आदि पड़ गये होंगे।

ऋग्वेद में कुछ नक्षत्रों के नाम आते हैं जिससे पता चलता है कि उस समय भी चन्द्रमा की गति पर ध्यान दिया जाता था।

उदयकालिक सूर्य

कौषीतकी ब्राह्मण में इसका सूक्ष्म वर्णन है कि उदयकाल के समय सूर्य किस दिशा में रहता है। क्षितिज पर सूर्योदय-बिन्दु स्थिर नहीं रहता क्योंकि सूर्य का वार्षिक मार्ग तिरछा है और इसका आधा भाग आकाश के उत्तर भाग में पड़ता है, आधा दक्षिण में। कौषीतकी ब्राह्मण में सूर्योदय-बिन्दु की गति का अच्छा वर्णन किया है कि किस प्रकार यह बिन्दु दक्षिण की ओर जाता है, कुछ दिनों तक वहीं स्थिर सा जान पड़ता है और फिर उत्तर की ओर बढ़ता है। यदि एक [illegible] प्रति

१ ।८५।१३ ।
१९।३।३ ।

निकटतम पूर्ण संख्या है। इसलिए वर्ष में बारह महीनों का मानना स्वाभाविक था। दीर्घकाल तक होता यही रहा होगा कि बरसात से लोग मोटे हिसाब से महीनों को गिनते रहे होंगे और समय बताने के लिए कहते रहे होंगे कि इतने मास बीते।

तो भी जैसे-जैसे ज्योतिष के ज्ञान में तथा राज-काज सम्यता आदि में वृद्धि हुई होगी तैसे-तैसे अधिकाधिक दीर्घ काल तक लगातार गिनती रक्खी गयी होगी और तब पता चला होगा कि वर्ष में कभी बारह कभी तेरह मास रखना चाहिए, अन्यथा बरसात उसी महीने में प्रति वर्ष नहीं पड़ेगी। उदाहरणतः यदि इस वर्ष बरसात सावन-भादों में थी और हम आज से बराबर बारह-बारह मासों का वर्ष मानते जायें तो कुछ वर्षों के बाद बरसात कुआर-कातिक में पड़ेगी। कुछ अधिक वर्षों के बीतने पर बरसात अगहन पूस में पड़ेगी। मुसलमानी की गणना-पद्धति आज भी यही है कि एक वर्ष में कुल १२ मास (चान्द्र मास) रक्खे जायें। इसका परिणाम यही होता है कि बरसात उनके हिसाब से प्रति वर्ष एक ही महीने में नहीं पड़ती। उदाहरणतः उनके एक महीने का नाम मुहर्रम है। उसी महीने में मुसलमानों का मुहर्रम नामक त्योहार पड़ता है। परन्तु यह त्योहार, जैसा सभी ने देखा होगा बराबर एक ही ऋतु में नहीं पड़ता।

ऋग्वेद के समय म अधिमास

हिन्दुओं ने तेरहवाँ मास लगाकर मासों और ऋतुओं में अटूट सम्बन्ध जोड़ने की रीति ऋग्वेद के समय में ही निकाल ली थी। ऋग्वेद म एक स्थान पर आया है—

"जो व्रतावलम्बन करके अपने-अपने फलोत्पादक बारह महीनों को जानते हैं और उत्पन्न होनेवाले तेरहवें मास को भी जानते हैं ।

इससे प्रत्यक्ष है कि वे तेरहवाँ महीना बढ़ाकर वर्ष के भीतर ऋतुओं का हिसाब ठीक रखते थे।

नक्षत्र

लोगों न धीरे-धीरे यह देखा होगा कि पूर्णिमा का चन्द्रमा जब कभी किसी विशेष तारे के निकट रहता है तो एक विशेष ऋतु रहती है। इस प्रकार तारों के बीच चन्द्रमा की गति पर लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ होगा। तारों के हिसाब से चन्द्रमा एक चक्कर २७⅓ दिन में लगाता है। मोटे हिसाब से प्राचीन लोगों

१।२५।८। रामगोविन्द त्रिवेदी और गौरीनाथ झा का अनुवाद।

न इसे २७ ही दिन माना होगा। इसलिए चन्द्रमा के एक चक्कर को २७ भागों में बाँटना और उसके मार्ग में २७ चमकीले या सुगमता से पहचान में आनेवाले तारों या तारका-पुंजों को चुन लेना उनके लिए स्वाभाविक था। ठीक-ठीक बराबर दूरियों पर तारों का मिलना असम्भव था क्योंकि चन्द्रमा के मार्ग में तारों का पड़ना मनुष्य का काम तो था नहीं। इसलिए आरम्भ में मोटे हिसाब से ही प्रेम द्वारा चन्द्रमा की गति का पता चल पाता रहा होगा परन्तु गणित के विकास के साथ इसमें सुधार हुआ होगा और तब चन्द्र-मार्ग को ठीक-ठीक बराबर २७ भागों में बाँटा गया होगा। चन्द्रमा २७ के बदले लगभग २७½ दिन में एक चक्कर लगाता है इसका भी परिणाम जोड़ लिया गया होगा।

चन्द्रमा के मार्ग के इन २७ बराबर भागों को ज्योतिष में नक्षत्र कहते हैं। साधारण भाषा में नक्षत्र का अर्थ केवल तारा है। इस शब्द से किसी भी तारे का बोध हो सकता है। आरम्भ में नक्षत्र तारे के लिए ही प्रयुक्त होता रहा होगा। परन्तु चन्द्रमा अमुक नक्षत्र के समीप है कहने की आवश्यकता बार-बार पड़ती रही होगी। समय पाकर चन्द्रमा और नक्षत्रों का सम्बन्ध ऐसा घनिष्ठ हो गया होगा कि नक्षत्र कहने से ही चन्द्र-मार्ग के समीपवर्ती किसी तारे का ध्यान आता रहा होगा। पीछे जब चन्द्रमार्ग को २७ बराबर भागों में बाँटा गया तो स्वभावतः इन भागों के नाम भी समीपवर्ती तारों के अनुसार अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी आदि पड़ गये होंगे।

ऋग्वेद में कुछ नक्षत्रों के नाम आते हैं जिससे पता चलता है कि उस समय भी चन्द्रमा की गति पर ध्यान दिया जाता था[1]।

उदयकालिक सूर्य

कौषीतकी ब्राह्मण में इसका सूक्ष्म वर्णन है कि उदयकाल के समय सूर्य किस दिशा में रहता है। क्षितिज पर सूर्योदय-बिन्दु स्थिर नहीं रहता क्योंकि सूर्य का वार्षिक मार्ग तिरछा है और इसका आधा भाग आकाश के उत्तर भाग में पड़ता है आधा दक्षिण में। कौषीतकी ब्राह्मण ने सूर्योदय-बिन्दु की गति का अच्छा वर्णन दिया है कि किस प्रकार यह बिन्दु दक्षिण की ओर जाता है, कुछ दिनों तक वहाँ स्थिर सा जान पड़ता है और फिर उत्तर की ओर चलता है[2]। यदि यह बतलानेवाला प्रति

१ ।८५।१३।

१९।२।३।

दिन एक ही स्थान पर बैठकर यज्ञ करता था—और वह ऐसा करता भी रहा होगा—तो क्षितिज के किसी विशेष बिन्दु पर सूर्य को उदय होते हुए देखने के पश्चात फिर एक वर्ष बीतने पर ही वह सूर्य को ठीक उसी स्थान पर (उसी ऋतु में) उदय होता हुआ देखता रहा होगा। वस्तुतः क्षितिज के किसी एक बिन्दु पर उदय होने से लेकर सूर्य के फिर उसी बिन्दु पर वसी ही ऋतु में उदय होने तक के काल में दिनों की संख्या गिनने से वर्ष का मान पर्याप्त अच्छी तरह ज्ञात हो सकता है और सम्भव है कि इस रीति से भी उस समय वर्षमान निकाला गया हो। कम से कम इतना तो निश्चय है कि कौषीतकी ब्राह्मण के कर्ता ने सूर्योदय-बिन्दु की गति को कई वर्षों तक अच्छी तरह देखा था।

तारों का उदय और अस्त होना

वर्षमान जानने की एक अन्य रीति भी थी। लोग सूर्य की उपासना करते थे। प्रातःकाल सूर्योदय के पहले से ही पूर्व दिशा की ओर ध्यान दिया करते थे। इस क्रिया में उन्होंने देखा होगा कि सूर्योदय के पहले जो तारे पूर्वीय क्षितिज के ऊपर दिखायी पड़ते हैं वे सदा एक ही नहीं रहते। उदाहरणतः यदि मान लिया जाय कि आज प्रातःकाल मघा नामक तारा लगभग सूर्योदय के समय पूर्वीय क्षितिज से थोड़ी-सी ही ऊँचाई पर दिखायी पड़ रहा था तो यह निश्चित है कि आज से बीस-पच्चीस दिन बाद यह तारा सूर्योदय के समय क्षितिज से बहुत अधिक ऊँचाई पर रहेगा और बीस-पच्चीस दिन पहले सूर्योदय के समय वह क्षितिज से नीचे और इसलिए अदृश्य था। अवश्य कोई दिन ऐसा रहा होगा जिस दिन यह तारा पहले-पहल लगभग सूर्योदय के समय या तनिक-सा पहिले दिखायी पड़ा होगा। वह तारा उस दिन 'उदय' हुआ ऐसा माना जाता था। लोगों ने देखा होगा कि विशेष तारों का उदय विशेष ऋतुओं में होता है। तुलसीदास ने जो लिखा है 'उदेउ अगस्त्य पंथ जल सोखा' उसमें उदय होने का अर्थ यही है कि अगस्त्य पहले प्रातःकाल नहीं दिखायी पड़ रहा था, जब वह सूर्योदय के पहले दिखायी पड़ने लगा तो बरसात बीत गयी थी।

विशेष तारों के उदय होने के समयों को बार-बार देखकर और इस पर ध्यान रखकर कि भिन्न-भिन्न दिनों पर एक ही तारा उदय होता है लोगों ने वर्ष का स्थूल मान अवश्य जान लिया होगा। एक बरसात से दूसरी बरसात तक के दिनों को गिनने की अपेक्षा तारों के एक उदय से दूसरे उदय तक या सूर्योदय बिन्दु के क्षितिज के किसी विशेष बिन्दु पर फिर आ जाने तक के काल में दिनों के गिनने से वर्ष का अधिक अच्छा ज्ञान हुआ होगा परन्तु इसमें भी स्थूलता तब तक न मिटी होगी जब तक कई वर्षों तक दिनों की गिनती लगातार न की गयी होगी।

तारों का उदय प्राचीन काल में भी देखा जाता था यह तैत्तिरीय ब्राह्मण के एक स्थान से स्पष्ट है ।[1]

पूर्वोक्त प्रमाणों से प्रत्यक्ष है कि ऋग्वैदिक काल में ज्योतिष की सच्ची नींव पड़ गयी थी ।

इस अध्याय में हमने प्राचीन ज्योतिष पर विहंगम दृष्टि डाल दी है । आगामी अध्याय में प्राचीन साहित्य में आयी हुई ज्योतिष संबंधी चर्चा पर ब्योरेवार विचार किया जायगा ।

[1] १।५।२।१ लोकमान्य तिलक ने अपनी पुस्तक ओरायन में पृष्ठ १८ पर इसकी व्याख्या की है ।

अध्याय २

प्राचीनतम ज्योतिष

विषय प्रवेश

ऋग्वेद तथा अन्य प्राचीनतम ग्रंथो में ज्योतिष से संबंध रखने वाली कई बातें हैं। शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने अपनी मराठी पुस्तक "भारतीय ज्योतिषशास्त्र" में अनेक उद्धरण दिये हैं और उन पर पांडित्यपूर्ण विवेचन किया है। यहाँ थोड़े से चुने हुए उद्धरण दिये जायँगे जिनसे पता चल जायगा कि हमारे प्राचीन ऋषियों को ज्योतिष का ज्ञान कैसा था। परंतु इन उल्लेखों पर विचार करने के पहले यह समझ लेना भी अच्छा होगा कि हमारे प्राचीनतम साहित्य में क्या-क्या ग्रंथ उपलब्ध हैं।

हमारा प्राचीनतम साहित्य

हमारे प्राचीनतम ग्रंथो में वेद हैं। वेद का साधारण अर्थ ज्ञान है, परंतु विशेष अर्थ है भारतीय आर्यों के सर्वप्रथम और सर्वमान्य धार्मिक ग्रंथ। इनकी संख्या चार है। हिन्दी शब्द-सागर में इनके संबंध में निम्न सूचना दी हुई है

> आरंभ में वेद केवल तीन ही थे—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। इनमें से ऋग्वेद पद्य में है और यजुर्वेद गद्य में। सामवेद में गाने योग्य गीत या साम हैं। इसलिए प्राचीन साहित्य में "वेदत्रयी" शब्द का ही अधिक प्रयोग देखने में आता है, यहाँ तक कि मनु ने भी अपने धर्मशास्त्र में अनेक स्थानों पर "वेदत्रयी" शब्द का ही व्यवहार किया है। चौथा अथर्ववेद पीछे से वेदों में सम्मिलित हुआ था और तब से वेद चार माने जाने लगे। इस चौथे या अंतिम वेद में शांति तथा पौष्टिक अभिचार, प्रायश्चित्त, तंत्र, मंत्र आदि विषय हैं। वेदों के तीन मुख्य भाग हैं जो संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक या उपनिषद् कहलाते हैं। संहिता शब्द का अर्थ संग्रह है, और वेदों के संहिता भाग में स्तोत्र, प्रार्थना, मंत्र-प्रयोग, आशीर्वादात्मक सूक्त, यज्ञ

विधि से संबंध रखनेवाले मंत्र और अरिष्ट आदि की शांति के लिए प्रार्थनाएँ आदि सम्मिलित हैं। वेदों का यही अंश मंत्र-भाग भी कहलाता है। ब्राह्मण भाग में एक प्रकार से बड़े-बड़े गद्य ग्रंथ आते हैं जिनमें अनेक देवताओं की कथाएँ, यज्ञ-संबंधी विचार और भिन्न-भिन्न ऋतुओं में होनेवाले धार्मिक कृत्यों के व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक महत्व का निरूपण है। वनों में रहनेवाले यति संन्यासी आदि परमेश्वर, जगत और मनुष्य इन तीनों के संबंध में जो विचार किया करते थे वे उपनिषदों और आरण्यकों में संगृहीत हैं। इन्हीं में भारत का प्राचीनतम तत्त्वज्ञान भरा हुआ है। यह सब मानो वेदों का अंतिम भाग है और इसीलिए वेदांत कहलाता है। वेदों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से और विस्तृत प्रदेश में रहा है इसलिए काल-भेद देश-भेद और व्यक्ति-भेद आदि के कारण वेदों के मंत्रों के उच्चारण आदि में अनेक पाठ-भेद हो गए हैं। साथ ही पाठ में कहीं-कहीं कुछ न्यूनता और अधिकता भी हो गयी है। इस पाठ-भेद के कारण संहिताओं को जो रूप प्राप्त हुए हैं वे शाखा कहलाते हैं और इस प्रकार प्रत्येक वेद की कई-कई शाखाएँ हो गयी हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद ये छः वेदों के अंग या वेदांग कहलाते हैं।

हिंदू लोग वेदों को अपौरुषेय और ईश्वर-कृत मानते हैं। लोगों का विश्वास है कि ब्रह्मा ने (स्वयं) वेद कहे हैं और भिन्न-भिन्न ऋषियों ने जो मंत्र सुनकर संगृहीत किये हैं वे उन मंत्रों के द्रष्टा हैं। कहा जाता है कि वेदों का वर्तमान रूप में संग्रह और संकलन महर्षि व्यास ने किया है और इसीलिए वे वेदव्यास कहे जाते हैं।

वेदों के रचना-काल के संबंध में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है। मैक्समूलर आदि कई पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि वेदों की रचना ईसा से प्रायः डेढ़ हजार वर्ष पहले उस समय हुई जिस समय आर्य लोग आकर पंजाब में बसे थे। परंतु लोकमान्य तिलक ने ज्योतिष-संबंधी तथा अन्य कई आधारों पर वेदों का समय ईसा से लगभग ४ वर्ष पूर्व स्थिर किया है। बुलर आदि विद्वानों का मत है कि आर्य सभ्यता ईसा से प्रायः चार हजार वर्ष पहले की है और वैदिक साहित्य की रचना ईसा से प्रायः तीन हजार वर्ष पहले हुई है और अधिकांश लोग यही मत मानते हैं।
वेद श्रुति कहलाते हैं क्योंकि ऋषियों ने उन्हें ब्रह्मा के मुख से सुना था। स्मृति ऐसी कृति को कहते हैं जो किसी पुरुष की रचना होती है। स्मृति

अध्याय २

प्राचीनतम ज्योतिष

विषय प्रवेश

ऋग्वेद तथा अन्य प्राचीनतम ग्रंथों में ज्योतिष से संबंध रखने वाली कई बातें हैं। शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने अपनी मराठी पुस्तक 'भारतीय ज्योतिषशास्त्र' में अनेक उद्धरण दिये हैं और उन पर पाण्डित्यपूर्ण विवेचन किया है। यहाँ थोड़े से चुने हुए उद्धरण दिये जायेंगे जिनसे पता चल जायगा कि हमारे प्राचीन ऋषियों को ज्योतिष का ज्ञान कैसा था। परंतु इन उल्लेखों पर विचार करने के पहले यह समझ लेना भी अच्छा होगा कि हमारे प्राचीनतम साहित्य में क्या-क्या ग्रंथ उपलब्ध हैं।

हमारा प्राचीनतम साहित्य

हमारे प्राचीनतम ग्रंथों में वेद हैं। वेद का साधारण अर्थ ज्ञान है, परंतु विशेष अर्थ है भारतीय आर्यों के सर्वप्रथम और सर्वमान्य धार्मिक ग्रंथ। इनकी संख्या चार है। हिन्दी शब्द-सागर में इनके संबंध में निम्न सूचना दी हुई है:

> आरंभ में वेद केवल तीन ही थे—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। इनमें से ऋग्वेद पद्य में है और यजुर्वेद गद्य में। सामवेद में गाने योग्य गीत या साम हैं। इसलिए प्राचीन साहित्य में "वेदत्रयी" शब्द का ही अधिक प्रयोग देखने में आता है, यहाँ तक कि मनु ने भी अपने धर्मशास्त्र में अनेक स्थानों पर "वेदत्रयी" शब्द का ही व्यवहार किया है। चौथा अथर्ववेद पीछे से वेदों में सम्मिलित हुआ था और तब से वेद चार माने जाने लगे। इस चौथे या अंतिम वेद में शांति तथा पौष्टिक अभिचार, प्रायश्चित्त, तंत्र, मंत्र आदि विषय हैं। वेदों के तीन मुख्य भाग हैं जो संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक या उपनिषद् कहलाते हैं। संहिता शब्द का अर्थ संग्रह है और वेदों के संहिता भाग में स्तोत्र, प्रार्थना, मंत्र-प्रयोग, आशीर्वादात्मक सूक्त, यज्ञ

की अन्य शाखाओं में भी था—काठक, कपिष्ठल और मैत्रायणी-संहिता में। परन्तु इस दोष का याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने दूर किया। उनके द्वारा प्रकाशित संहिता वाजसनेयी-संहिता कहलाती। इसके साथ का ब्राह्मण था उसका नाम शतपथ ब्राह्मण पड़ा। अधिक स्पष्ट होने के कारण वाजसनेयियों ने अपनी संहिता को शुक्ल यजुर्वेद कहा और पहले वाली संहिताओं को कृष्ण कहा।

शतपथ ब्राह्मण में ज्योतिष-संबंधी कई एक सूचनाएँ हैं परन्तु वर्तमान शतपथ ब्राह्मण का सब भाग एक साथ नहीं बना है। प्राचीन वैयाकरण पाणिनि के वार्तिककार कात्यायन के अनुसार शतपथ के पिछले भाग पाणिनि के काल में या कुछ ही पहले तैयार हुए थे। समय पाकर तैत्तिरीय भाग क्रमशः पूर्व की ओर बढ़े और वाजसनेयी भाग विदेह की ओर।

अथर्ववेद में अन्य वेदों की भांति स्तोत्रों के अतिरिक्त शत्रु को नाश करने के भी मंत्र हैं, दुर्घटना, पाप, विपत्ति आदि से बचने के लिए भी मंत्र हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि आदिम निवासियों के संपर्क का यह परिणाम है। अथर्ववेद के ब्राह्मण का नाम गोपथ ब्राह्मण है। अथर्ववेद से संबद्ध उपनिषद् कई एक हैं—प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य इत्यादि।

वैदिक साहित्य में वर्ष, मास और अधिमास

तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक स्थान पर सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र, संवत्सर, ऋतु, मास, अर्धमास, अहोरात्र, पौर्णमास आदि शब्द एक साथ ही आए हैं। पाठ इस प्रकार है —

> लोकोऽसि स्वर्गोऽसि ॥ अनन्तोऽस्यपारोऽसि ॥ अक्षितोऽस्यक्षय्योऽसि ॥ तपसः प्रतिष्ठा ॥ त्वयीदमन्तः ॥ विश्वं यक्षं विश्वं भूतं विश्वं सुभूतं ॥ विश्वस्य भर्ता विश्वस्य जनयिता ॥ तं त्वोपदधे कामदुघमक्षितं ॥ प्रजापतिस्त्वा सादयतु ॥ तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ॥ तपोऽसि लोके श्रितं ॥ तेजसः प्रतिष्ठा ॥ त्वयीद॰ ॥ तेजोऽसि तपसि श्रितं ॥ समुद्रस्य प्रतिष्ठा ॥ समुद्रोऽसि तेजसि श्रितः ॥ अपां प्रतिष्ठा ॥ ॥ आपः स्थ समुद्रे श्रिताः ॥ पृथिव्याः प्रतिष्ठा युष्मासु ॥ ॥ पृथिव्यस्यप्सु श्रिता ॥ अग्नेः प्रतिष्ठा ॥ ... ॥ अग्निरसि पृथिव्यां श्रितः ॥ अन्तरिक्षस्य प्रतिष्ठा ॥ ॥ अन्तरिक्षमस्यग्नौ श्रितं ॥ वायोः प्रतिष्ठा ॥ ॥ वायुरस्यन्तरिक्षे श्रितः ॥ दिवः प्रतिष्ठा ॥ ॥ द्यौरसि वायौ श्रिता ॥ आदित्यस्य प्रतिष्ठा ॥ ॥ आदित्योऽसि दिवि श्रितः ॥ चन्द्रमसः प्रतिष्ठा ॥ ... ॥ चंद्रमा

का अर्थ है जो याद या स्मरण रह गया हो। श्रुति का अर्थ है पढ़ा या सुना गया हो। स्मृतियों के कर्ता कर्त्तार या स्रष्टार होते हैं जिन्हें हम आज-कल की भाषा में ग्रन्थकार या लेखक कहेंगे। श्रुतियों के कर्ता माने द्रष्टा या द्रष्टार जाते थे जो अपनी दिव्य दृष्टि से सत्य को देख सकते थे।

ब्राह्मण आदि

ऋग्वेद में एक हजार से अधिक सूक्त हैं और एक सूक्त में मध्यमानतः (औसतन) लगभग १ ऋचाएँ (छन्द) हैं। सारे वेद को दस मण्डलों में बाँटा गया है और हमने जहाँ-जहाँ ऋग्वेद की किसी पंक्ति का निर्देश किया है वहाँ प्रथम संख्या मंडल बताती है, दूसरी सूक्त, तीसरी मंत्र या ऋचा। ऋग्वेद के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय के आर्य अधिकांश पंजाब में बसे थे जहाँ सिंधु नदी तथा उसकी सहायक नदियाँ बहती थीं। परन्तु वे गंगा, यमुना और गोमती तक एक ओर और कुभा (काबुल) तक दूसरी ओर फैले हुए थे। पशु-पालन (विशेषतः गो-पालन) और कृषि ये ही दो उनके प्रमुख काम थे।

ऋग्वेद के कई 'ब्राह्मण' थे जिनमें से दो ही—ऐतरेय और कौषीतकी—अब उपलब्ध हैं। दोनों में बहुत-सी बातें एक ही हैं परन्तु प्रत्येक में कई ऐसी बातें हैं जो दूसरे में नहीं हैं। ऐतरेय ब्राह्मण के साथ ऐतरेय आरण्यक और ऐतरेय उपनिषद भी हैं, इसी प्रकार कौषीतकी ब्राह्मण के साथ कौषीतकी आरण्यक और कौषीतकी उपनिषद हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण सामवेद का ब्राह्मण है।

सामवेद की अधिकांश ऋचाएँ (लगभग १९) ऋग्वेद से ली गयी हैं और उनके गान दिये गये हैं।

यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं—कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद, जिनमें से कृष्ण यजुर्वेद अधिक प्राचीन है। यजुर्वेद के ऋषि थे वैशम्पायन, जिनके शिष्य के शिष्य थे तित्तिरि और इन्हीं के नाम से यजुर्वेद की एक शाखा तैत्तिरीय-संहिता है। परन्तु इस संहिता में केवल ऋचाएँ नहीं हैं। वे सब विषय भी हैं जिन्हें साधारणतः ब्राह्मणों में आना चाहिए। परन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण भी है जो संभवतः कुछ काल बीतने पर तैयार हुआ। ऋचाओं और ब्राह्मण में आने योग्य विषयों का सम्मिश्रण यजुर्वेद

वेद के उस अंश को "ब्राह्मण" कहते हैं जो बतलाता है कि किस यज्ञ में कौन-से सूक्त का पाठ होना चाहिए, और जो ऋचाओं का अर्थ देता है और उन्हें स्पष्ट करने के लिए कथाएँ देता है।

प्रतिष्ठ हो और भव्य (वर्तमान) की भी। पूर्णमासी अष्टमी अमावस्या। अन्न को पकाने (खाने) वाली कामनाओं को दुहने वाली तुममें। तू राट् है वृहती है श्री है इन्द्रपत्नी है धर्मपत्नी है। ओज है सह है बल है आज है। देवों का धाम है अमृत है। अमर्त्य (नाशरहित) है। तप से उत्पन्न हुई है।

इससे स्पष्ट है कि उस समय संवत्सर मास आदि की प्रथा अच्छी तरह ज्ञात थी। नक्षत्रों का भी बोध हुआ करता था।

एक ही सूर्य

यह भी कि सूर्य से ऋतुएँ होती हैं लोग जानते थे। ऋक् संहिता में यह है

पूर्वामनु प्रदिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद्विदधावनुष्ठु ॥

ऋ. सं १ ९५. १

अर्थ—(सूर्य ने) पृथ्वी के प्राणियों के लिए ऋतुओं का विभाग करके अच्छे प्रकार से पूर्व दिशा को बनाया।

ऋक् संहिता की निम्न ऋचा से स्पष्ट है कि उस समय यह ज्ञात था कि विश्व में एक ही सूर्य है पता नहीं कैसे पीछे जैनियों का यह मत हो गया कि दो सूर्य हैं —

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ॥
एकैवोषाः सर्वमिदं विभाति ... ॥

ऋ. सं ८. ५८ २

एक ही अग्नि अनेक प्रकार से प्रदीप्त होती है। एक ही सूर्य विश्व भर में प्रभाव डालता है। एक ही उषा इस समस्त (जगत) को प्रकाशित करती है।

फिर एक ही सूर्य के उदय-अस्त से दिन-रात होने का भी उल्लेख है

आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ॥
प्र बाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥

ऋ सं ४ ५१ १

अर्थ—सविता (सूर्य) देव तेज द्वारा द्युलोक (आकाश) और पृथ्वी लोक को परिपूरित करते हैं एवं अपने कार्य की प्रशंसा करते हैं। वे प्रति दिन जगत को अपने-अपने कार्य में स्थापन करते हैं और प्रेरित करते हैं। वे सृजन कार्य के लिए दोनों बाहुओं (किरणों) को फैलाते हैं।

महीन

अधिमास के संबंध में ऋक् संहिता की निम्न ऋचा ध्यान देने योग्य है

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः ॥ वेदा य उपजायते ॥

ऋ. सं १ २५. ८

अस्मादित्ये श्रितः ॥ नक्षत्राणां प्रतिष्ठा ॥ ॥ नक्षत्राणि चन्द्रमसि श्रितानि ॥ संवत्सरस्य प्रतिष्ठा युष्मासु ॥ ॥ संवत्सरोसि नक्षत्रेषु श्रितः ॥ ऋतूनां प्रतिष्ठा ॥ ॥ ऋतवः स्थ संवत्सरे श्रिताः ॥ मासानां प्रतिष्ठा युष्मासु ॥ ॥ मासाः स्थर्तुषु श्रिताः ॥ अर्धमासानां प्रतिष्ठा युष्मासु ॥ ॥ अर्धमासाः स्थ मासेषु श्रिताः ॥ अहोरात्रयोः प्रतिष्ठा युष्मासु ॥ ॥ अहोरात्रे स्थोर्धमासेषु श्रिते ॥ भूतस्य प्रतिष्ठे भव्यस्य प्रतिष्ठे ॥ पौर्णमास्यष्टकामावास्याः ॥ अन्नादाः स्थान्नदुघो युष्मासु ॥ राडसि बृहती श्रीरसीन्द्रपत्नी धर्मपत्नी ॥ ओजोसि सहोसि बलमसि भ्राजोसि ॥ देवानां धामामृतं ॥ अमर्त्यस्तपोजाः ॥ ॥

तै॰ ब्रा॰ ३ । ११ । १

अर्थ—तू लोक है। तू स्वर्ग है। तू अनन्त है। तू अपार है। तेरा कभी नाश नहीं हुआ है। तू अविनाशी है। तू तप की प्रतिष्ठा (ठहरने की भूमि) है। तुममें यह सब है। विश्व मन है विश्व भव है विश्व सुभूत है विश्व का धारण करने वाला। विश्व का उत्पन्न करने वाला। उस तुमको स्थापित करता हूँ। कामधेनु (कामनाओं के पूरक) और अनष्ट भी। प्रजापति तुमको ठीक रक्खे। उस देवता के द्वारा अंगिराओं में विराजमान हो। तू तप है लोक में ठहरा हुआ। तेज की प्रतिष्ठा है। तुममें यह सब है। तू तेज है तप में ठहरा हुआ। समुद्र की प्रतिष्ठा है। । तू समुद्र है तेज में ठहरा हुआ जलों की प्रतिष्ठा है। । तुम जल हो समुद्र में ठहरे हुए। तुममें पृथ्वी की प्रतिष्ठा है। । तू पृथ्वी है जलों में ठहरी हुई। अग्नि की प्रतिष्ठा है। । तू अग्नि है पृथ्वी में ठहरी हुई। अन्तरिक्ष की प्रतिष्ठा है। । तू अन्तरिक्ष है अग्नि में ठहरी हुई। वायु की प्रतिष्ठा है। । तू वायु है अंतरिक्ष में ठहरी हुई। द्यौलोक की प्रतिष्ठा है। । तू द्यौ है वायु में ठहरी हुई। आदित्य की प्रतिष्ठा है। । तू आदित्य है द्यौ (आकाश) में ठहरा हुआ। चन्द्रमा की प्रतिष्ठा है। । तू चन्द्रमा है आदित्य (=सूर्य) में ठहरा हुआ। नक्षत्रों की प्रतिष्ठा है। । तुम नक्षत्र हो चन्द्रमा में ठहरे हुए। तुम में संवत्सर की प्रतिष्ठा है। । तू संवत्सर है नक्षत्रों में ठहरा हुआ। तू ऋतुओं की प्रतिष्ठा है। । तुम ऋतु हो संवत्सर में ठहरे हुए। महीनों की प्रतिष्ठा तुम में है। । तुम महीने हो ऋतुओं में ठहरे हुए। तुम में आधे-महीनों की प्रतिष्ठा है। । तुम अर्धमास हो मासों में ठहरे हुए। अहोरात्र (रातदिन) की प्रतिष्ठा तुम में है। । तुम अहोरात्र हो अर्धमासों में ठहरे हुए। तुम भूत की भी

प्रतिष्ठा हो और मध्य (वर्तमान) की भी। पूर्णमासी अष्टमी अमावस्या। अन्न को पचाने (पाक) वाली कामनाओं को दुहने वाली तुम्हें। तू राट् है, वृहती है, श्री है, इन्द्रपत्नी है, धर्मपत्नी है। ओज है, सह है, बल है, प्राण है। देवों का धाम है, अमृत है। अमर्त्य (मासरहित) है। तप से उत्पन्न हुई है।

इससे स्पष्ट है कि उस समय पक्ष, मास आदि की प्रथा अच्छी तरह चालू थी। गणना का भी वेद हुआ करता था।

एक ही सूर्य

यह भी कि सूर्य से ऋतुएँ होती हैं लोग जानते थे। ऋक् संहिता में यह है

पूर्वामनु प्रदिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद्विदधावनुष्ठु ॥

ऋ. सं. १. ९५. ३

अर्थ—(सूर्य ने) पृथ्वी के प्राणियों के लिए ऋतुओं का विभाग करके अच्छे प्रकार से पूर्व दिशा को बनाया।

ऋक् संहिता की निम्न ऋचा से स्पष्ट है कि उस समय यह ज्ञान था कि विश्व में एक ही सूर्य है। पता नहीं कैसे पीछे जैनियों का यह मत हो गया कि दो सूर्य हैं —

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ॥

एकैवोषा सर्वमिदं विभाति ... ॥

ऋ. सं. ८. ५८. २

एक ही अग्नि अनेक प्रकार से प्रदीप्त होती है। एक ही सूर्य विश्व भर में प्रभाव डालता है। एक ही उषा इस समस्त (जगत) को प्रकाशित करती है।

फिर एक ही सूर्य के उदय-अस्त से दिन रात होने का भी उल्लेख है

आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देव कृणुते स्वाय धर्मणे ॥

प्र बाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥

ऋ. सं. ४. ५३. ३

अर्थ—सविता (सूर्य) देव तेज द्वारा द्युलोक (आकाश) और पृथ्वी लोक को परिपूरित करते हैं एवं अपने कार्य को प्रशंसित करते हैं। वे प्रति दिन जगत का अपने-अपने कार्य में स्थापन करते हैं और प्रेरित करते हैं। वे सृजन कार्य के लिए दोनों बाहुओं (किरणों) को फैलाते हैं।

महीने

अधिमास के संबंध में ऋक् संहिता की निम्न ऋचा ध्यान देने योग्य है

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः ॥ वेदा य उपजायते ॥

ऋ. सं. १. २५. ८.

इसका अर्थ पहले दिया जा चुका है (पृष्ठ ६)।

तैत्तिरीय संहिता में ऋतुओं और मासो के नाम बताये गये है

मधुश्च माधवश्च वासंतिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमंतिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृत ॥

तै सं ४ ४ ११

अर्थ—वसन्त ऋतु के दो महीने है मधु और माधव ग्रीष्म ऋतु के दो महीने है शुक्र और शुचि वर्षा के दो महीने है नभ और नभस्य शरद के दो महीने है इष और ऊर्ज हेमन्त के दो महीने है सह और सहस्य शिशिर के दो महीने है तपस और तपस्य।

वाजसनेयी संहिता म पूर्वोक्त १२ महीनो के नामो के अतिरिक्त तेरहवें महीने की भी चर्चा है। जान पड़ता है कि लोग के तेरहवें महीने को उस लोग अंहसस्पति कहते थे—

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा
नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा
सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा
तपस्याय स्वाहांहसस्पतये स्वाहा ॥

वा सं २२ ३१

अर्थ—मधु के लिए स्वाहा माधव के लिए स्वाहा शुक्र के लिए स्वाहा, शुचि के लिए स्वाहा नभ के लिए स्वाहा नभस्य के लिए स्वाहा इष के लिए स्वाहा ऊर्ज के लिए स्वाहा सह के लिए स्वाहा सहस्य के लिए स्वाहा तपस के लिए स्वाहा तपस्य के लिए स्वाहा अंहसस्पति (पाप के पति या मलमास) के लिए स्वाहा।

तैत्तिरीय ब्राह्मण मे भी तेरह महीनो क नाम है

अरुणोऽरुणरजाः पुंडरीको विश्वजिदभिजित् ॥
आर्द्रः पिन्वमानोऽन्नवान् रसवानिरावान् ॥
सर्वौषधः संभरो महस्वान् ॥

तै ब्रा ३ १० १

अर्थ—महीनो के १३ नाम ये है —

(१) अरुण (२) अरुणरज (३) पुंडरीक (४) विश्वजित (५) अभिजित् (६) आर्द्र (७) पिन्वमान (८) अन्नवान्, (९) रसवान् (१) इरावान् (११) सर्वौषध (१२) संभर, (१३) महस्वान् ॥

वर्ष में ३६० दिन होने का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में निम्न प्रकार से है

त्रीणि च वै शतानि षष्टिश्च संवत्सरस्याहानि सप्त च वै शतानि विंशतिश्च संवत्सरस्याहोरात्राः ॥

ऐ ब्रा ७ १७

अर्थ—तीन सौ साठ दिन का वर्ष होता है वर्ष में सात सौ बीस दिन और रात होते हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी तेरहवें मास की चर्चा है —

द्वादशारत्नी रशना कर्तव्या ३ त्रयोदशारत्नी३रिति ॥ ऋषभो वा एष ऋतूनां ॥ यत्संवत्सरः ॥ तस्य त्रयोदशो मासो विष्टपं ॥ ऋषभ एष यज्ञानां ॥ यदश्वमेधः ॥ यथा वा ऋषभस्य विष्टपं ॥ एवमेतस्य विष्टपं ॥

तै ब्रा ३ ८ ३

अर्थ—रस्सी का १२ हाथ की करें या १३ हाथ की? संवत्सर जो है वह ऋतुओं का ऋषभ (मोट स्वामी) है। तेरहवाँ महीना उसका विष्टप (=पूंछ) है। अश्वमेध जो है वह यज्ञों का ऋषभ है। जैसे ऋषभ का पूंछ होता है उसी तरह यह अश्वमेध का पूंछ है।

ताण्ड्य ब्राह्मण में वर्ष में दिनों की संख्या ठीक रखने के संबंध में निम्न अति रोचक वाक्य है

यथा वै दृतिराध्मात एवं संवत्सरोऽनुत्सृष्टः ॥

तां ब्रा ५. १ २

अर्थ—(यदि एक दिन न छोड़ दिया जायगा तो) वर्ष वैसे ही फूल जायगा जैसे चमड़े की मशक।

उत्तरायण और दक्षिणायन

अयन का अर्थ है चलना। ज्योतिष में वर्ष को दो बराबर भागों में विभाजित किया जाता है जिनमें से एक को उत्तरायण और दूसरे को दक्षिणायन कहते हैं। जब क्षितिज पर का सूर्योदय विन्दु दिन-दिन उत्तर हटता रहता है तो उत्तरायण रहता है अर्थात् सूर्य उत्तर जाता रहता है। इसी प्रकार सूर्योदय-विन्दु का दक्षिण पता लगाया जा सकता है कि कब से कब तक दक्षिणायन है। परन्तु पहले-पहली उत्तरायण उस काल को कहते थे जिसमें सूर्योदय बिंदु पूर्व बिंदु से उत्तर रहता था और दक्षिणायन उसको जिसमें सूर्योदय पूर्व से दक्षिण हुआ करता था। इस विषय में [illegible] लिखा है

वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः। ते देवा ऋतवः। शरद्धेमन्तः शिशिरस्ते पितरो स (सूर्य) यत्रोदगावर्तते। देवेषु तर्हि भवति यत्र दक्षिणावर्तते पितृषु तर्हि भवति॥

शत ब्रा २ १ ३

अर्थ—वसन्त ग्रीष्म वर्षा ये देव-ऋतु में हैं। शरद हेमन्त और शिशिर ये पितर ऋतु में हैं। जब उत्तर की ओर सूर्य रहता है तो ऋतुएँ देवों में गिनी जाती हैं। जब दक्षिण की ओर रहता है तो पितरों में।

इससे जान पड़ता है कि शतपथ ब्राह्मण के अनुसार उत्तरायण तब होता था जब सूर्योदय पूर्व-बिन्दु से उत्तर की ओर हट कर होता था।

तैत्तिरीय में केवल इतना ही है कि ६ महीने तक सूर्य उत्तर जाता रहता है और ६ महीने तक दक्षिण —

तस्मादादित्यः षण्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेण॥

तै स ६ ५ ३

अर्थ—इसलिए आदित्य (सूर्य) ६ मास दक्षिणायन रहता है और ६ मास उत्तरायण।

अध्याय ३

मासों के नये नाम

नाम बदलने का कारण

महीनों के नाम तैत्तिरीय संहिता में मधु, माधव आदि थे। इसका प्रमाण पहले दिया जा चुका है। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि महीनों के मधु, माधव आदि, नामों का प्रचार धीरे-धीरे मिट गया और उनके बदले उनके नये नाम प्रचलित हो गये जो तारों (नक्षत्रों) के नाम पर पड़े थे। उदाहरणतः चैत्र (जिसे हिन्दी में चैत कहते हैं) चित्रा नामक तारे पर पड़ा जो रविमार्ग के समीप एक बहुत चमकीला तारा है। वस्तुतः सभी नाम इसी प्रकार पड़े। नाम बदलने का कारण भी स्पष्ट है। मधु नाम का मास कौन-सा है यह कैसे कोई बता सकता था? केवल गणना से। यह जानना कि मधु माधव मास के बाद ग्यारह महीने और बीत गये हैं इसलिए अब फिर मधु का महीना होना चाहिए। परन्तु यदि यह इसी तरह कई वर्षों तक लगातार प्रत्येक बारहवें महीने को मधु कहता चलता तो अवश्य ही ऋतुओं और महीनों में कोई संबंध न रहता ठीक उसी प्रकार जैसे मुसलिम महीनों और ऋतुओं में कोई संबंध नहीं रहता। एक मुसलिम महीने का नाम मुहर्रम है और मुहर्रम का त्योहार किसी मौसम में पड़ता है। सभी में ऐसा होता कि यह त्योहार कभी गरमी में पड़ता है कभी जाड़े में और कभी बरसात में। ऋतु के हिसाब से त्योहार पहले हो पड़ जाता है। इसका कारण यह है कि पहले-जैसा ऋतु एक वर्ष में अर्थात् लगभग ३६५ दिन में आता है परन्तु बारह चांद्र मास लगभग ३५४ दिनों में ही पूरे हो जाते हैं। यदि वर्ष में केवल बारह ही चांद्र मास रखे जायँ तो वर्ष का अंत पुरानी ऋतु आने के लगभग ११ दिन पहले ही हो जायगा जैसा मुसलिम वर्षों में होता है। परन्तु हमारे प्राचीन ऋषियों ने इस बात को स्वीकार नहीं किया कि महीनों और ऋतुओं में संबंध न रहे। उन्होंने समुचित उपाय ढूँढ़ ही निकाला। उन्होंने देखा कि पूर्णिमा के समय तारों के बीच चन्द्रमा की स्थिति और ऋतु में प्रत्यक्ष

सर्वथ हैं। इसलिए उन्होंने तारों के हिसाब से महीना बताना आरंभ किया और कुछ काल बीतने पर महीनों के नाम भी तारों के अनुसार पड़ गये। तैत्तिरीय संहिता के निम्न वाक्य से स्पष्ट है कि उस समय मास-निर्धारण के लिए तारों का वेध (अर्थात् देखना) आरम्भ हो गया था —

> न पूर्वयोः फल्गुन्योरग्निमादधीत ॥ एषा वै जघन्या रात्रिः संवत्सरस्य ॥ यत् पूर्वेफल्गुनी ॥ पृष्टित एव संवत्सरस्याग्निमाधाय ॥ पापीयान् भवति ॥ उत्तरयोरादधीत ॥ एषा वै प्रथमा रात्रिः संवत्सरस्य ॥ यदुत्तरेफल्गुनी ॥ मुखत एव संवत्सरस्याग्निमाधाय ॥ वसीयान् भवति ॥
>
> तै ब्रा १ १ २ ८

अर्थ—पूर्वफल्गुनियों में अग्नि की स्थापना न करे। यह वस्तुत संवत्सर की जघन्य (बुरी) रात है जिसको पूर्वफल्गुनी कहते हैं। संवत्सर की पीठ की ओर अग्नि की स्थापना करने से पापी होता है। उत्तराफल्गुनी में अग्नि की स्थापना करे। यह संवत्सर की पहली (मुख्य) रात्रि है जिसे उत्तराफल्गुनी कहते हैं। जो संवत्सर के मुख की ओर अग्नि की स्थापना करता है वह श्रेष्ठ होता है।

इसमें पूर्णिमा शब्द नहीं आया है परन्तु निस्सन्देह अर्थ यही है कि जब उत्तरा फाल्गुनी तारे के पास पूर्ण चन्द्र रहे तो समझना चाहिए कि वर्ष का आरम्भ हुआ और तब (यज्ञ के लिए) अग्नि जलानी चाहिए। अन्यथा प्रत्येक मास में चन्द्रमा कभी न-कभी तो उत्तरा फल्गुनी के पास पहुँचता ही है।

नामकरण के नियम

आरम्भ में नक्षत्र केवल चमकीले तारे या सुगमता से पहचाने जाने वाले छोटे तारका-पुंज थे। परन्तु आकाश में बराबर-बराबर दूरी पर तारे या तारका-पुंजों के न रहने से असुविधा होती रही होगी। पीछे तो चन्द्रमार्ग (वस्तुत रविमार्ग) को ठीक बराबर २७ खंडों में विभाजित किया गया और प्रत्येक को एक नक्षत्र कहा गया जिससे नक्षत्र का पुराना अर्थ ही बदल गया। ऊपर दिये गये तैत्तिरीय ब्राह्मण के उद्धरण से यह स्पष्ट नहीं होता कि उस समय पूर्वा फल्गुनी उत्तरा फाल्गुनी आदि से तारे समझे जाते थे या रविमार्ग के सत्ताइसवें भाग। चाहे कुछ भी अभिप्राय रहा हो इतना स्पष्ट है कि यज्ञादि धार्मिक कर्मों के लिए मधु माधव आदि में से कोई एक नाम बताने के बदले अवसर न पूर्वा फाल्गुनी आदि का प्रयोग अधिक उपयुक्त समझा। यहाँ हम उस प्रथा को देख रहे हैं जिससे पीछे मासों के नवीन नामों का जन्म हुआ। पर कदापि न समझना चाहिए कि तैत्तिरीय संहिता या ब्राह्मण के

समय में मासों के नाम फाल्गुन चैत्र आदि पड़ गये थे। इस प्रथा में और समकालीन अन्य ग्रन्थों में फाल्गुन चैत्र आदि शब्द कहीं आये ही नहीं हैं। ये नाम तो बहुत बाद पीछे के साहित्य में आते हैं। तब महीनों के नामकरण के लिए निम्न नियम था —

पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी मासे तु यत्र सा ।
नाम्ना स पौषो माघाद्याश्चैवमेकादशापरे ॥
अमरकोष कालवर्ग १४

अर्थ—उस मास को जिसमें पूर्णिमा पुष्य नक्षत्र में होती है पौष नाम दिया जाता है (और किसी मास को नहीं)। इसी प्रकार शेष ग्यारह महीनों के अर्थात् माघ इत्यादि के नाम भी पड़ते हैं।

सूर्य-सिद्धान्त में निम्न नियम है

नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः ।

अर्थ—पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा जिस नक्षत्र में रहता है उसी के नाम पर मासों के नाम पड़े हैं।

चन्द्रमा की जटिल गति

यह भी देख लेना उचित होगा कि प्राचीन ऋषियों को चन्द्रमा की जटिल गति के कारण क्या-क्या कठिनाइयाँ पड़ी होंगी। पहली कठिनाई तो यह पड़ी होगी कि पूर्णिमा के अवसर पर मंद तारे सभी छिप जाते हैं। इसलिए ठीक पता नहीं चलता रहा होगा कि तारों के बीच चन्द्रमा कहाँ है। यह अवश्य सत्य है कि चमकीले तारे पूर्णिमा पर भी दिखायी पड़ते रहते हैं। उन्हीं से अनुमान करना पड़ता रहा होगा कि पूर्णिमा के अवसर पर चन्द्रमा तारों के सापेक्ष कहाँ पर है।
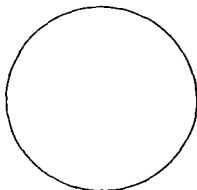
दूसरी कठिनाई इससे हुई होगी कि ठीक पता नहीं चलता कि पूर्णिमा कब हुई। पूर्णिमा के २४ घंटे पूर्व या २४ घंटे पश्चात् भी चन्द्रमा का

चतुर्दशी का चंद्रमा।
चतुर्दशी का चन्द्रमा वृत्ताकार ही जान पड़ता है। यह चित्र प्रमाण के अनुसार सावधानी से खींचा गया है।

आकार, जैसा कमल के चित्र में दिखाया गया है, गोल (वृत्ताकार) ही जान पड़ता है।

परन्तु एक दिन में चन्द्रमा आकाश में लगभग १३° (अर्थात् अपने व्यास का लगभग २६ गुना) चल देता है। इसलिए ठीक पता नहीं लगता कि किस तारे के पास रहने पर पूर्णिमा हुई। कोई विशेष पूर्णिमा पूर्वा फाल्गुनी के पास हुई या उत्तरा फाल्गुनी के पास इसका ठीक-ठीक निर्णय कर सकने की शक्ति निस्सन्देह सैकड़ों वर्षों में आयी होगी।

फिर, इससे भी कठिनाई यह होगी कि १२ चान्द्र मास बीतने पर जब फिर पूर्णिमा होती है तो चन्द्रमा अपने पुराने स्थान पर नहीं रहता। कारण यह है कि ३६५¼ दिन के वर्ष में और २९½ दिन के चान्द्र मास में सरल संबंध नहीं है; एक वर्ष में पूरे-पूरे महीने नहीं हैं। इसलिए यदि गत वर्ष चैत में पूर्णिमा तब हुई थी जब चन्द्रमा चित्रा नामक तारे के बहुत निकट था तो इस वर्ष चित्रा तक पहुँचने से लगभग ११° पहले ही (अर्थात् चन्द्रमा के व्यास के लगभग बाईस गुनी दूरी रहने पर) पूर्णिमा होगी। इसी प्रकार प्रति वर्ष पूर्णिमा के क्षण पर चन्द्रमा का स्थान ११° पिछड़ता चला जाता है और तब जब बीच में कभी एक अधिमास लग जाता है तो स्थान एकाएक लगभग १९° आगे बढ़ जाता है (चित्र देखें)। स्थिति वैसी ही है जैसे आप

चैत्र में पूर्णिमा

विभिन्न वर्षों के एक ही मास में भी पूर्णिमा पर चन्द्रमा एक स्थिति में नहीं रहता है। यहाँ तीन वर्षों में चित्रा नामक तारा के पास होने वाली पूर्णिमाओं पर चन्द्रमा की स्थितियाँ दिखायी गयी हैं।

की घड़ी प्रति दिन ११ मिनट सुस्त चलती हो और अब आप उसे मिलायें तो एकदम बीस मिनट तेज कर दें। घड़ी के सुस्त चलने का पता तो एक-आध दिन में ही लग जाता है परंतु चंद्रमा की स्थिति में अंतर जानने के लिए वर्ष भर तक ठहरना पड़ता है और स्मरण रखना पड़ता है कि पिछले वर्ष पूर्णिमा पर चंद्रमा कहाँ था। ऊपर से कठिनाई यह भी रहती है कि ठीक पता नहीं चलता कि पूर्णिमा इस क्षण हुई, या कई घंटे पहले हुई जब दिन था और तारे दिखायी न पड़ते थे या कई घंटे पीछे होगी जब सूर्योदय हो जायगा और तारे दिखायी न पड़ेंगे।

चन्द्रमार्ग स्थिर नहीं है

केवल पूर्वोक्त ही कठिनाई होती तो भी कुशल होता। परंतु एक दूसरे प्रकार की कठिनाई भी पड़ी होती। वह इस कारण कि चंद्रमार्ग आकाश में स्थिर नहीं रहता। यदि चंद्रमा का मार्ग स्थिर भी होता तो जैसा हम ऊपर देख चुके हैं कठिनाई से पता चलता कि चंद्रमा के किस स्थान पर पहुँचने पर पूर्णिमा हुई परंतु जब मार्ग ही बदला करता है तो अवश्य ही कठिनाई बहुत बढ़ जाती है। इस बात को अधिक अच्छी तरह समझने के लिए विचार करें कि यदि चंद्रमार्ग अचल होता और मघा नामक तारा उसके पास इस प्रकार स्थित होता कि चंद्रमा उसे प्रायः छूता हुआ जाता तो अवश्य ही चंद्रमा उसे छूता हुआ प्रति मास जाता और प्रति वर्ष एक मास ऐसा आता जब उस तारे के आस-पास ही कहीं चंद्रमा के रहने पर पूर्णिमा होती। उस तारे तक पहुँचने में अधिक से अधिक चौदह-पंद्रह अंश पूर्णिमा पर चंद्र रहने या इतना ही अधिक तय हो गया रहता। परंतु चंद्रमा का मार्ग स्थिर नहीं है। इसलिए यदि चंद्रमा इस वर्ष किसी तारे को छूता हुआ निकलता है तो संभव है आगामी वर्ष वह उस तारे को छू न पाय और उसकी बगल से निकल जाय। तब एक वर्ष और बीतने पर चंद्रमा उस तारे से अधिक दूरी से होता हुआ निकल जायगा इत्यादि ९ वर्ष बाद वह उस तारे से लगभग १° (अर्थात् चंद्र-व्यास की बीस गुनी दूरी) पर से निकल जायगा तब दूरी कम होने लगेगी और लगभग १८⅔ वर्ष बाद चंद्रमा फिर उस तारे को छूता हुआ चलेगा और पुराना मार्ग क्रम फिर दोहराया जायगा। ऊपर के चित्र में १ वर्षों के लिए चंद्रमार्ग दिखाया गया है जिससे पूर्वोक्त बातें अधिक स्पष्ट हो जायँगी।

चंद्रमार्ग ठीक-ठीक किस प्रकार हटता-बढ़ता है इसे समझने के लिए चंद्रमार्ग और रविमार्ग में अंतर समझ लेना अच्छा होगा। तारों के बीच सूर्य भी चलता है और चंद्रमा भी। परंतु सूर्य का मार्ग निर्धारित करना कठिन है क्योंकि सूर्य के

उदित होने पर तारे अदृश्य हो जाते हैं। सूर्य का मार्ग इसे देखकर निर्धारित किया गया होगा कि सूर्योदय के पहले चमकीले तारे कहाँ रहते हैं। रविमार्ग तारों के हिसाब से अचर है; प्रतिवर्ष विशेष तारों से उतना ही दायें या बायें हट कर रविमार्ग रहता है। बरसों तक देखते रहने पर कुशाग्र-बुद्धि ऋषियों में से कुछ को रविमार्ग का ठीक पता (या प्रायः ठीक पता) लग ही गया होगा।

चंद्रमा के एक मास के मार्ग को निर्धारित करना अपेक्षाकृत बहुत सरल है। कोई भी दो-चार महीने तक चंद्रमा को प्रति रात्रि देखता रहे तो उसे चंद्र-मार्ग का अनुमान हो सकता है। यदि तारों का चित्र बना लिया जाय और उसमें चंद्रमा की स्थितियाँ को प्रति रात्रि अंकित किया जाय तो और भी शीघ्र पता चल जायगा कि चंद्रमार्ग क्या है। चंद्रमा तारों के सापेक्ष एक चक्कर लगभग २७⅓ दिन में लगाता है। यही कारण है कि एक चक्कर को सत्ताइस (या कभी-कभी अट्ठाइस) भागों में बाँटा गया जिनमें से प्रत्येक एक नक्षत्र कहलाया।

आकाश को हम गोले से निरूपित कर सकते हैं जिसे खगोल कहते हैं। इसका चित्र बगल में दिखाया गया है। आकाश को देखने वाला इस गोले के केंद्र क पर रहता है परंतु चित्र में हम खगोल को बाहर से देख रहे हैं। रविमार्ग इस गोले को दो बराबर भागों में बाँटता है। चंद्रमार्ग भी खगोल को दो बराबर भागों में बाँटता है परंतु चंद्रमार्ग रवि-मार्ग को ५° के कोण पर काटता है। इसका परिणाम यह होता है कि चंद्रमार्ग का आधा भाग रविमार्ग के उत्तर
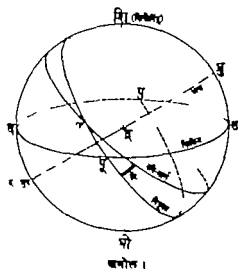
खगोल।
रविमार्ग विषुवत को लगभग २३½° अंश के कोण पर काटता है।

चित्र में स्पष्टता के लिए इसे नहीं दिखाया गया है।

रहता है आधा दक्षिण। इसलिए प्रत्येक मास चंद्रमा आधे समय तक रविमार्ग के उत्तर रहता है आधे समय तक दक्षिण।

खगोल पर वृत्त चित्र में चंद्रमार्ग रविमार्ग को दो बिंदुओं में काटता है। इनमें से प्रत्येक को 'पात' कहते हैं। यदि इन्हें पृथक-पृथक बताना हो तो एक को आरोही पात और दूसरे को अवरोही पात कहा जा सकता है[1]।

अब हम बता सकते हैं कि चंद्रमार्ग किस प्रकार अपनी स्थिति बदलता रहता है। रविमार्ग और चंद्रमार्ग के बीच का कोण नहीं बदलता और न रविमार्ग बदलता है केवल दोनों पात पीठ मुँह धीरे-धीरे बराबर चलते रहते हैं और प्रत्येक पात एक चक्कर लगभग १८⅔ वर्ष में लगाता है। इससे सारा चंद्रमार्ग अपना स्थान बदलता रहता है।

इसका एक परिणाम यह होता है कि यदि आज चंद्रमार्ग का उत्तरतम भाग किसी तारे के पास है तो आज से ९ वर्ष बाद जब आरोही पात आधा चक्कर लगाकर उल्टी ओर पहुँच जायगा चंद्रमा उस तारे के निकटतम तब पहुँचेगा जब वह उससे लगभग १ (दस अंश) पर रहेगा (इस पन्ने की पीठ पर चित्र देखें)।

एक ही तारे के कभी समीप रहने और कभी दूर रहने से तारों को देखकर महीनों के बताने में कठिनाई पड़ती रही होगी। परंतु पर्याप्त काल बीतने पर ये बातें स्पष्ट हो गयी होंगी।

संभवतः एक कठिनाई और पड़ी होगी। चंद्रमा अपेक्षाकृत हमारे बहुत निकट है, तारे बहुत दूर हैं। इससे कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई-कोई तारा चंद्रमा की आड़ में पड़ जाता है और तब छिप जाता है। बात वैसी ही है कि किसी दूरस्थ मंदिर का किसी निकटस्थ पेड़ के पीछे छिपना। एक स्थान से मंदिर पेड़ के ठीक पीछे पड़ सकता है, दूसरे स्थान से वह पेड़ की बगल में दिखायी पड़ सकता है। इसी प्रकार दस-बीस मील के ही अंतर पर ऐसा हो सकता है कि एक स्थान से कोई तारा चंद्रमा के पीछे छिप जाय और दूसरे स्थान से वह छिप न पाये। इन सब बातों से चंद्रमा के विषय में पर्याप्त कठिनाई हमारे प्राचीन नक्षत्र-नामों को पड़ी होगी।

इन सब कठिनाइयों को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वा फाल्गुनी उत्तरा फाल्गुनी आदि में वर्ष का अंत और आरंभ बताना संभवतः बरसों में आया होगा।

[1] इनके विशेष नाम भी हैं (राहु और केतु) परंतु उनसे पाठकों को कुछ भ्रम हो सकता है। इसलिए उनका प्रयोग यहाँ नहीं किया जा सका।
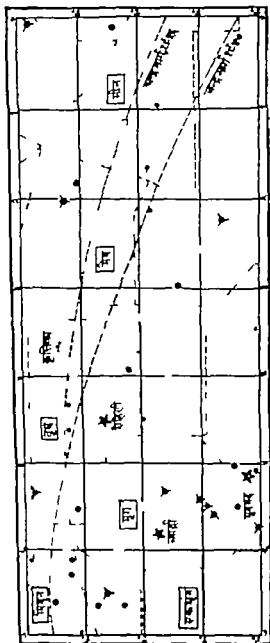
चंद्रमार्ग १९४७ और १९५६ में

देखें कि ९ वर्ष में चंद्रमार्ग की स्थिति बहुत बदल जाती है। १९५६ के चंद्रमार्ग पर चंद्रमा विषुवत वृत्त के पैमाने के अनुसार दिखाया गया है जिससे इसका अच्छा अनुमान किया जा सकता है कि चंद्रमार्ग कितना हटता है। चंद्रमार्ग की स्थितियों में ९⅓ वर्ष में महत्तम अंतर पड़ता है। १८⅔ वर्ष में चंद्रमार्ग अपनी पुरानी स्थिति पर पहुँच जाता है।

और तैत्तिरीय ब्राह्मण के काल के बहुत पहले से चन्द्रमा का नियमित रूप से वेध आरम्भ हो गया रहा होगा ।

अमांत या पूर्णिमांत ?

महीने का आरम्भ अमावस्या से होता था या पूर्णिमा से ? यदि महीने का अंत अमावस्या से हो तो उसे अमांत मास कहते हैं, पूर्णिमा से हो तो उसे पूर्णिमांत कहते हैं । पूर्णिमांत मासों में यह विशेषता है कि इधर चन्द्रमा पूर्ण हुआ तो उधर मास भी । अमांत मास का आरम्भ तब होता है जब सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों (मोटे हिसाब से विषुवांशों) का अंतर शून्य होता है और शून्य अंतर से मास आरम्भ करना अधिक स्वाभाविक जान पड़ता है । सारे ज्योतिष में अमांत मासों की गणना होती है । अधिमास (लौंद का महीना) भी अमावस्या से आरम्भ होता है और उसका अंत आगामी अमावस्या पर होता है । परन्तु उत्तर प्रदेश में और कई अन्य प्रदेशों में भी पूर्णिमांत मास ही चलते हैं ।

प्राचीन साहित्य में भी पूर्णिमांत प्रथा का वर्णन मिलता है । पूर्णमासी या पौर्णमासी शब्द से ही स्पष्ट है कि मास के पूर्ण होने का यह दिन था ।

तैत्तिरीय संहिता कहता है

बर्हिषा पूर्णमासे व्रतमुपैति वत्सैरमावास्यायाम् ॥

तै सं १ ६ ७

अर्थ—पूर्णमासी के व्रत को बर्हि (कुशों) से ग्रहण करना चाहिए और अमावस्या के व्रत को वत्सों (=बछड़ों) से ।

इससे स्पष्ट है कि मास पूर्णिमा पर पूर्ण होता था ।

परन्तु तैत्तिरीय संहिता के एक अन्य स्थान पर पूर्णिमांत और अमांत दोनों पद्धतियों का आभास मिलता है

अमावास्यया मासान्संपाद्याहरुत्सृजन्ति अमावास्यया हि मासान् संपश्यन्ति
पौर्णमास्या मासान्संपाद्याहरुत्सृजन्ति पौर्णमास्या हि मासान्संपश्यन्ति ॥

तै सं ७ ५ ६ १५

अर्थ—अमावस्या से मासों को समाप्त करके एक दिन को कुछ लोग छोड़ देते हैं क्योंकि वे अमावस्या से ही मासों को देखते हैं । (कुछ लोग) पूर्णमासी से

अर्थात उस दिन कोई अनुष्ठान नहीं करते ।

मासो को समाप्त करके एक दिन छोड़ देते हैं क्योंकि वे पूर्णमासी से मासो को देखते हैं।

एक आगामी अध्याय में प्रमाण दिया जायगा कि समवत तैत्तिरीय संहिता १ ई पू के पहले का सगृहीत ग्रथ है। ब्राह्मण इस दिनाक के बाद के ग्रथ हैं। न तो तैत्तिरीय संहिता में और न किसी ब्राह्मण में चैत्र वैशाख आदि नाम हैं। परन्तु ये नाम वेदाग ज्योतिष में हैं जो समवत १२ ई पू का ग्रथ है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि महीनो के नाम में परिवर्तन लगभग २ ई पू में हुआ होगा।

अध्याय ४

वैदिक काल में दिन, नक्षत्र, आदि

पक्ष

अति प्राचीन समय में सप्ताह का कुछ महत्त्व नहीं था और न रविवार, सोमवार आदि नाम ही प्रचलित थे। ये नाम तो ग्रहों के आधार पर पड़े हैं और वेद ब्राह्मण संहिता आदि में इन नामों का कहीं उल्लेख नहीं है। उस काल में पक्ष और उसके उपविभाग चलते थे। पक्ष महीने में दो होते थे। इनका उल्लेख कई स्थानों में मिलता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में पक्ष के उपविभागों के नाम इस प्रकार हैं —

संज्ञानं विज्ञानं दर्शा दृष्टेति ॥ एतावनुवाकौ पूर्वपक्षस्या-
होरात्राणां नामधेयानि ॥ प्रस्तुतं विष्टुतं सुतासुन्वतीति ॥ एताव-
नुवाकावपरपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानि ॥

तै ब्रा ३ १० १ २

अर्थ—संज्ञान विज्ञान दर्शा दृष्टा ये दो-दो करके पूर्व पक्ष के अहोरात्र (= दिनरात) के नाम हैं। प्रस्तुत विष्टुत सुता सुन्वती ये दो-दो करके अपर पक्ष के अहोरात्र के नाम हैं।

अन्य स्थानों में कुछ भिन्न नाम हैं परन्तु उन सूचियों को यहाँ देना आवश्यक नहीं जान पड़ता।

वैदिक काल में तिथि

वैदिक काल के साहित्य में तिथि शब्द उस अर्थ में कहीं नहीं आया है जिसमें इसे हम आज लेते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में तिथि की परिभाषा यों दी गयी है

यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः ॥

ऐ ब्रा ३२ १

अर्थ—जिसमें चंद्रमा अस्त होता और उदित होता है वह तिथि है।

इससे स्पष्ट है कि उस काल में तिथि का कुछ और ही अर्थ था। पीछे तिथि का अर्थ वह समय हो गया जितने में चंद्रमा सूर्य के सापेक्ष १२° चलता है और इसी

अर्थ में यह शब्द आज भी प्रयुक्त होता है। सामविधान ब्राह्मण में कृष्ण चतुर्दशी कृष्ण पंचमी शुक्ल चतुर्दशी आदि शब्द आये हैं। बहुत संभव है कि पंचमी आदि से यही बताया जाता रहा होगा कि यह महीने का पाँचवाँ आदि दिन है। पाठक जानते होंगे कि तिथियों में यह विशेषता है कि बीच-बीच में एक तिथि छोड़ दी जाती है। वैदिक काल में ऐसा न होता रहा होगा। क्षय तिथि की चर्चा कहीं भी वैदिक साहित्य में नहीं है। पंचदश का भी कहीं-कहीं उल्लेख है। उदाहरणार्थ तैत्तिरीय ब्राह्मण में यह है

चंद्रमा वै पंचदशः ॥ एष हि पंचदश्यामपक्षीयते ॥ पंचदश्यामापूर्यते ॥

तै ब्रा १ ५ १

अर्थ—चंद्रमा का नाम पंचदश है यह पन्द्रह दिन में क्षीण होता है और पन्द्रह दिन में पूरा होता है।

परन्तु इन सब उद्धरणों से भी यह नहीं सिद्ध होता कि ब्राह्मणों के समय में तिथियों का उपयोग होता था। शंकर बालकृष्ण दीक्षित का मत है[1] कि पहले प्रतिपदा द्वितीया इत्यादि शब्द पहली दूसरी इत्यादि, रातों के लिए प्रयुक्त होते रहे होंगे। पीछे उनका अर्थ बदल गया होगा और उनका अर्थ वह हो गया होगा जो अब ज्योतिष में लिया जाता है।

चंद्रमा क्यों चमकता है?

तैत्तिरीय संहिता के समय में भी लोग जानते थे कि चंद्रमा सूर्य के प्रकाश से चमकता है, क्योंकि उसे सूर्य-रश्मि कहा गया है जिसका अर्थ है वह पिंड जिस पर सूर्य की रश्मियाँ पड़ती हों।

सूर्यरश्मिश्चंद्रमा गंधर्वः ॥

तै सं ३ ४ ७ १

अर्थ—चंद्रमा या गंधर्व (= चंद्रमा) को सूर्यरश्मि कहते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण में अमावस्या का भी कारण बताया गया है। लिखा है कि—

चंद्रमा वा अमावास्यामादित्यमनुप्रविशति आदित्याद्वै चंद्रमा जायते।

ऐ ब्रा. ४ ५.

अर्थ—चंद्रमा अमावस्या पर आदित्य में प्रवेश करता है। आदित्य से ही चंद्रमा उत्पन्न होता है।

[1] भा वि बा २१६ २१८ ३१६। भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ ४४।

दिन के विभाग

दिन को कभी दो भागों में बाँट कर उन्हें पूर्वाह्ण और अपराह्ण कहते थे और कभी तीन भागों में बाँट कर उन्हें पूर्वाह्ण, मध्याह्न और अपराह्ण कहते थे। दिन को चार भागों में विभाजित करने की प्रथा भी थी और तब प्रत्येक को एक प्रहर कहते थे (जिसे अब हिन्दी में पहर कहते हैं)। इनके नाम तब पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण और सायाह्न थे। दिन को १५ भागों में बाँट कर प्रत्येक को एक मुहूर्त भी कहते थे। ये सब शब्द वैदिक काल से ही चले आ रहे हैं। परन्तु अब कुछ अर्थ बदल गया है। अब तो फलित ज्योतिष के आधार पर कुछ मुहूर्तों को शुभ और शेष को अशुभ मानते हैं और साधारणतः मुहूर्त से शुभ मुहूर्त समझा जाता है। सिनेमा-पत्रिकाओं में बहुधा नवीन फिल्मों के "मुहूर्त" की सूचना रहती है और जान पड़ता है कि मुहूर्त का अर्थ सिनेमा-निर्देशकों में वह उत्सव हो गया है जो नवीन फिल्म के आरम्भ के संबंध में किया जाता है।

नक्षत्र

आरम्भ में नक्षत्र शब्द सभी तारों के लिए प्रयुक्त होता था। उदाहरणतः ऋक् संहिता में यह है

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः॥ सूराय विश्वचक्षसे॥

ऋ. सं. १.५०.२; अथ. सं. १३.२.१७; २०.४७.१४

अर्थ—सर्व प्रकाशमान सूर्य के आगमन से नक्षत्र (=तारे) और रात चोर की तरह भागते हैं।

परन्तु धीरे-धीरे अवश्य ही नक्षत्र शब्द उन तारों के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होने लगा होगा जो चन्द्रमार्ग में पड़ते हैं। संभवतः निम्न अवतरण में नक्षत्र से उन तारों को समझना चाहिए जो चन्द्रमार्ग में हैं

अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः॥

ऋ. सं. १०.८५.२; अथ. सं. १४.१.२

अर्थ—चन्द्रमा तारों के बीच रहता है।

तैत्तिरीय संहिता के निम्न अनुवाक में सब नक्षत्रों के नाम गिनाये गए हैं। अवश्य ही यहाँ नक्षत्र शब्द से उन तारका-पुंजों को समझना चाहिए जो चन्द्रमार्ग में पड़ते हैं

कृत्तिका नक्षत्रमग्निर्देवताग्नेरुचः स्थ प्रजापतेर्धातुः सोमस्यर्चे त्वा रुचे त्वा
द्युते त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता मृगशीर्ष
नक्षत्रं सोमो देवताऽऽर्द्रा नक्षत्रं रुद्रो देवता पुनर्वसू नक्षत्रमदितिर्देवता तिष्यो

नक्षत्रं बृहस्पतिर्देवताश्रेषा नक्षत्रं सर्पा देवता मघा नक्षत्रं पितरो देवता फल्गुनी नक्षत्रं भगो देवता फल्गुनी नक्षत्रमर्यमा देवता हस्तो नक्षत्रं सविता देवता चित्रा नक्षत्रमिन्द्रो देवता स्वाती नक्षत्रं वायुर्देवता विशाखे नक्षत्र मिन्द्राग्नी देवतानूराधा नक्षत्र मित्रो देवता ज्येष्ठा नक्षत्रमिन्द्रो देवता विचृतौ नक्षत्र पितरो देवतापाढानक्षत्रमापो देवतापाढा नक्षत्रं विश्वेदेवा देवता श्रोणा नक्षत्रं विष्णुर्देवता श्रविष्ठा नक्षत्रं वसवो देवता शत-भिषङ्नक्षत्रमिन्द्रो देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमजएकपाद्देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्नियो देवता रेवती नक्षत्रं पूषा देवताश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवतापभरणीर्नक्षत्रं यमो देवता ॥

तै., सं ४ ४ १

(तू है) (१) कृत्तिका नक्षत्र अग्नि देवता। तू अग्नि की चमक है प्रजापति की विधाता की सोम की। त्वारुचे (तुमको प्रकाश के लिए) त्वा द्युते (तुमको द्युति के लिए) त्वा भासे (तुमको कान्ति के लिए) त्वा ज्योतिषे (तुमको ज्योतिष के लिए)। (तू है) (२) रोहिणी नक्षत्र प्रजापति देवता। (३) मृगशीर्ष नक्षत्र सोम देवता। (४) आर्द्रा नक्षत्र रुद्र देवता। (५) दोनो पुनर्वसु नक्षत्र अदिति देवता। (६) तिष्य नक्षत्र बृहस्पति देवता। (७) आश्लेषा नक्षत्र सर्प देवता। (८) मघा नक्षत्र पितर देवता। (९) पूर्वा फल्गुनी नक्षत्र भग देवता। (१) उत्तर फल्गुनी नक्षत्र अर्यमा देवता। (११) हस्त नक्षत्र सविता देवता। (१२) चित्रा नक्षत्र इन्द्र देवता। (१३) स्वाती नक्षत्र वायु देवता। (१४) दो विशाखाओं का नक्षत्र इन्द्राग्नी देवता। (१५) अनुराधा नक्षत्र मित्र देवता। (१६) ज्येष्ठा नक्षत्र इन्द्र देवता। (१७) दो विचृतो का नक्षत्र पितर देवता। (१८) आषाढा नक्षत्र आप देवता। (१९) आषाढा नक्षत्र विश्वेदेवा देवता। (२) श्रोणा नक्षत्र विष्णु देवता। (२१) श्रविष्ठा नक्षत्र वसु देवता। (२२) शतभिषक नक्षत्र इन्द्र देवता। (२३) प्रोष्ठपदा नक्षत्र अजएकपाद् देवता। (२४) प्रोष्ठपदा नक्षत्र अहिर्बुध्नि देवता। (२५) रेवती नक्षत्र पूषा देवता। (२६) अश्वयुज नक्षत्र अश्विन् देवता। (२७) अपभरणी नक्षत्र यम देवता।

तारा समूह

निम्न उद्धरण से नक्षत्र का अर्थ तारा-समूह होना अधिक निश्चित हो जाता है

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
अष्टाविंशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥ १ ॥

ऋक् संहिता में ऋक्ष (=सप्तर्षि ?) की भी चर्चा है

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ॥

ऋ. सं १ २४ १

अर्थ—ये जो ऋक्ष हैं जो ऊपर आकाश में स्थित हैं और रात में दिखायी पड़ते हैं वे दिन में कहाँ चले जाते हैं ?

इसपर शतपथ ब्राह्मण ने यह टीका की है कि—

सप्तर्षीनु ह स्म वै पुरर्क्षा इत्याचक्षते ॥

श ब्रा २ १ २ ४

अर्थ—सप्तर्षियों को ही पहले ऋक्ष कहते थे।

एक बात यहाँ देखने योग्य है कि पाश्चात्य ज्योतिष में सप्तर्षि तारामंडल को अब भी उर्सा मेजर या ग्रेट बेयर (=ऋक्ष = भालू)[1] कहते हैं।

कुछ अन्य तारों की भी चर्चा मिलती है। परन्तु सब उद्धरण यहाँ देना आवश्यक नहीं जान पड़ता।

ग्रहण

ग्रहणों की चर्चा भी वेदों में है परन्तु कहीं कोई ऐसी बात नहीं लिखी है जिससे पता चले कि वेदकालीन ऋषियों को ग्रहण के कारण का कितना पता था। परन्तु एक स्थान में यह है

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः ॥

अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्यन्ये अशक्नुवन् ॥

ऋ. सं ५ ४ ९

जिस सूर्य को असुर के पुत्र स्वर्भानु ने अंधकार में छिपा दिया था उसे अत्रि लोगों ने पा लिया। यह शक्ति दूसरों में तो थी नहीं।

इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः अत्रि के पुत्र ग्रहण की किसी प्रकार की गणना कर सकते रहे होंगे और पहले से बता सकते रहे होंगे कि सूर्यग्रहण का अंत कब होगा।

[1] ऋक्ष शब्द के संस्कृत में दो अर्थ थे : (१) तारा (२) रीछ। संभवतः कभी भूल से ऋक्ष रीछ का पर्याय समझ लिया गया होगा।

ग्रह

चन्द्रमार्गों में अथवा उसके पास ही ग्रह रहते हैं। वे तारों के ही समान होते हैं परन्तु कुछ ग्रह उनसे बहुत चमकीले होते हैं। इसलिए अवश्य ही ग्रहों को प्राचीन ऋषियों ने देखा होगा। उन्होंने यह भी देखा होगा कि ये अन्य तारों के सापेक्ष चलते रहते हैं। कोई भी व्यक्ति जो चन्द्रमा की स्थिति जानने के लिए तारों को देखा करेगा अवश्य ही इसका पता पा जायगा। इसलिए ग्रहों की चर्चा स्वाभाविक है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में बृहस्पति के जन्म का भी उल्लेख है। लिखा है कि—

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः ॥ तिष्यं नक्षत्रमभिसंबभूव ॥

तै. ब्रा. ३. १. १

अर्थ—जब बृहस्पति पहले प्रकट हुआ वह तिष्य (=पुष्य) नक्षत्र के पास था।

दीक्षित ने इसका अर्थ यह लगाया है कि कभी पुष्य तारा बृहस्पति ग्रह की ओट में हो गया होगा (आधुनिक ज्योतिष बताता है कि यह संभव है)। अपनी गति के कारण जब दो-चार मास में बृहस्पति पुष्य से पृथक हुआ होगा तो लोगों ने समझा होगा कि बृहस्पति का जन्म हुआ। तब बृहस्पति पुष्य के निकट रहा होगा।

शतपथ ब्राह्मण में शुक्र की चर्चा यों है

चक्षुषी ह वा अस्य शुक्रामन्थिनौ। तद्वा एष एव शुक्रो य एष तपति तद्यदेष एतत्तपति तेनैष शुक्रश्चन्द्रमा एव मन्थी ॥ ६ ॥ इमामु हैके शुक्रस्य पुरोरुचं कुर्वन्ति। अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमान इति तदेतस्य रूपं कुर्मो य एष तपतीति महाहरयोर्भिर्जरायुरिति ॥ ८ ॥

शत. ब्रा. ४. २. १

अर्थ—शुक्र और मन्थी उसकी दो आँखें हैं। शुक्र वही है जो चमकता है। यह चमकता है इसलिए इसको शुक्र कहा जाता है। चन्द्रमा मन्थी है। कुछ लोग 'अयं वेन' इस ऋचा से आरम्भ होने वाली ऋचा को शुक्र के लिए पुरोरुचा मन्त्र (अर्थात् आरम्भ में पढ़ा जाने वाला मन्त्र) बनाते हैं। वह ऋचा यह है "अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने"।

तैत्तिरीय संहिता में शुक्र और चन्द्रमा के साथ ही बृहस्पति का नाम आया है

वस्व्यसि रुद्रास्यदितिरस्यादित्यासि शुक्रासि चन्द्रासि बृहस्पतिस्त्वा सुम्ने रण्वतु।

तै. सं. १. २. ५.

अर्थ—(हे सोम को खरीदने वाले !) तू अस्ती है अर्थात् वसु आदि देवो का रूप है। रुद्र है अदिति है आदित्य है शुक्र है चन्द्र है बृहस्पति है। तू सुख से रह।

अथर्व संहिता में 'ग्रह' शब्द आया है —

> उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाःशं नो दिविचरा ग्रहाः ॥७॥
> शं नोभूमिर्वेपमाना शमुल्कानिर्हतं च यत् ॥८॥
> नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु ॥९॥
> शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ॥
> शं नो मृत्युर्धूमकेतु शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ १ ॥
>
> अथ. सं १९. ९

पृथ्वी और अन्तरिक्ष के उत्पात और द्युलोक के ग्रह हमारे लिए कल्याणकारी हो जायें। कांपती हुई भूमि कल्याणकारक हो। और वह भी जो उल्का के साथ है। उल्का सहित नक्षत्र कल्याण कारक हो। राहु के साथ चन्द्र ग्रह और सौर ग्रह कल्याणकारक हो। अनर्थकारी धूमकेतु कल्याणकारी हो। तीक्ष्ण प्रकाश वाले रुद्र कल्याणकारी हो।

जरमन आचार्य प्रोफेसर वेबर की सम्मति है कि भारत में ही ग्रहो का आविष्कार हुआ होगा क्योकि इनके नाम विशेष रूप से भारतीय हैं[1]।

वैदिक काल में ही ज्योतिष के विशेषज्ञ दूसरो से कुछ पृथक-से हो गये थे। वाजसनेयी संहिता में लिखा है

> प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शं ॥ वा सं ३ १

अर्थ—विज्ञान के लिए नक्षत्रदर्श के पास जाओ।

सारांश

अब स्पष्ट हो गया होगा कि वैदिक काल में ज्योतिष की अच्छी नींव पड़ गयी थी। मास चान्द्र था और वर्ष का आरम्भ और अन्त ठीक करने के लिए ऐसी रीति का पता लगा लिया गया था कि कभी भी अधिक त्रुटि नहीं उत्पन्न हो सकती थी। वर्ष का आरम्भ लगभग पन्द्रह दिन इधर उधर हो सकता था परन्तु इससे अधिक नहीं। पूजा-पाठ के लिए अमावस्या और पूर्णिमा का बड़ा महत्त्व था। इस पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था कि नक्षत्रों से संबंध रखने वाले कर्म उचित समय पर ही हो।

वेद के छ अंगो में एक ज्योतिष भी था और इस बरात की एक प्राचीन पुस्तक आज भी उपलब्ध है जिसका विवेचन आगामी अध्याय में किया जायगा।

[1] वेबर भारतीय साहित्य का इतिहास (अंग्रेजी में), पृष्ठ २५१।

अध्याय ५

वेदांग-ज्योतिष

वेदांग (अर्थात् वेद का अंग) होने के कारण वेदांग-ज्योतिष नामक ग्रंथ पवित्र माना जाता था और इसे स्मरण रखना तथा पढ़ना पुण्य का काम समझा जाता था। इसी से यह पुस्तक लुप्त होने नहीं पायी है। परन्तु इस ग्रंथ को पुस्तक कहना बहुत उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसमें कुल ४४ श्लोक हैं*; इसे पुस्तिका कहना अधिक उचित होगा।

दो पाठ

वेदांग-ज्योतिष के दो पाठ मिलते हैं, एक ऋग्वेद ज्योतिष और दूसरा यजुर्वेद ज्योतिष। दोनों में विषय प्रायः एक-से हैं, परन्तु यजुर्वेद ज्योतिष में ४४ श्लोक हैं और ऋग्वेद ज्योतिष में केवल ३६। दोनों में अधिकांश श्लोक एक ही हैं, परन्तु उनका क्रम दोनों में विभिन्न है। कुछ श्लोकों में शब्दों का भी कुछ अंतर है, यद्यपि अर्थ एक ही है। ऋग्वेद ज्योतिष के सात श्लोक यजुर्वेद ज्योतिष में नहीं हैं और यजुर्वेद ज्योतिष के १४ श्लोक ऋग्वेद ज्योतिष में नहीं हैं। ऐसा संभव है कि ज्योतिष की ये दोनों पुस्तिकाएँ किसी एक ग्रंथ से संकलित की गयी हैं और उस मूल ग्रंथ का अब लोप हो गया है। ज्योतिष के भाष्यकारों में से कुछ की यही सम्मति है, परन्तु डाक्टर शामशास्त्री का मत है कि ऋग्वेद ज्योतिष और यजुर्वेद ज्योतिष के श्लोकों की गिनतियों में अन्तर इसलिए है कि यजुर्वेद ज्योतिष में टीका के रूप में कुछ श्लोक बढ़ा दिए गए हैं।

* कुछ संस्करणों में केवल ४३ श्लोक हैं, परन्तु डाक्टर शामशास्त्री द्वारा सम्पादित पुस्तक में ४४ श्लोक हैं।

टीकाओं का इतिहास

वेदाग-ज्योतिष के श्लोकों को समझना बहुत कठिन है। कारण यह है कि अधिकांश श्लोकों की भाषा बहुत संक्षिप्त है और उनमें अनेक शब्द छोड़ दिये गये हैं। सच्ची बात तो यह है कि ये श्लोक सूत्र हैं जिनका उद्देश्य यह है कि गणना के नियम जानने वाले को आवश्यकता पड़ने पर नियम स्मरण हो जाये। उनका यह अभिप्राय नहीं है कि नौसिखिये को पूरा-पूरा नियम बताया जाय। वे तो ऐसे ही हैं जैसे गणित-पुस्तकों के अंत में दी गयी सूत्रों की सूची जिसे वे ही समझ सकते हैं जो विषय को अच्छी तरह समझ कर चुके हैं।

वेदाग-ज्योतिष पर एक भाष्य सोमाकर का है परन्तु यह अच्छा नहीं है। इस भाष्य से स्पष्ट है कि भाष्यकार स्वयं कई एक श्लोक का अर्थ नहीं समझता था। आधुनिक समय में वेदाग-ज्योतिष का पहला संस्करण वेबर का था। उसके बाद सर विलियम जोन्स, ह्विटनी, कोलब्रुक, बर्ज़ी, डेविस, मैक्स म्यूलर, थीबो और कुछ अन्य विद्वानों ने श्लोकों के अर्थ लगाने की ओर ध्यान दिया परन्तु तब भी कुछ श्लोकों का अर्थ संतोषजनक रीति से नहीं लग सका। थीबो ने इस विषय पर अपनी टिप्पणियाँ सन १८७९ में प्रकाशित कीं। इसके बाद कृष्ण शास्त्री गोडबोले, जना-र्दन बालाजी मोडक और शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने उन श्लोकों को समझाने की चेष्टा की जिनका अर्थ पूर्व टीकाकारों से नहीं लग पाया था परन्तु पूर्ण सफलता नहीं मिली। सन १९०६ में लाला छोटे लाल ने अपना उपनाम बार्हस्पत्य रख कर 'हिन्दुस्तान रिव्यू' में कई लेख छपाये जिनमें इन श्लोकों के चातुर्यपूर्ण अर्थ थे परन्तु वे विद्वानों को संतोषजनक नहीं जँचे। १९०८ में महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने पाठक नामक पत्रिका में कई लेख प्रकाशित किये जिनमें उन्होंने छोटे लाल के मतों का खंडन किया और अपने मतानुसार पाठ का संशोधन करके अर्थ लगाया। १९३६ में डाक्टर आर० शामशास्त्री ने मैसूर सरकार के सहायता से एक संस्करण छपाया जिसमें वेदाग-ज्योतिष के श्लोकों को सूर्यप्रज्ञप्ति आदि जैन ज्योतिष ग्रंथों तथा ज्यो-तिष-करंड में आये उन्हीं विषयों पर दिये गये नियमों की सहायता से समझाया गया है। इन जैन पुस्तकों ने वेदाग-ज्योतिष के नियमों को अपनाया था और उनकी विस्तृत व्याख्या दी थी। डाक्टर शामशास्त्री अपनी पूर्वोक्त पुस्तक में लिखते हैं

"व्यारहवाँ श्लोक जो विद्वानों को बराबर चक्कर में डाले था सूर्यप्रज्ञप्ति में प्राकृत में पूर्ण रूप से अनूदित है।

इस प्रकार अब वेदाग-ज्योतिष के सब श्लोकों का पर्याप्त अच्छा अर्थ लग गया[4]।

वेदांग-ज्योतिष की विषय-सूची

वेदांग-ज्योतिष में पंचांग बनाने के प्रारम्भिक नियम दिये गये हैं। इन नियमों से प्राचीन समय में यज्ञादि के लिए उचित समय का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। बाद में ये श्लोक पवित्र माने जाते थे और जब सूर्य-सिद्धान्त या अन्य सिद्धान्तों के अनुसार अधिक शुद्ध पंचांग बनने लगे तब भी जैसा पहले बताया जा चुका है लोग इन श्लोकों का पाठ करते थे। इसी कारण से अब भी उपलब्ध हैं।

यजुर्वेद ज्योतिष के ४४ श्लोकों में से प्रथम चार और अन्तिम दो में कोई गणित नहीं है। प्रथम श्लोक में प्रजापति की वन्दना है और दूसरे में काल की। तीसरे में ज्योतिष-शास्त्र का उद्देश्य बताया गया है और चौथे में बताया गया है कि वेदांगों में ज्योतिष सर्वश्रेष्ठ है। लिखा है

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्॥

अर्थ—जैसे मोरों में शिखा है और नागों (सर्पों) में मणि इसी प्रकार वेदांग शास्त्रों में ज्योतिष चोटी पर है।

अन्तिम श्लोक में ज्योतिषी के लिए आशीर्वाद है। लिखा है कि

"जो विद्वान् चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रों की गतियों को जानता है इस लोक में काल-ज्ञान पा कर सुखी होगा और (मृत्यु के पश्चात्) चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रों के लोक में जायगा।"

श्लोक ४२ ज्योतिष विषयक नहीं है। उसमें त्रैराशिक का प्रसिद्ध नियम है जो अंकगणित में अत्यन्त उपयोगी है।

इस प्रकार ३७ श्लोक बच जाते हैं जिनमें ज्योतिष-संबंधी विषय हैं।

युग

जैसा पहले बताया जा चुका है समय के लिए तीन प्राकृतिक इकाइयाँ हैं। वे हैं (१) अहोरात्र (अर्थात् दिन रात) (२) चांद्र मास और (३) वर्ष। प्रत्येक प्राचीन पद्धति में प्रधानतः इसी समस्या का हल ढूंढना था कि इन इकाइयों में क्या संबंध है। पृथ्वी के अपने अक्ष के परितः एक बार घूमने से हमें अहोरात्र मिलता है। चन्द्रमा की एक पूर्णिमा (या अमावस्या) से आगामी पूर्णिमा (या अमावस्या) तक एक चांद्र मास होता है और यह पृथ्वी के परितः चन्द्रमा के परिक्रमण के कारण उत्पन्न होता है। सूर्य पृथ्वी के परितः चक्कर लगाता हुआ दिखाई पड़ता है। एक चक्कर का समय एक वर्ष होता है और यह एक वसन्त से आगामी वसन्त तक का समय है।

इन तीन एकाइयों के अतिरिक्त लोग यह भी जानना चाहते थे कि तारों के बीच चंद्रमा आज कहाँ पर है। इसके लिए चंद्रमार्ग को सत्ताइस बराबर भागों में बाँट कर प्रत्येक को एक नक्षत्र कहा गया है जिनके नाम पहले बताये जा चुके हैं।

देखने की बात है कि एक चांद्र मास में पूरे-पूरे दिन नहीं होते। वस्तुतः आधुनिक नापों के अनुसार एक चांद्र मास में २९.५३ ५८८ दिन होते हैं। इसी प्रकार वर्ष में दिनों की संख्या भी पूर्ण संख्या नहीं है। एक वर्ष में ३६५.२४२ दिन होते हैं। प्राचीन समय में दशमलव पद्धति चली नहीं थी और भिन्नों का ज्ञान भी सीमित ही था। इसलिए तब लोग युगों का प्रयोग करते थे जो बहुत ही सुंदर प्रथा है। वे कई वर्षों की अवधि चुन कर उसे युग कहते थे और तब बताते थे कि इस युग में कितने वर्ष, कितने मास और कितने दिन होते हैं। इस प्रकार भिन्नों की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। जब कम वेतन वाला कहता है कि पाँच आने में दो आम मिलेंगे तो वह भिन्नों से बचने की उसी रीति का प्रयोग करता है जिसे वेदांग-ज्योतिष ने मास में दिनों की संख्या बताने के लिए अपनाया था।

स्पष्ट है कि युग जितना ही लंबा चुना जायगा चांद्र मास की लंबाई उतनी ही अधिक सूक्ष्मता से बतायी जा सकेगी। उदाहरणतः हम चाहें तो केवल दो चांद्र मासों का युग चुन कर यह कह सकते हैं कि एक युग में दो चांद्र मास होते हैं और उतने ही में ५९ दिन होते हैं। तो इस प्रकार एक चांद्र मास में ठीक-ठीक २९.५ दिन होंगे। परंतु चांद्र मास इससे कुछ बड़ा होता है। तो भी इससे अधिक सूक्ष्मता इस छोटे से युग में मासों और दिनों की संख्या को पूर्ण संख्याएँ रख कर हम ला ही नहीं सकते। यदि एक युग में केवल एक दिन अधिक रखा जाय तो एक चांद्र मास में दिनों की संख्या ठीक ३० हो जायगी जो वास्तविकता से बहुत अधिक है। इससे स्पष्ट है कि अधिक सूक्ष्मता के लिए आवश्यक है कि अधिक लंबा युग चुना जाय।

पंचवर्षीय युग

वेदांग ज्योतिष में ५ वर्ष का युग चुना गया है और बताया गया है कि एक युग में १८३० दिन होते हैं और ६२ चांद्र मास होते हैं। १८३० को ६२ से भाग देकर हम देख सकते हैं कि वेदांग-ज्योतिष के अनुसार एक चांद्र मास में २९.५१६ दिन होते हैं। यह संख्या वास्तविकता से छोटी है। यदि एक युग में १८३० के बदले १८३१ दिन रक्खे जाते तो चांद्र मास की लंबाई वास्तविकता से कुछ अधिक तो भी पहले मान से अधिक सूक्ष्म निकलती। परन्तु एक युग में १८३१ दिन मानने से वर्ष में दिनों की संख्या ३६६.२ हो जाती जो वास्तविकता से

अधिक दूर है। स्पष्ट है कि वेदांग-ज्योतिष ने भी पर्याप्त लंबा युग नहीं चुना। अवश्य ही चांद्र मास के लिए वेदांग-ज्योतिष का मान (२९.५१६ दिन) साढ़े उनतिस दिन की तुलना में बहुत अच्छा है परंतु यह मान इतना सच्चा नहीं है कि बर्षों तक इसी मान से लगातार गणना की जाय और अंतर न पड़े। उदाहरणतः २ वर्ष में साढ़े तीन दिन की अशुद्धि पड़ जायगी और यदि कोई प्राचीन ज्योतिषी २ वर्ष तक ठीक २९.५१६ दिन पर मास का अंत मानता चला जाता तो वह देखता कि जब उसकी गणना से अमावस्या होगी तो आकाश में चंद्रमा हँसिया-सा दिखायी पड़ता रहता और वह तुरंत देख लेता कि उसकी गणना में लगभग ३½ दिन की अशुद्धि है।

अतः स्पष्ट है कि वेदांग-ज्योतिष में एक मौलिक त्रुटि थी यह कि युग बहुत छोटा चुना गया था। पीछे जो ज्योतिष ग्रंथ लिखे गये उनमें युग अत्यंत लंबा रक्खा गया। उदाहरणतः आर्यभटीय में (जिसकी रचना पाँचवीं शताब्दी ई० में हुई) ४३२ वर्षों का युग माना गया था।

भिन्न

ऐसा नहीं समझना चाहिए कि वेदांग-ज्योतिष में कहीं भिन्न है ही नहीं। परंतु जहाँ-जहाँ भिन्नों की आवश्यकता पड़ी है वहाँ सब से छोटे भिन्न को कोई विशेष नाम दे दिया गया है। उदाहरणतः एक नक्षत्र के एक सौ चौबीसवें भाग को एक भाग कहा गया है। भिन्न हम अब $\frac{1}{124}$ भाग लिखेंगे उसे वेदांग ज्योतिष में १ भाग कहा गया है। इसी प्रकार एक दिन को ६०३ मात्रा में बाँट कर प्रत्येक को एक कला कहा गया है। फिर एक कला को १२४ भागों में बाँट कर प्रत्येक को एक काष्ठ कहा गया है और एक काष्ठ को पाँच भागों में बाँट कर प्रत्येक का एक अक्षर कहा गया है। यह तो प्रत्यक्ष है कि ये नाम इसलिए नहीं रक्खे गये थे कि समय की पूर्वोक्त इकाइयाँ महत्त्वपूर्ण हैं। इन इकाइयों की कल्पना केवल इसलिए की गयी थी कि व्यवहार को दिन के ऐसे भिन्नों की आवश्यकता पड़ गयी थी जिनके हर में ६०३×१२४×५ आता है और उस समय भिन्नों का प्रचलन कम था और संभवतः इसलिए भी कि छंद रचना में नामयुक्त भिन्नों से सुगमता होती थी। सौभाग्यवश भिन्नों की आवश्यकता बहुत कम पड़ी अन्यथा नामों का एक बृहत समूह खड़ा हो जाता जिससे पढ़ने में भी कठिनाई पड़ती और स्मरण रखने में भी।

वेदांग ज्योतिष में क्या है

जैसा पहले बताया गया है यजुर्वेद ज्योतिष के ४३ श्लोकों का अर्थ अब कोई लगा नहीं है। इन श्लोकों में से ३१ में या तो परिभाषाएँ हैं या नियम बताये

गये हैं। शेष १९ श्लोकों में ज्योतिष घटनाओं की गणना के लिए नियम दिये गये हैं।

परिभाषाओं में आढक, द्रोण, कुडव, नाडिका, पाद, काष्ठ, कला, मुहूर्त और ऋतुरूप भी परिभाषाएँ हैं। उन्हों में यह बताया गया है कि युग में कितने वर्ष, मास और दिन होते हैं, एक युग में तारों का उदय कितनी बार होता है, युग में जो दो अधिमास (लौंद के महीने) पड़ते हैं उन्हें कब-कब लगाना चाहिए, और इसी प्रकार की कुछ अन्य बातें। युग के आरम्भ वाले क्षण पर सूर्य और चन्द्रमा की क्या स्थितियाँ रहती हैं इसका भी स्पष्ट उल्लेख है। यह भी बताया गया है कि उत्तरायण और दक्षिणायन का आरम्भ कब-कब होता है। पाठक को ज्ञात होगा कि इन क्षणों पर सूर्य अपनी वार्षिक परिक्रमा में[1] क्रमानुसार उत्तर और दक्षिण जाना आरम्भ करता है। तीन श्लोकों में २७ नक्षत्रों के देवताओं के नाम गिनाये गये हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि यह गणित-ज्योतिष के लिए बेकार है, क्योंकि आगे चलकर एक श्लोक में सत्ताइसों नक्षत्रों को एक विशेष क्रम में प्रदर्शित किया गया है और संक्षिप्तता के विचार से यह आवश्यक था कि एक-एक अक्षर से ही एक-एक नक्षत्र को इंगित किया जाय। इस काम में जहाँ दुविधा पड़ने का भय था वहाँ नक्षत्र के देवता के नाम से कोई सांकेतिक अक्षर लेकर काम बड़ी सुन्दरता से पूरा किया गया है। इसलिए यदि देवताओं का नाम न बताया जाता तो उस श्लोक को समझना ही असम्भव हो जाता। यही पूर्वोक्त श्लोकों की महत्ता है। एक श्लोक का संबंध विशुद्ध फलित ज्योतिष से है। इसमें बताया गया है कि कौन-कौन से नक्षत्र अशुभ हैं।

एक श्लोक में बताया गया है कि सबसे लंबे दिन का मान क्या है। यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे हम पता चला सकते हैं कि लेखक के निवास-स्थान का अक्षांश क्या था। इस पर विचार आगे चलकर किया गया है।

शेष १९ श्लोकों में जैसा ऊपर बताया गया है गणना के नियम हैं। इनमें से एक श्लोक में बताया गया है कि किन तिथियों का क्षय होता है। पाठक को ज्ञात होगा कि भारतीय पद्धति में तिथियाँ क्रमानुसार सभी नहीं आतीं। बहुधा एक

[1] सम्भवतः कोई पाठक आपत्ति करेगा कि सूर्य तो स्थिर है, पृथ्वी परिक्रमा करती है। परन्तु इस बात को जानते हुए भी सुविधा रहने पर ज्योतिष में यह कह देने की प्रथा है कि "सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है"। यह सूर्य की आभासी गति है और किसी को इससे भ्रम नहीं होता।

क्या ऐसा सूत्र बनाने की कला में अवश्य ही आश्चर्यजनक निपुणता है। श्लोक यह है

> जौद्रागः खे श्वे ही रो षा चिन्मूषकण्यः सूमा धाणः
>
> रेमृघास्वापोजः कृष्योहज्येष्ठा इत्यृक्षालिङ्गै यः।

इस श्लोक में नक्षत्र-सूचक अक्षर नक्षत्र के नाम का आदि मध्य या अंत वाला अक्षर है। जहाँ ऐसा करने पर भ्रम होने का डर था या जहाँ एक ही नाम के दो नक्षत्र थे वहाँ नक्षत्र के देवता के नाम से अक्षर चुना गया है। नीचे प्रत्येक अक्षर का तात्पर्य दिया जाता है[1]

१ जौ — अश्वयुजौ — अश्विनी
२ द्रा — आर्द्रा
३ ग — भग (पूर्वा फल्गुनी के देवता)
४ खे — विशाखे
५ श्वे — विश्वेदेवा (उत्तराषाढा के देवता)
६ हि — अहिर्बुध्न्य (उत्तरा भाद्रपदा के देवता)
७ रो — रोहिणी
८ षा — आश्लेषा
९ चित् — चित्रा
१ मू — मूल
११ षक — शतभिषक
१२ ण्यः — भरण्यः भरणी
१३ सू — पुनर्वसू
१४ मा — अर्यमा (उत्तरा फाल्गुनी के देवता)
१५ धा — अनुराधा
१६ ण — श्रवण
१७ रे — रेवती
१८ मृ — मृगशिरा
१९ घा — मघा
२ स्वा — स्वाती
२१ प — आप (पूर्वाषाढा के देवता)

[1] विज्ञान दिसम्बर, १९४४ पृष्ठ ५४।

परतु स्वयं लेखक कौन है इस विषय पर मतभेद है। पुस्तक के प्रथम श्लोक से कुछ लोग यह कहते है कि लेखक का नाम 'शुचि' था परंतु इस अर्थ के बदले कि 'मै शुचि बताऊँगा' यह अर्थ भी कम सच्चा है कि "मै शुद्ध हो कर बताऊँगा"।

यह कहना कठिन है कि लगध महात्मा कौन थे क्योकि संस्कृत साहित्य में उनका नाम अन्यत्र कही नही आता। परतु लगध शब्द संस्कृत मूल से उत्पन्न हुआ नही जान पडता। इससे कुछ लोगो की धारणा है कि वे कोई विदेशी रहे होगे और भारत में ज्योतिष का ज्ञान विदेश से आया होगा।

वेदांग-ज्योतिष में यह दिया हुआ है कि बडे-से-बडे दिन की लबाई क्या थी। इससे हम इसका पता लगा सकते है कि जिस स्थान में ग्रथकार रहता था वहाँ का अक्षाश क्या था। गणना से पता चलता है कि अक्षाश लगभग ३५ रहा होगा। उत्तर काश्मीर या अफगानिस्तान के स्थानो में यह अक्षाश सभव है। इसलिए सभावना यह है कि वेदाग-ज्योतिष का ग्रथकार कही वही का निवासी था। दिनमान को अर्थात् दिन की लबाई को लोग छेद वाली पैदी के बरतन का पानी में डूबना गिनकर सुगमता से नाप सकते थे। इसलिए ऐसा मानने में कोई आपत्ति नही दिखायी पडती कि दिनमान त्रुटिहीन होगा और इसलिए उसके आधार पर निकाले गये अक्षाश पर भरोसा किया जा सकता है।

केवल मध्यक गतियाँ

कुछ बाते वेदाग-ज्योतिष मे नही है जिनको रहना चाहिए था। ग्रथकार ने कही इसकी चर्चा नही की है कि चद्रमा और सूर्य समान कोणीय वेग से नही चलते। यह मानकर कि चद्रमा और सूर्य समान कोणीय वेग से चलते है जो यथार्थ नही है सब गणना की गयी है। इसलिए वेदाग-ज्योतिष में सब तिथियाँ बराबर लबाई की मानी गयी है। पीछे के सब ज्योतिष ग्रथो में (सूर्य-सिद्धात आदि में) चद्रमा और सूर्य के असमान कोणीय वेगो पर विचार किया गया है तिथियाँ छोटी-बडी मानी गयी है और उनकी गणना के लिए आवश्यक नियम दिये गये है। सभवत वेदाग-ज्योतिष के ग्रथकार को इसका पता न रहा होगा कि चद्रमा और सूर्य असमान कोणीय वेग से चलते है। यह भी हो सकता है कि उसने गणना की सुगमता के लिए माना हो कि ये नित्य समान वेग से चलते है परतु ऐसा अधिक सभव नही जान पडता।

वेदाग-ज्योतिष के ग्रथकार को अयन का पता नही था और इसमें कुछ आश्चर्य भी नही है कि उस प्राचीन काल में इस सूक्ष्म गति का ज्ञान नही था।

वेध और गणना में अंतर

एक बात अवश्य विचित्र है। यह कहीं नहीं बताया गया है कि यदि वेध और गणना में अंतर पड़ जाय तो उसका समाधान कैसे करना चाहिए। हम देख चुके हैं कि युग के छोटा होने के कारण और समकालीन वेधों के पर्याप्त सूक्ष्म न होने के कारण वर्ष और मास की लम्बाइयों में त्रुटियाँ थीं और वेदांग-ज्योतिष के नियमों के अनुसार प्रमाण से कुछ वर्षों में इतना अंतर पड़ सकता था कि उसकी अवहेलना नहीं हो सकती थी। इसलिए कोई इस प्रकार का नियम अवश्य होना चाहिए था कि इतने वर्षों में इतने दिन छोड़ दो या वेध करके देख लो और आवश्यक दिन छोड़ दो।

हम अब केवल अनुमान कर सकते हैं कि क्या होता रहा होगा। या तो ऐसे नियम थे और अब उनका लोप हो गया है, जैसा लाला छोटे लाल का मत है, या कोई नियम नहीं थे और समय-समय पर गणना में संशोधन करके गणना के परिणाम को आँख से देखी बातों के अनुसार कर दिया जाता था, जैसा डाक्टर शाम शास्त्री का मत है। लाला छोटे लाल ने बहुत जोरदार शब्दों में अपने मत का समर्थन किया है कि वेदांग-ज्योतिष किसी बड़े ज्योतिष-ग्रंथ का सारांश-मात्र है परन्तु मुझे भी ऐसा लगता है कि संपूर्ण नियम न रहे होंगे। केवल कभी-कभी गणना में कुछ घटी-बढ़ी कर दी जाती रही होगी जैसे पीछे बीज-संस्कार करके कुछ सूक्ष्मता लायी जाती थी। डाक्टर शामशास्त्री का मत है कि एक श्लोक में इसका संकेत है कि आवश्यकता पड़ने पर गणना में घटी-बढ़ी कर देनी चाहिए, परन्तु दूसरों को यह अर्थ स्वीकार नहीं है और निश्चयात्मक रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

यज्ञ आदि के लिए दिन निश्चित करने वालों को इसका पता अवश्य रहा होगा कि वेदांग-ज्योतिष के नियम स्थूल हैं और वे आवश्यकता के अनुसार, आँख से देख कर गणना में संशोधन कर लेते रहे होंगे, परन्तु संभवतः वे ऐसे नियम नहीं बना पाये होंगे जिससे अधिक सच्ची गणना हो सके।

यह भी आश्चर्य की बात है कि वेदांग ज्योतिष में एक वर्ष में ३६६ दिन माने गये हैं जब वर्ष की सच्ची लम्बाई लगभग ३६५¼ दिन है। यह तो अवश्य सत्य है कि वर्ष का आरंभ या अंत ऋतु देखकर बताना बहुत कठिन है, एक वेध में कई दिनों का अंतर पड़ सकता है। परन्तु कई वर्षों का परिणाम बैठाने पर (औसत लेने पर) अधिक शुद्ध मान सुगमता से निकल सकता था। वर्षमान अशुद्ध रहने से ऋतु और वर्ष के आरंभ में अंतर लगातार बढ़ता जाता है। यदि १ वर्षों तक बराबर ३६६ दिन

के वर्ष रक्खे जायँ तो अंत में गणना से प्राप्त और परंपरागत ऋतुओं में लगभग ७५ दिन का अंतर पड़ जायगा अर्थात् बरसात का आरंभ तभी हो जायगा जब गणना के अनुसार केवल वैशाख या जेठ बीता रहेगा और जब क बरसनी चाहिए। अवश्य ही वर्ष को ठीक रखने के लिए कुछ अन्य भी नियम रहे होंगे या वेदांग-ज्योतिष के बाद बने होंगे परंतु वे अब लुप्त हो गये हैं।

दुर्भाग्य की बात है कि १२ ई पू और लगभग ५ ई के बीच बने ज्योतिष ग्रंथों का या इस दीर्घ काल में ज्योतिष की उन्नति का हमें कुछ भी पता नहीं है। ५ ई के लगभग कई ग्रंथ बने और उनमें से महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का वर्णन आगामी अध्यायों में किया जायगा।

अध्याय ६

वेद और वेदांग का काल

कृत्तिकाओं का पूर्व में उदय

इस अध्याय में वैदिक साहित्य के उन उल्लेखों पर विवेचन किया जायगा जिनसे वेद तथा अन्य ग्रंथों के काल पर कुछ प्रकाश पड़ता है। कुछ उल्लेख इस संबंध में विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें सब से अधिक निश्चयात्मक शतपथ ब्राह्मण का यह वाक्य[1] है जो बताता है कि कृत्तिकाएँ "पूर्व दिशा से नहीं हटतीं, अन्य नक्षत्र पूर्व दिशा से हटते हैं।"[2] इसमें तो कोई संदेह है नहीं कि कृत्तिकाएँ तारों के उसी छोटे समूह की सदस्याएँ हैं जिसे आज भी यही नाम दिया जाता है और जिसे अंग्रेजी में प्लाइडीज कहते हैं[3]। सभी इसे स्वीकार करते हैं कि दिशा उस समय की बतायी गयी है जब कृत्तिकाएँ उदित होती हैं[4]। फिर, पूर्वोक्त नियम इस अभिप्राय से बताया गया है कि उनकी सहायता से यज्ञ की वेदी की दिशा ठीक की जाय। इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि ठीक पूर्व दिशा जानने के लिए ही कृत्तिकाओं के उदित होने की दिशा पूर्व दिशा बतायी गयी है। यह बात और भी पक्की

[1] २।१।२।३।

[2] एग्लिंग के अनुवाद के आधार पर (सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट १२)।

[3] वैदिक इंडेक्स १। पृष्ठ ४१५।

[4] थीबो: इंडियन ऐंटिक्वेरी, २४।९४, और उसके बाद के लोग। जहाँ तक मैंने देखा है केवल एक व्यक्ति ने इस उद्धरण से दूसरा परिणाम निकाला है। दीनानाथ चुलैट ने अपने 'वेदकाल निर्णय' नामक (इंदौर से प्रकाशित) ग्रंथ में यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि यह ३ ई० पू० की बात है। इस पुस्तक का सारांश आर्य एण्ड ब्यू ५(१९१३)।१२३ में छपा है।

[illegible] ४

इससे हो जाती है कि कहा गया है कि अन्य नक्षत्र पूर्व से हटे रहते हैं। कृत्तिकाओं के पूर्व में उदित होने से हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि यह किस काल की बात है क्योंकि अयन के कारण (पृष्ठ ७२ देखो) कोई तारा पूर्व में थोड़े ही काल तक उदित होगा और जैसे-जैसे समय बीतेगा वैसे-वैसे वह पूर्व से अधिक हट कर उदित होगा। अंतर साढ़े छ हजार वर्ष तक बढ़ता जायगा और तब घटने लगेगा। लगभग १३ वर्ष बाद तारा फिर पूर्व में उदित होगा। इसलिए इस बात की गणना सुगमता से हो सकती है कि कृत्तिकाएँ कब पूर्व में उदित होती थी। परिणाम यह निकलता है कि ऐसा २५ ई पू में होता था[1]।

इस प्रश्न का उत्तर देना अधिक कठिन है कि शतपथ ब्राह्मण अपने समय की बात बता रहा है या केवल किसी प्राचीन बात को दोहरा रहा है। दीक्षित[2] का विचार है कि यह बात लगभग शतपथ ब्राह्मण के ही समय की है प्राचीन नहीं। उनका कहना है कि यह बात तब लिखी गयी होगी जब कृत्तिकाएँ वस्तुतः पूर्व में उदित होती थी क्योंकि वर्तमान काल का प्रयोग करके लिखा गया है कि कृत्तिकाएँ पूर्व में उदित होती हैं। यदि केवल इसी एक तर्क पर भरोसा करना होता तो परिणाम को पक्का मानना कठिन होता परंतु, जैसा नीचे दिखाया गया है अन्य तर्कों से भी यही समय प्राप्त होता है और यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि प्रत्येक बार ब्राह्मण ग्रंथ पुरानी ही बात दोहरा रहे हैं। परंतु नवीन तर्कों पर विचार करने के पहले यह देख लेना अच्छा होगा कि पूर्वोक्त रीति से प्राप्त समय के विरुद्ध औरों को क्या आपत्तियाँ हैं।

आपत्तियाँ

मैकडानेल और कीथ[3] ने आपत्तियों को इस प्रकार संक्षेप में दर्शाया है —

शतपथ ब्राह्मण के पूर्वोक्त वचन पर इसलिए भरोसा न करना चाहिए कि (क) बौधायन श्रौत सूत्र में भी ऐसी ही सूचना है जिसके साथ एक अन्य सूचना

[1] दीक्षित ने आई ए २४, २४५ २४६ में गणना करके ई पू प्राप्त किया है परंतु अयन का जो मान उन्होंने लिया था वह कुछ अशुद्ध था। २५ ई पू अधिक ठीक तिथि है। देखो के० हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी मेमोयर्स ऑफ दि आर्किऑलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया १८ (१९२४)।

[2] वही, २४६।

[3] वैदिक इंडेक्स १।४२७।

१८।५।

भी है जो गार्ग के अनुसार[1] केवल छठी शताब्दी ई॰ या उसके बाद तक हो सकती है और (ख) वही बात जो शतपथ ब्राह्मण में है माध्यन्दिन पाठ[1] में भी है परन्तु उसके साथ यह भी लिखा है कि कृत्तिकाओं की संख्या अन्य नक्षत्रों के तारों की संख्या से अधिक है अन्य नक्षत्रों में केवल एक दो तीन या चार तारे होते हैं या काण्व पाठ[1] के अनुसार, चार तारे होते हैं।

मैक्डॉनेल और कीथ यह भी कहते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों के इन उल्लेखों पर पूर्णतया विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि हस्त में पाँच तारे थे (नाम भी हस्त इसलिए पड़ा कि हाथ में पाँच अँगुलियाँ होती हैं) और सम्भवतः ऋग्वेद[2] में भी हस्त में पाँच तारों के होने का संकेत है।

बौधायन श्रौत सूत्र

परन्तु ये आपत्तियाँ सबल और ग्राह्य नहीं जान पड़तीं। बौधायन श्रौत सूत्र में जिस वाक्य का उल्लेख किया है वह यों है —

शाला को यहाँ नापना चाहिए, जिसकी छानी की बल्लियाँ पूर्व की दिशा में रहती हैं। कृत्तिकाएँ पूर्व की दिशा से नहीं हटतीं। उनकी ही दिशा में इसे नापना चाहिए, यह एक रीति है। श्रोण की दिशा में नापे यह दूसरी है चित्रा और स्वाती के मध्य नापे यह तीसरी।

यहाँ पहली रीति तो वही है जो शतपथ ब्राह्मण में दी हुई है। परन्तु यह नियम वर्ष के सात-आठ महीनों तक लागू नहीं हो सकता था क्योंकि इतने समय तक कृत्तिकाओं का उदय प्रतिवर्ष दिन में या उषा अथवा सन्ध्या काल में होता है। इसी-लिए बौधायन श्रौत सूत्र ने दो अन्य वैकल्पिक रीतियाँ भी बता दी हैं। शतपथ को आदर के साथ देखने के कारण और साथ ही अयन का ज्ञान न रहने के कारण यह मान लिया गया होगा कि उदय होती हुई कृत्तिकाओं की दिशा में शाला की बल्ली रखना ठीक है ही और तब दो अन्य तारों को चुना होगा जो ठीक उसी दिशा में उदित होते रहे होंगे जिसमें कृत्तिकाएँ उदित होती थीं। इससे हमें यह बहुमूल्य सूचना मिलती

[1] देखो वैकर्स्ट मीचर ब्रास रिचुएल सूत्र डेस बौधायन १७-१९।
शतपथ ब्राह्मण २।१।२।२।
देखो एगलिंग सैक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, १२।२८२। टिप्पणी २।
तुलना करो वेबर : नक्षत्र २।२९८।२८१।
[2] २।१०५।१ ।

है कि बौधायन श्रौत सूत्र के समय में श्रवण और कृत्तिकाओं का उदय एक ही दिशा में होता था। इससे पता चलता है कि बौधायन श्रौत सूत्र का समय लगभग ११११ ई. पू. रहा होगा[1]। तीसरा विकल्प भी इस विचार के अनुसार ही है। उस समय चित्रा और स्वाती के ठीक बीच का बिंदु भी उसी दिशा में क्षितिज पर आता था जिस पर कृत्तिकाएँ आती थीं। कृत्तिकाएँ, श्रवण और चित्रा-स्वाती का मध्यबिंदु ये तीनों आकाश में ऐसी स्थितियों में हैं कि वर्ष के प्रत्येक महीने में इनमें से एक-न-एक का उदय देखा जा सकता था।

सूत्र ग्रंथ ब्राह्मण ग्रंथों के बाद बने[2]। इसलिए बौधायन श्रौत सूत्र के लिए ११११ ई. पू. शतपथ के लिए २५ ई. पू. का समर्थन ही करता है।

इससे प्रत्यक्ष है कि बौधायन श्रौत सूत्र में दिये गये तीन विकल्प यह नहीं सिद्ध करते कि शतपथ का नियम भ्रममूलक था। फिर, विविध नक्षत्रों में तारों की गिनतियों से भी यह नहीं सिद्ध होता कि शतपथ अविश्वसनीय है, क्योंकि मौलिक कथन कि कृत्तिकाओं में अन्य नक्षत्रों से अधिक तारे हैं सत्य है ही। और यह भी नहीं कहा जा सकता कि अन्य नक्षत्रों के तारों की गिनती बताने में शतपथ ने गलती की है, क्योंकि यह ज्ञात नहीं है कि उस समय हस्त में कितने तारे माने जाते थे। चीन वाले नक्षत्रों को स्यू कहते थे और हस्त वाले तारिका-पुंज में वे केवल चार तारे गिनते थे[3]। वेद में हस्त नक्षत्र में पाँच तारों के बारे में जिस वाक्य का संकेत किया गया है वह यों है :

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१॥

ऋग्वेद १।१ ५

इसका अर्थ रामगोविंद त्रिवेदी और गौरीनाथ झा ने यह बताया है :—

विशाल आकाश में ये जो (अग्नि वायु सूर्य इंद्र और विद्युत् आदि) पाँच अभीष्टदाता हैं, वे मेरे इस प्रशंसनीय स्तोत्र को शीघ्र देवों के पास ले जाकर लौट आयें। द्यावा-पृथिवी मेरी यह बात जानो।

[1] देखो गोरखप्रसाद, जरनल, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, जुलाई, १९३६।

[2] मैकडोनेल: ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर (१९) ३५।

[3] ह्विटनी : ओरियंटल ऐंड लिंग्विस्टिक स्टडीज़ २।३५३।

वैदिक काल में वेध

अंत में इस पर भी जोर दिया गया है यद्यपि दिशा ज्ञान करने के संबंध में नहीं कि वैदिक काल के हिंदू ज्योतिषी अच्छे वेधकर्ता न थे क्योंकि वे वर्ष में दिनों की संख्या को भी ठीक-ठीक न माप सके थे यहाँ तक कि वेदांग-ज्योतिष में भी वर्ष में ३६६ दिन माने गये हैं और सूर्य-सिद्धांत तक में अयन का ज्ञान नहीं है। परंतु यदि ये सब आक्षेप ठीक भी हों तो इनसे यह नहीं समझा जा सकता कि पूर्व दिशा ज्ञात करना जो अपेक्षाकृत अति सरल है वैदिक कालीन आर्यों को ठीक-ठीक न आता था। यदि कोई व्यक्ति सदा एक ही स्थान से वेध करे (स्मरण रहे कि यज्ञ के लिए प्राचीन समय में वेदी नियत स्थान में बनी ही रहती थी) और क्षितिज मील भर पर या अधिक दूरी पर रहे (जैसा भारतवर्ष में साधारणतः रहता ही है) तो उदित होते समय सूर्य या चमकीले तारे की दिशा बिना किसी यंत्र के ही कम-से-कम आधे अंश (डिगरी) तक ज्ञात तो की ही जा सकती है। इसमें भी संदेह नहीं कि क्षितिज के उस बिंदु को ध्यान से देखा जाता था जहाँ सूर्य का उदय होता था क्योंकि कौषीतकी ब्राह्मण में इस बिंदु के उत्तर-दक्षिण हटने का सूक्ष्म वर्णन है। वहाँ बताया गया है कि किस प्रकार यह बिंदु दक्षिण हटता है फिर कुछ समय तक स्थिर जान पड़ता है और तब उत्तर जाता है। यदि सूर्योदय के उन दो बिंदुओं को देख लिया जाय जो महत्तम उत्तर और महत्तम दक्षिण की ओर रहते हैं और

मैकडॉनेल और कीथ वैदिक इंडेक्स १।४२१ २४।

देखो बार्हस्पत्य (छोटे लाल) ज्योतिष वेदांग (१२ ७) १९, जहाँ उन्होंने सिद्ध किया है कि ३६६ दिन विशेष प्रयोजन से चुना गया था। फिर, सूर्य-सिद्धान्त में अयन की चर्चा है (३।९) और जितना लिखा है उस समय के लिए पर्याप्त था परंतु पुरस्सरणांक न जानने के कारण सूर्य-सिद्धांत यह नहीं बता सकता था कि सुदूर भविष्य में क्या होगा।

तीस फुट इधर-उधर हटने से कोई हानि न होगी। यदि क्षितिज एक मील पर हो तो इतने से एक-तिहाई अंश (डिगरी) से कम का अंतर पड़ेगा और यदि क्षितिज अधिक दूरी पर हो तो उसी हिसाब से और कम अंतर पड़ेगा।

चंद्रमा का व्यास लगभग आधे अंश का है।

९।२।१।

क्रियात्मक ज्यामिति[1] से या किसी भी संख्या मिलकर या केवल अनुमान से ही पूर्व दिशा का निर्धारण किया जाय तो इस निर्धारण में एक-दो अंश से अधिक की त्रुटि न रहेगी[2]। यह भी संभव है कि शतपथ के काल में शंकु की परछाइयों को प्रातः और संध्या समय ऐसे स्थलों पर देखकर जब वे बराबर रहती हैं उत्तर दिशा को निर्धारित करने की रीति ज्ञात रही हो और ठीक पूर्व दिशा का निर्धारण किया जा सकता रहा हो। परन्तु शंकु के प्रयोग में झंझट रहता है और अधिक समय लगता है इसलिए सर्वसाधारण के लिए बता दिया गया हो कि कृत्तिकाओं के उदय-बिंदु से शाला की बल्ली को ठीक दिशा में रखो क्योंकि इस रीति में कोई असुविधा नहीं रहती।

ब्राह्मण-ग्रंथों का काल

हम देखते हैं कि कोई कारण है ही नहीं जिससे शतपथ के वाक्य पर विश्वास करने में बाधा पड़े और इसलिए यह मानना पूर्णतया न्यायसंगत होगा कि ब्राह्मण ग्रंथों का काल लगभग २५   ई पू है।

यजुर्वेद संहिताओं[3] और ब्राह्मण ग्रंथों[4] में जहाँ कहीं भी नक्षत्रों की सूचियाँ हैं सब कृत्तिका (या कृत्तिकाओं) से आरंभ होती हैं। अवश्य ही इसके लिए कोई कारण होगा। यह कल्पना और भी प्रत्यक्ष तब हो जाती है जब हम विचार करते हैं कि कई बातें जो अन्य देशों में मनमानी रीति से चुन ली गयी थीं भारत में वैज्ञानिक

[1] शुल्ब-सूत्र के काल में पुरोहितों को सरल क्रियात्मक ज्यामिति का अच्छा ज्ञान था। देखो थीबो दि पंडित पुरानी श्रेणी ९ और १ (१८७४-७५) अथवा दत्त सायंस ऑव दि शुल्ब कलकत्ता, १९३२। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि यह ज्ञान एक-दो वर्ष में उत्पन्न नहीं हुआ होगा। इसलिए बहुत संभव है कि इनमें से कई एक रीतियाँ अति प्राचीन हैं।

[2] पूर्व दिशा के निर्धारण में एक अंश की अशुद्धि से उससे निकाले गये दिनांक में लगभग १७५ वर्ष का अंतर पड़ेगा। इसमें यह मान लिया गया है कि स्थान लगभग २४ अंश के अक्षांश में है।

[3] तैत्तिरीय संहिता ४।४।१ ।१ ३ मैत्रायणी सं २।१३।२ काठक संहिता, ३९।१३।

[4] तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।१ ३।१।४।१ और तत्पश्चात अथर्ववेद १९।७।१ और तत्पश्चात।

सिद्धांतो पर निर्धारित की गयी थी। उदाहरणत भारत में वर्णमाला बहुत सोच विचार के बाद स्वर और व्यंजनो को पृथक करके और उनको उच्चारण के अनुसार क्रमबद्ध करके रक्खा गया था[1]। अन्य देशो की वर्णमाला में यह गुण नही पाया जाता। फिर, ऋग्वेद में ऋचाओ का क्रम एक विशेष पद्धति पर है अनियमित रूप से उनको नही रक्खा गया है[2]। फिर, पचाग वैज्ञानिक ढग से बना था[3] जिसकी तुलना में वर्तमान यूरोपीय पचाग भी अविकसित जान पड़ता है। वैदिक पचाग म मासो का निर्धारण ठीक-ठीक चद्रमा से होता था और वर्ष का निर्धारण सूर्य से।

अब ध्यान देने योग्य बात है कि कुछ काल बाद अश्विनी नक्षत्र से आरभ करके नक्षत्र-सूचियाँ बनने लगी और यह निश्चित है कि ऐसा इसलिए किया गया कि उस समय विषुव-बिंदु (अर्थात वह बिंदु जहाँ सूर्य के रहने पर दिन और रात दोनो बराबर होते है और वसत की ऋतु रहती है) अश्विनी के आरम्भ में था। नवीन शैली लगभग छठी शताब्दी ई में चली। इससे अवश्य ही यह धारणा होती है कि सभवत. पहली सूची भी कृत्तिका से इसलिए आरभ होती थी कि उस समय विषुव बिंदु कृत्तिका के आरभ में था। वेबर[4] का भी यही मत था।

यदि वसत विषुव-बिंदु वही था जहाँ कृत्तिकाएँ थी तो अवश्य ही कृत्तिकाएँ ठीक उत्तर में उदित होती रही होगी। इसलिए नक्षत्र-सूचियो का कृत्तिकाओ से आरभ होना शतपथ ब्राह्मणो में कृत्तिकाओ के पूर्व म उदित होने की बात का पूर्ण समर्थन करता है और हम इससे परिणाम निकाल सकते है कि नक्षत्र-सूचियाँ लगभग २५ ई पू में बनी।[5]

[1] इसे तो सभी जानते है; तो भी देखो मैक्डॉनेलः ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, १७।

[2] मैक्डॉनेल; ए हिस्ट्री ऑव संस्कत लिटरेचर, ४१-४५।

[3] तिलकी ओरियन्स ऐड लिग्विस्टिक स्टडीज़ २।१४५।

[4] देखो कोलब्रुकः एसेज़ २।२४६ वेबरः इडिशे स्टुडीन १०।२३४।

[5] नक्षत्र २।३६२ ३६४; इंडिशे स्टुडीन १।२३५; इंडियन लिटरेचर २, सख्या २, इत्यादि।

देखो वेबर, वही बूलर, आई ए २३।२४८, संख्या २ तिलकः ओरायन ४ और तत्पश्चात।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों का विश्वास है कि कृत्तिकाएँ नक्षत्र-सूचियों के आरम में केवल संयोगवश रक्खी गयीं या सम्भवत वे आरम में इसलिए रक्खी गयीं कि उनकी पहचान बहुत सरल थी। यह स्वीकार करने में कि कृत्तिकाएँ और वसत विषुव दोनों साथ थे उन्हें निम्नलिखित आपत्तियाँ हैं —

(क) इस बात को स्वीकार करने में कि कृत्तिकाएँ वसत विषुव पर थीं यह मानना पड़ेगा कि उस समय नक्षत्रों का संबंध सूर्य से रहता था न कि चंद्रमा से।[1] परन्तु यह स्पष्ट है कि इस कल्पना की आवश्यकता ही नहीं है। केवल यह मानना पर्याप्त होगा कि चद्रमा और सूर्य दोनों का संबंध नक्षत्रों से था। साथ ही तो यही बात ठीक है। यह कि प्राचीन समय में भी सूर्य और नक्षत्रों म सबध माना जाता था प्राचीन ग्रथों से सिद्ध किया जा सकता है। जैसा जाकोबी[2] ने बताया नक्षत्रों का देव और यम इन दो वर्गों में तैत्तिरीय ब्राह्मण[3] का विभाजन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है।

इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय ब्राह्मण में[1] वेध से तारों के बीच सूर्य की स्थिति ज्ञात करने की रीति बतायी गयी है। अवश्य ही नक्षत्रों और सूर्य के बीच सबध पर विचार उस समय म किया जाता रहा होगा।

(ख) थीबो[2] का कहना है कि वैदिक साहित्य में विषुवों की चर्चा कहीं नहीं की गयी है और तिलक ने विषुवत का अर्थ जो विषुव लगाया है उसके लिए कोई प्रमाण

[1] थीबो आई ए २३।१६ ओल्डेनबर्ग जेड० डी एम जी ४८, ६११; ४९, ४७३ ५ ४५१-५२; मक्डोनेल भारतवर्ष ६११ ९, ५६४; कीथ जे आर ए एस १९ ९, ११०१ वार्थ बीवार के पीवार आठ रिपुएल सूबडेस बौधायन १७-१९।

[2] मैक्डोनेल और कीथ वैदिक इंडेक्स १।४२१।

जेड डी एम जी ५ ।७२।

१।५।२।८।

दूसरे मत के लिए देखें ओल्डेनबर्ग जेड डी एम जी ४८।६११।

[1] १।५।२।१। तिलक ने अपने ग्रंथ ओरायन में इसका उल्लेख किया है; पृष्ठ १८।

आई ए २३।१६।

नहीं है पीछे विषुवों को महत्त्व इसलिए दिया जाने लगा कि भारतीय ज्योतिषियों पर यूनानियों का प्रभाव पड़ा। वेदांग-ज्योतिष में तारों का मौसम अयनांत से नापा गया था न कि विषुव से और यह कि पीछे की नक्षत्र-सूचियाँ विषुव से आरंभ हुईं थीं कोई कारण नहीं है कि पहले की भी नक्षत्र-सूचियाँ इसी प्रकार से आरंभ होती रही होंगी।

यह कहना कठिन है कि इन नकारात्मक तर्कों को कितना महत्त्व दिया जाय परंतु यह स्मरण रखना चाहिए कि याकोबी और तिलक ने विवेचन करके सिद्ध करने की चेष्टा की है कि कृत्तिकाओं से आरंभ होने वाली नक्षत्र-सूची पुनर्व्यवस्थित सूची है और प्रथम कृत्तिकाओं को जान-बूझ कर सर्वप्रथम इसलिए रखा गया था कि वे उस समय विषुव पर थीं और बूलर[1] का विश्वास है कि याकोबी और तिलक ने अपना कथन संतोषजनक रीति से सिद्ध कर दिया है कि कृत्तिकाओं से आरंभ होने वाली सूची हिंदुओं की प्राचीनतम सूची नहीं है इससे भी एक प्राचीन सूची कभी थी जिसमें वसंत विषुव पर मृगशिरस था।

(ख) ह्विटनी और थीबो[2] दोनों के मत में यदि कृत्तिकाएँ नक्षत्रों में सर्वप्रथम इसलिए रखी गयी थीं कि वसंत विषुव से उनका संबंध था तो संभवतः वे केवल वसंत विषुव के समीप थीं ठीक वसंत विषुव पर नहीं थीं। वेदांग-ज्योतिष बताता है कि शिशिर अयनांत[3] तब होता है जब सूर्य धनिष्ठा के आदि बिंदु पर रहता है। इसलिए उस समय कृत्तिकाएँ वसंत विषुव से कुछ १८ अंश पर थीं। ह्विटनी और थीबो कहते हैं कि वसंत विषुव से कृत्तिकाओं का इतना समीप रहना उनके सर्वप्रथम रखे जाने के लिए पर्याप्त है। इसलिए वे यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि नक्षत्र-सूचियाँ अवश्य ही वेदांग-ज्योतिष से पुरानी हैं। वेदांग-ज्योतिष का काल जैसा हम पहले देख चुके हैं लगभग बारहवीं शताब्दी ई० पू० है और जैसा नीचे बताया जायगा ह्विटनी और थीबो कहते हैं कि इस विभाग में लगभग

[1] आई० ए० २३।२३९। इस लेखक के नाम का उच्चारण वस्तुतः ब्यूलर है परंतु अक्षर विन्यास के अनुसार लोग इसे साधारणतः बूलर ही लिखते हैं।

[2] ओरियंटल एंड लिंग्विस्टिक स्टडीज़ २।१८१।

[3] आई० ए० २४।९७।

शिशिर अयनांत तब होता है जब रात सब से छोटी होती है। इसके बाद सूर्य उत्तर जाने लगता है और दिन धीरे-धीरे बढ़ना आरंभ करता है।

१ वर्ष की अशुद्धि हो सकती है। इसलिए वे कहते हैं कि ऐसा हो सकता है कि ब्राह्मण-ग्रंथ ८००-९०० ई० पू० से अधिक प्राचीन न हों[1]।

उनका तर्क वस्तुतः यह है कि यदि कृत्तिकाएँ वसंत विषुव पर रही हों तो भी संभव है कि वेध की सब त्रुटियाँ इस प्रकार एकत्रित हो गयी हों कि जिन वेधों से साधारणतः २५०० ई० पू० का समय निकलता उनसे केवल ७०० ई० पू० या ऐसा ही कोई दिनांक निकले। यद्यपि सब विपरीत परिस्थितियों के एक ओर जा जुटने की संभावना बहुत ही कम होती है तो भी यह कहा नहीं जा सकता कि ऐसा होना पूर्णतया असंभव है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि ७०० ई० पू० में कृत्तिकाएँ पूर्व से ११ अंश हटकर उदित होती थीं और ऐसी परिस्थिति में अभिधाताओं की पंक्तियों का कृत्तिकाओं की दिशा में रखने का विचार ही किसी के मन में न उठता।

विवाह-संस्कार का साक्ष्य

कृत्तिकाओं के पूर्व में उदित होने तथा नक्षत्र-सूचियों में उनके सर्वप्रथम रहने से जो दिनांक प्राप्त होता है उसका समर्थन पूर्णतया स्वतन्त्र रीति से एक दूसरी बात से होता है। विवाह-संस्कार के वर्णनों में इस प्रथा का भी उल्लेख मिलता है कि वर, वधू को स्थैर्य के प्रतीक रूप ध्रुवतारा को दिखावे। सब प्रधान गृह्य सूत्रों में इस बात का आदेश दिया गया है। इसलिए अवश्य ही यह प्रथा सारे भारत में प्रचलित रही होगी और इसलिए यह विशेष नवीन प्रथा न रही होगी[2]। ध्रुव शब्द का अर्थ है वह जो अपने स्थान से न हटे। इसलिए अवश्य ही उस काल में कोई तारा ऐसा रहा होगा जो अपने स्थान से न हटता रहा होगा। परन्तु अयन के कारण ध्रुवतारा कभी रहता है कभी नहीं रहता। इसलिए हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि पूर्वोक्त प्रथा का आरंभ कब हुआ होगा।

इस प्रश्न को अच्छी तरह समझने के लिए यह स्मरण रखना चाहिए कि वह कल्पित बिंदु जिसके परितः आकाश के सब तारे चक्कर लगाते हैं ध्रुव कहलाता है और अयन के कारण यह बिंदु तारों के बीच धीरे-धीरे चलता रहता है (पृष्ठ १७ का

[1] मैकडोनेल और कीथ : वैदिक इंडेक्स, ४२४।

[2] पारस्कर गृह्य सूत्र १।८।१९; आपस्तंब गृह्य सूत्र २।६।१२; हिरण्यकेशी गृह्य सूत्र १।२२।१४; मानव गृह्य सूत्र १।१४।९; बौधायन गृह्य सूत्र १।५।१३; गोभिल गृह्य सूत्र, २।३।८।

[3] याकोबी : जे० आर० ए० एस० (१९११) ४६१।

चित्र देख जहाँ ध्रुव का मार्ग अंकित है)। जब कभी यह बिंदु किसी चमकीले तारे के पास रहता है तो हम उस तारे को ध्रुव-तारा (या संक्षेप में केवल ध्रुव) कहते हैं। अब महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तीसरी श्रेणी का प्रथम कालिय (ऐल्फा ड्रैकोनिस) नामक तारा गणितीय ध्रुव से निकटतम लगभग २७८० ई० पू० में था। इस हिसाब से लगभग ढाई सौ वर्ष इधर या उधर तक यह तारा गणितीय ध्रुव के इतना समीप था कि हम उस समय का उसे ध्रुव-तारा मान सकते हैं। २ ई०पू० से लेकर ५ ई० तक कोई भी चमकीला तारा—पाँचवी श्रेणी का या इससे अधिक चमकीला—गणितीय ध्रुव के इतना समीप नहीं था कि उसे ध्रुव-तारा कहा जा सकता। पाँचवी श्रेणी के या अधिक चमकीले तारो म स केवल एक तारा इस दीर्घकाल में गणितीय ध्रुव के कुछ पास आया परन्तु निकटतम पहुँचने पर भी यह ध्रुव से लगभग पाँच अंश पर था। यह सन ११ ई० पू० की बात है। लोगो ने देखा होगा कि एक रात्रि में यह तारा अपने उच्चतम स्थान से १ अंश नीचे उतर जाता है। इतनी दूर तक हटने की उपेक्षा लोगो ने कैसे की होगी विशेष कर उत्तर प्रदेश के आर्यों ने जहाँ ध्रुव की क्षितिज से ऊँचाई कुल २५ अंश है? इससे स्पष्ट है कि यदि हम क्षीणतम तारो की उपेक्षा करें अर्थात उन तारो मे से किसी एक को ध्रुव-

आकाश के सब से अधिक चमकीले तारे प्रथम श्रेणी के माने जाते हैं; उनसे कम चमकीले तारे द्वितीय श्रेणी के; इत्यादि। वे तारे जो मंदतम हैं परंतु आँख से दिखायी पड़ते हैं छठवीं श्रेणी के कहे जाते हैं। वर्तमान ध्रुव-तारा द्वितीय श्रेणी का है।

याकोबी आर्ई ए २१।१५७।

पूर्वोक्त चित्र से यह बात स्पष्ट हो जायगी। उसमें तारों के सापेक्ष ध्रुव का मार्ग दिखाया गया है। ध्रुव एक पूरा चक्कर लगभग २६ वर्ष में लगाता है। यह चित्र नॉरटन के स्टार एटलस (चैप और इपक्सिस) के आधार पर खींचा गया है।

याकोबी आर्ई ए २१।१५७।

पृष्ठ ९९ के चित्र में एक दिनरात में इसका मार्ग दिखाया गया है। उसके पहले वाले चित्र में वर्तमान ध्रुवतारे का मार्ग दिखाया गया है। ये दोनो चित्र मोटे हिसाब से पैमाने के अनुसार बने हैं (इन चित्रों में ध्रुव का अक्षांश २५ अंश लिया गया है)।

तारा न मानें जो इतने मंद प्रकाश के हैं कि कम दिखायी भर पड़ जाते हैं तो इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है कि माना जाय कि विवाह की पूर्वोक्त रीति लगभग २७८ ई पू में प्रचलित हुई होगी जब आकाश में वस्तुतः कोई ध्रुव तारा रहा होगा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह निष्कर्ष अन्य तर्कों से निकाले गये निष्कर्ष के अनुरूप ही है। याकोबी का भी यही मत है।[1]

इस मत के विरोधी[2] कहते हैं कि हो सकता है कि पूर्वोक्त रीति जिसका सर्वप्रथम उल्लेख गृह्य सूत्रों में आता है बहुत प्राचीन न हो क्योंकि विवाह-संस्कार के लिए किसी भी तारे से काम चल जायगा जो गणितीय ध्रुव से बहुत दूर न रहा हो। परन्तु यह बात न्यायसंगत नहीं जान पड़ती क्योंकि बहुत मंद तारा या गणितीय ध्रुव से कुछ दूर पर स्थित तारा कभी लोगों का ध्यान इतना आकर्षित ही न करता कि लोग उसे ध्रुव कहते और विवाह के अवसर पर उसे देखने-दिखाने की आवश्यकता समझते। यहाँ यह भी कह देना उचित होगा कि २७८ ई पू के कई हजार वर्ष पहले तक कोई भी चमकीला तारा गणितीय ध्रुव के इतना समीप नहीं था कि उसे ध्रुव-तारा कहा जा सकता[3]।

अन्य उल्लेख

अन्य कई ऐसे उल्लेख हैं जिनका ज्योतिष से संबंध है और जिनसे काल का ज्ञान हो सकता है परन्तु दुर्भाग्यवश वे सभी थोड़ा-बहुत अधूरे हैं और प्रत्येक के दो अर्थ लगाये गये हैं। एक अर्थ तो वेबर, याकोबी, बूलर, बार्थ विंटरनित्स पुसिन[4] तिलक दीक्षित इत्यादि ने लगाया है जिससे २ ई पू से लेकर १ ई पू तक का काल प्राप्त होता है और दूसरा अर्थ ह्विटनी ओल्डेनबर्ग थीबो कीथ और दूसरों ने लगाया है और उनके अनुसार वैदिक साहित्य बहुत प्राचीन नहीं है। संक्षेप में उल्लेख निम्नलिखित हैं

[1] आई ए २३।१८७ जे आर ए०एस १९१ ।४९१।

[2] मैक्डोनेल और कीथ वैदिक इंडेक्स १।४२७।

[3] पृष्ठ ९७ का चित्र देखें अथवा मोल्टन : ऐन इंट्रोडक्शन टू ऐस्ट्रोनोमी मानचित्र १ देखें।

[4] लर्ड दि ला वैली पूसिन वेदिज्मे पेरिस १९ ९, जिसका उल्लेख जे आर ए एस (१९ ९) ७२१ में है।

ब्राह्मण ग्रंथों के समय में फाल्गुन का महीना वर्ष का आरंभ माना जाता रहा होगा क्योंकि कई स्थानों पर फाल्गुन की पूर्णिमा को वर्ष का मुख कहा गया है[1]। काल-निर्णय के लिए इस कथन में कमी यह है कि पता नहीं वर्ष का आरंभ किस ऋतु में तब होता था। याकोबी का कहना है कि वर्ष आरंभ करने की तीन वैकल्पिक प्रथाएँ थीं जिनमें से एक यह था कि वर्ष शिशिर अयनांत से आरंभ होता था। पीछे ऐसी प्रथा थी इसमें कोई संदेह नहीं है[2] और अवश्य ही यह प्रथा पहले से चली आयी होगी। इसे सत्य मान कर गणना करने पर ब्राह्मण-ग्रंथों का काल लगभग ४ ई पू निकलता है। तिलक[3] का मत भी यही है परंतु ओल्डेनबर्ग[4] और थीबो[5] का कहना है कि फाल्गुन को वर्ष का मुख इसलिए कहा गया होगा कि यह वसंत ऋतु का प्रथम मास था[6]। उनका कहना है कि प्राचीन समय में वर्ष को चातुर्मास्यों के अनुसार तीन ऋतुओं में विभक्त करने की भी प्रथा थी और इस प्रथा में एक ऋतु वसंत थी। उनका यह भी कहना है कि यह मत कौषीतकी ब्राह्मण[7] के कथन के अनुकूल है जो यह बताता है कि शिशिर अयनांत माघ

तैत्तिरीय संहिता ७।४।८।१२; पंचविंश ब्राह्मण ५।९।९; इत्यादि।

आई ए २३।१५६; जेड डी एम जी ४९।२२३; ५ ।७२-८१।

[2] शिशिर अयनांत से वेदांग-ज्योतिष के पंचवर्षीय युग का भी आरंभ होता था और इस युग का प्रथम वर्ष भी इसी क्षण से आरंभ होता था। देखें वेदांग-ज्योतिष यजु ५।

ओरायन २७।

जेड डी एम जी ४८, ६३१ और तत्पश्चात ४९, ४७५-७६; ५ ४५३-५७।

आई ए २४।८६।

देखें वेबर, नक्षत्र २।३२९ और तत्पश्चात; इसकी तुलना करो शतपथ ब्राह्मण ११।१।१।१९ कौषीतकी ब्राह्मण ५।१। अन्यत्र भी ऐसे ही उल्लेख हैं। पूर्ण विवरण के लिए देखें वैदिक इंडेक्स १।४२५।

तैत्तिरीय संहिता १।६।१ ।३; तैत्तिरीय ब्राह्मण १।४।९।५; २।२।२।२ इत्यादि।

१९।३।३।

की पूर्णिमा पर होता था और यही बात वेदांग-ज्योतिष[1] में भी है। यद्यपि यह निश्चित नहीं है कि शीत वर्ष के किस दिनांक से वसंत वस्तुतः आरंभ हुआ करता था तो भी नक्षत्र मास की ऋतुओं पर विचार करके थीबो ने इसे लगभग ७ फरवरी को माना है। इस कल्पना के अनुसार ब्राह्मणों का काल लगभग बारहवीं शताब्दी ई॰ पू॰ निकलता है।

बात यहीं नहीं समाप्त होती। तैत्तिरीय संहिता तथा ताण्ड्य ब्राह्मण[2] के उन स्थलों में जहाँ गवाम् अयन सत्र के आरंभ का दिनांक दिया गया है और फाल्गुन को वर्ष का मुख कहा गया है, आरंभ के लिए दो दिनांक बताये गये हैं—चैत्र की पूर्णिमा और एक विशेष पूर्णिमा के चार दिन पहले, परंतु यह नहीं बताया गया है कि यह विशेष पूर्णिमा कौन-सी है।

तिलक का मत

तिलक[3] और याकोबी[4] यह मान लेते हैं कि सत्र के आरंभ के लिए तीन दिनांक सुलभ थे और वर्ष का आरंभ इन तीनों दिनांकों से होता था परंतु विभिन्न कालों में और प्रत्येक काल में वर्ष का आरंभ शिशिर अयनांत से होता था। इस कल्पना के अनुसार तिलक और याकोबी दोनों यह कहते हैं कि पूर्वलिखित वर्षारंभ अर्थात् चैत्र की पूर्णिमा से वर्षारंभ प्राचीनतर काल का अवशेष है। उस प्राचीनतर काल में चैत्र-पूर्णिमा से वर्ष का आरंभ इसलिए होता था कि चैत्र-पूर्णिमा शिशिर अयनांत पर होती थी। इस कल्पना से समय ६ ई॰ पू॰ निकलता है। मीमांसाकारों[5] से सहमत होकर तिलक यह भी कहते हैं कि पूर्णिमा के चार दिन पहले का अर्थ माघ की पूर्णिमा के चार दिन पहले है[6]। इसलिए यह मानना होगा कि जब वर्ष माघ की पूर्णिमा के चार दिन पहले आरंभ होता था तो शिशिर अयनांत लगभग उसी समय होता था। यह बात इससे अनुकूल है कि तब कृत्तिकाएँ वसंत विषुव पर थीं, और इसलिए इससे समय २५ ई॰ पू॰ निकलता है।

वेदांग-ज्योतिष यजु ५ ६।
७।४।८।१।
५।९।
ओरायन अध्याय ४।
कार्ड ए २१।१५६।
जैमिनि ६।५।३०-३७; इत्यादि; देखो ओरायन ५२ और तत्पश्चात्।

परन्तु थीबो का कहना है कि इस प्रकार का अर्थ लगाना व्यर्थ है एक ही समय में किसी प्रदेश में वर्ष किसी विभाग से आरम्भ होता रहा होगा अन्यत्र किसी अन्य विभाग से[1]।

प्राप्य सामग्री से निश्चित रूप से पता चलाना कि सच्ची बात क्या है असम्भव जान पड़ता है। जब एक ही बात से इतने विभिन्न विभाग निकाले जाते हैं और दोनों ओर तर्कसंगत बातें कही जाती हैं तब यही स्वीकार करना उचित जान पड़ता है कि यह सामग्री विनाक निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है।

आग्रहायण

लोग यह भी मानते हैं कि वर्ष का आरम्भ कभी मार्गशीर्ष से भी हुआ करता था क्योंकि इस मास का दूसरा नाम आग्रहायण[2] है (जिससे ही इसे हिंदी में अगहन कहते हैं)। आग्रहायण का अर्थ है वर्ष का अग्र (आरम्भ)। परन्तु इससे भी कोई निश्चित विनाक नहीं निकाला जा सकता क्योंकि इसका पता नहीं है कि जब अगहन से वर्ष का आरम्भ होता था तब आकाश में सूर्य तारों के सापेक्ष कहाँ रहता था या दूसरे शब्दों में ऋतु क्या रहती थी। याकोबी[3] और तिलक[4] का कहना है कि तब सूर्य शरद विषुव पर रहता रहा होगा क्योंकि यह शिशिर अयनात पर फाल्गुनी पूर्णिमा होने के अनुरूप है (जिससे समय लगभग ४ ई पू निकलता है)। परन्तु थीबो का कहना है कि यह तृतीय चातुर्मास्य का आरम्भ होगा क्योंकि चातुर्मास्यों के अनुसार भी ऋतुओं के नामकरण की प्रथा का उल्लेख मिलता है। उनका यह भी कहना है कि याकोबी की आपत्ति में कि वर्ष तृतीय अर्थात अंतिम चातुर्मास्य से कभी न आरम्भ होता रहा होगा कोई विशेष तथ्य नहीं है।

अध्ययन का आरम्भ

याकोबी[5] ने बताया है कि वेद का अध्ययन तब आरम्भ होता था जब घास पहली बार उगने लगती थी अर्थात वर्षा ऋतु के प्रथम मास में। पारस्कर गृह्य

[1] आई ए २४।१४।
[2] थीबो आई ए २४।१४ १५; वेबर, २।११२ और तत्पश्चात।
[3] आई ए २३।१५६।
[4] ओरायन १२ और तत्पश्चात।
[5] आई ए २४।१४ १५।
[6] आई ए २३।१५५।

सूत्र[1] में श्रावण की पूर्णिमा को उपाकरण संस्कार[2] के लिए नियत किया गया है और २ ई० पू० में श्रावण ही वर्षा का प्रथम मास था। परंतु गोभिल गृह्य सूत्र[3] में वही संस्कार प्रौष्ठपद की पूर्णिमा पर करने का आदेश है। (प्रौष्ठपद प्राचीन काल में भाद्रपद को कहते थे।) यह ज्ञात है कि पाठशालाएँ श्रावण की पूर्णिमा को खुलती थी। इसलिए भाद्रपद में उपाकरण करने की बात उस प्राचीन काल से चली आयी होगी जब भाद्रपद ही वर्षा-ऋतु का प्रथम मास रहा होगा और ऐसा ४ ० ई पू में होता था। परन्तु ह्विटनी[4] और अन्य विद्वान इसे स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि वर्षाऋतु और विद्यारम्भ में संबंध रखना आवश्यक न था परन्तु दूसरा का मत यही है जो याकोबी का।

ग्रीष्म अयनांत

(४) सभी जानते हैं कि उत्तर भारत में वर्षा ऋतु ग्रीष्म अयनांत से आरम्भ होती है। ऋग्वेद[5] म एक ऋचा है जो, याकोबी[6] के अनुसार, यह बताती है कि ऋग्वैदिक काल में वर्ष का आरम्भ वर्षा ऋतु से होता था। वर्षा ऋतु से वर्ष के आरंभ होने का समर्थन वर्ष नाम से भी होता है क्योंकि यह वर्षा से प्रत्यक्षतः सबंधित है। वर्ष को शरद भी कहते हैं जिसका अर्थ है जल देने वाला। फिर, ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा[7] से याकोबी ने यह परिणाम निकाला है कि वर्ष का आरम्भ तब होता था जब पूर्णमासी का चद्रमा फाल्गुनी में रहता था। इन दोनों ऋचाओं से यह पता निकलता है कि वैदिक काल में निदिर अयनांत पर फाल्गुन वाली पूर्णिमा होती थी और, जैसा ऊपर बताया गया है इससे समय ४ ई पू निकलता है। परन्तु याकोबी न प्रथम ऋचा के द्वादश का अर्थ लगाया है बारहवाँ महीना

१।१ ।
अर्थात वेदपाठ आरंभ करने का संस्कार।
३।३।
जे ए ओ एस ११।८४ और तत्पश्चात।
आई ए १३।२८२ और तत्पश्चात।
७।१०३।९।
आई ए २३।१५४।
१ ।८५।११।
इति ५

और दूसरे ने[1] इसका अर्थ लगाया है वह जिसके बारह भाग हों अर्थात वर्ष और यद्यपि याकोबी ने व्याकरण से नियम उद्धृत करके दिखाया है कि बारहवाँ महीना अर्थ लगाना अधिक उपयुक्त है और उन्हें वर्ष और अब्द से भी सहायता मिलती है तो भी इस तर्क पर बहुत भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि विद्वानों में मतभेद है और कुछ एक शब्द के अर्थ बदल देने से परिणाम पूर्णतया बदल जाता है[1]।

शिशिर अयनात

(२) कौषीतकी ब्राह्मण[1] स्पष्ट रूप से बताता है कि शिशिर अयनांत माघ की अमावस्या पर होता था। यह काल-निर्णय के लिए बहुमूल्य होता परन्तु एक बात ऐसी है जिससे हम इसका उपयोग नहीं कर पाते हैं हमें यही नहीं ज्ञात है कि माघ की अमावस्या से क्या अभिप्राय था। पता नहीं कि उस समय मास अमावस्या पर समाप्त होता था (अमांत पद्धति) या पूर्णिमा पर (पूर्णिमांत पद्धति)। टीकाकारों का

कैगी और गेल्डनर प्रातमान इत्यादि।

जिस सूक्त में यह ऋचा है वह मेढकों के बारे में है। संदर्भ समझाने के लिए दो पूर्वगामी ऋचाओं का अर्थ नीचे दिया जाता है :

एक वर्ष का व्रत करने वाले स्तोता की तरह वर्ष भर तक सोये हुए पड़े मंडूक (मेढक) मेघ के आने पर हर्ष-नाद करते हैं ॥"

"मेढकों में किसी की ध्वनि गौ की तरह है और किसी की बकरे की तरह। कोई धूम्र वर्ण का है कोई हरे रंग का। नाम तो सबका एक है किंतु रूप नाना प्रकार के हैं। ये अनेक देशों में ध्वनि करते हुए प्रकट होते हैं।

विवादग्रस्त ऋचा यों है :

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥ ९॥

अर्थ—मंडूक दैवी नियम की रक्षा करते हैं। ये वर्ष की [या बारहवें महीने की ?] ऋतु की अवहेलना नहीं करते। [एक] वर्ष पूरा होने पर, वर्षा ऋतु के [फिर] आने पर ग्रीष्म के ताप से पीड़ित मंडूक पहुँचों के बंधन से छूटते हैं।

१९।१। इसकी चर्चा पहले-पहल वेबर ने की; देखो "नक्षत्र" २।३४५ और तत्पश्चात।

कौषीतकी ब्राह्मण पर विनायक की टीका अथवा शाङ्खायन श्रौत सूत्र पर आनर्तीय की टीका, ११।१९।१।

विश्वास था कि माघ का अंत पूर्णिमा से होता था और इसलिए माघ की अमावस्या वह अमावस्या होगी जो मघा नक्षत्र में होने वाली पूर्णिमा के पहले होती थी। परंतु इसका भी साक्ष्य है कि अमान्त पद्धति ही अधिक प्रचलित थी। कारण यह है कि शुक्ल पक्ष को पूर्व पक्ष (पहले आने वाला पक्ष) कहा जाता था और कृष्ण पक्ष को अपर पक्ष[1]। अब यदि माना जाय कि उस समय मास अमान्त होते थे तो माघ की अमावस्या वह होगी जो मघा नक्षत्र की पूर्णिमा के बाद पड़ती है और इस समय शिशिर अयनान्त मानने से प्राप्त दिनांक ज्योतिष-वेदांग के दिनांक से लगभग १९ वर्ष अधिक प्राचीन हो जाता है अर्थात् हम तब ११ ई० पू० प्राप्त होता है[2]।

परंतु यदि माना जाय कि उस समय पूर्णिमान्त पद्धति प्रचलित थी तो माघ की अमावस्या का अर्थ होगा वह अमावस्या जिसे अमान्त पद्धति में पौष की अमावस्या कहते हैं[1] और तब परिस्थिति वह हो जाती है जो वेदांग-ज्योतिष में बतायी गयी है और उससे समय लगभग १२ ईसवी पूर्व निकलता है। कुछ विद्वान पूर्णिमान्त पद्धति को ही अधिक संभव मानते हैं क्योंकि टीकाकारों की भी यही सम्मति है। फिर, जैसा थीबो ने बताया है कौषीतकी ब्राह्मण के समय में हो सकता है कि अमावस्या का अर्थ ठीक-ठीक वही न रहा हो जो पीछे समझा जाने लगा अर्थात् वह तिथि जिसका अंत चंद्रमा और सूर्य की संयुति पर होता है। हो सकता है कि मास अमावस्या से आरंभ होता रहा हो और यह भी हो सकता है कि माघ की अमावस्या से अर्थ रहा हो वह अमावस्या जिससे माघ का महीना आरंभ हुआ अर्थात् मघा में होने वाली पूर्णिमा से पहले वाली अमावस्या। परन्तु यदि हम इस बात को स्वीकार भी कर लें तो यह मानना आवश्यक नहीं है कि कौषीतकी ब्राह्मण और वेदांग-ज्योतिष ठीक समकालीन हैं। वेदांग-ज्योतिष का कथन पूर्णतया निश्चित है। वहाँ जो लिखा है उसका अर्थ है कि शिशिर अयनान्त तब होता है जब सूर्य रविमार्ग के उस सत्ताइसवें भाग के प्रथम बिंदु पर रहता है जिसका नाम श्रविष्ठा है। इसके विपरीत कौषीतकी ब्राह्मण का कथन ऐसा है जो एक वर्ष से अधिक के लिए पूर्णतया सत्य

[1] देखो वैदिक इंडेक्स २।१५८ जहाँ पूर्ण विवरण मिलेगा।

[2] कीथ के अनुसार कौषीतकी ब्राह्मण का लगभग वही काल है जो शतपथ का है या उससे थोड़े ही समय पहले का है (एच ओ एस २५।४७।४८)। परंतु संभव है कि यह वाक्यमेव कौषीतकी ब्राह्मण से पहले का हो।

[3] थीबो के लेख से तुलना करो आई० ए० २४।८९।

नहीं हो सकता था। कारण यह है कि यदि किसी वर्ष शिशिर अयनांत ठीक माघ की अमावस्या पर होता तो आगामी वर्षों में यह ठीक माघ की अमावस्या पर हो नहीं सकता था। आगामी वर्ष में यह लगभग ११ दिन पिछड़ कर होता एक वर्ष और बीतने पर यह माघ की अमावस्या हो जाने के २२ दिन बाद होगा। फिर, बीच में अधिमास लग जाने से आगामी वर्ष माघ की अमावस्या के तीन दिन पहले होता तब आगामी वर्ष में ८ दिन का अंतर पड़ता और इसी प्रकार आगामी वर्षों में भी कुछ-न-कुछ अंतर पड़ा करता। प्रत्यक्ष है कि कौषीतकी ब्राह्मण का कथन केवल स्थूल रूप से शुद्ध है और इस इच्छा के रहने पर कि शिशिर अयनांत तथा कोई अमावस्या साथ पड़े (क्योंकि धार्मिक दृष्टिकोण से यह महत्त्वपूर्ण है) कौषीतकी ब्राह्मण ने कह दिया हो कि शिशिर अयनांत माघ की अमावस्या पर पड़ता है, यद्यपि शिशिर अयनांत और औसत माघी अमावस्या में कुछ दिनों का अंतर रहा हो। इसके अतिरिक्त वेदांग-ज्योतिष के दिनांक में एक हजार वर्षों की अनिश्चितता बतायी जाती है इसलिए पूर्वोक्त विवेचनों के आधार पर निकाला गया कौषीतकी ब्राह्मण के दिनांक में कम-से-कम उतनी ही अनिश्चितता होगी[1]। फिर, निश्चित रूप से कौषीतकी और शतपथ ब्राह्मणों के सापेक्षिक दिनांक ज्ञात नहीं हैं और इनमें से एक भी समूचा एक ही समय की रचना नहीं है। इसलिए कौषीतकी ब्राह्मण के कथन से कोई ध्वनि ऐसी नहीं निकलती जो शतपथ ब्राह्मण तथा अन्य पुस्तकों से निकाले गये दिनांक से बेमेल पड़े।

वेदांग-ज्योतिष में शिशिर अयनांत

वेदांग-ज्योतिष में शिशिर अयनांत की स्थिति धनिष्ठा का आदि-बिंदु बताया गया है। वेदांग-ज्योतिष का दिनांक जानने के लिए इतना पर्याप्त है। परंतु इसमें भी कुछ अनिश्चितता है क्योंकि ठीक-ठीक यह ज्ञात नहीं है कि धनिष्ठा का आदि-बिंदु कहाँ था। इसलिए विविध विद्वानों ने विविध दिनांक

ह्विटनी, ओरियंटल ऐंड लिंग्विस्टिक स्टडीज २।३८४ थीबो आई ए २४।९८; इत्यादि। एक हजार वर्ष की अनिश्चितता अवश्य ही अतिशयोक्ति है।

इस संबंध में देखें गोरखप्रसाद जरनल ऑव दि बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी २१ (१९३५) संख्या ३।

वेदांग-ज्योतिष यजु ७।

निकाले हैं। जोन्स[1] और प्रेट[2] ने ११८१ ई पू निकाला है परन्तु डेविस[3] और कालब्रुक[4] ने ११९१ ई पू निकाला है। अन्य विद्वानों के दिनांक भी इसी प्रकार के हैं। छोटे लाल का मत है कि निस्सन्देह वेदांग-ज्योतिष के वेध सन् १ ०८ ई पू के बाद में किये गये थे परन्तु उन्होंने उस समय बृहस्पति ग्रह के सम्बन्ध में अति विवादग्रस्त कथन का आश्रय लिया है और इसलिए उनकी गणना पर विशेष भरोसा नहीं किया जा सकता। इन विवेचनों से प्रत्यक्ष है कि हम सम्भवतः ठीक-ठीक दिनांक ज्ञात नहीं कर सकते हैं परन्तु इतना निश्चित है कि बारहवीं शताब्दी ई पू वेदांग-ज्योतिष के वेधों के दिनांक से बहुत दूर नहीं है। सभी मानते हैं कि वेदांग-ज्योतिष की रचना ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद हुई[5] इसलिए अन्य आधारों पर निकाले गये दिनांक का इन विवेचनों से समर्थन ही होता है।

सारांश

यदि हम इस सम्भावना का बहिष्कार करें कि वैदिक साहित्य में केवल सुनी सुनायी बहुत पहले की ही बातों का संग्रह है—और ऐसा होना प्रायः असम्भव जान पड़ता है—तो कहा जा सकता है कि इस साहित्य में प्रबल प्रमाण हैं कि वेद २५ ई पू से पहले के हैं। उनका काल ४ ई पू हो सकता है इसके लिए कुछ प्रमाण भी हैं परन्तु वह ऐसा नहीं है कि उससे पूर्णतया सन्तोष हो जाय। साथ ही यह भी है कि इस विचार के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं है।

एशियाटिक रिसर्चेज २।३९३।
जे ए एस बी ३१।४९।
एशियाटिक रिसर्चेज २।२६८; ५।२८८।
इसेज १।१ ९ १ ।
ज्योतिष-वेदांग इलाहाबाद ८३।
थीबो ऐस्ट्रॉनोमी ऐस्ट्रॉलोजी उंड मैथिमैटीक १९-२ ।

अध्याय ७

महाभारत में ज्योतिष

समय की बड़ी एकाइयाँ

महाभारत में ज्योतिष विषयों की चर्चा कई स्थानों पर है जिन पर विचार करने से पता चल सकता है कि उस समय में ज्योतिष का कितना ज्ञान था।

महाभारत में समय की बड़ी एकाइयों के नाम और सबध वे ही हैं जो मनुस्मृति में हैं। विश्व के जीवन-काल को चार युगों में बाँटा गया है जिनके नाम कृत त्रेता द्वापर और कलि हैं। हम कलियुग में हैं अन्य तीन युग बीत चुके हैं। कलियुग के अन्त में प्रलय होगा और तब नयी सृष्टि होगी—ऐसा मनुस्मृति पुराण और महाभारत आदि का विश्वास है। प्रत्येक युग के आरम्भ में सन्ध्या है और अन्त में सन्ध्यांश है। इनमें वर्षों की संख्या निम्न प्रकार है

युग		वर्ष	युग		वर्ष
कृत	सन्ध्या	४	द्वापर	सन्ध्या	२
	मुख्य भाग	४		मुख्य भाग	२
	सन्ध्यांश	४		सन्ध्यांश	२
त्रेता	सन्ध्या	३	कलि	सन्ध्या	१
	मुख्य भाग	३		मुख्य भाग	१
	सन्ध्यांश	३		सन्ध्यांश	१

चारों युग मिल कर = १ देवयुग = १२ वर्ष

१ दैवयुग = ब्रह्मा का १ दिन।

टीकाकारों के अनुसार ऊपर जिन वर्षों की संख्या दी गयी है वे मानव वर्ष नहीं हैं दैव वर्ष हैं और प्रत्येक देव वर्ष १६ मानव वर्षों के बराबर होता है।

मनुस्मृति प्रथम अध्याय।

आधुनिक विज्ञान बताता है कि पृथ्वी का जन्म आज से लगभग अरब (अर्बुद) वर्ष पहले हुआ होगा। ऊपर की सारणी से पता चलता है कि हमारे प्राचीन ऋषियों के मत में भी सृष्टि कई अरब वर्ष पहले हुई थी। इसका महत्व तब दिखाई पड़ता है जब इसकी तुलना अन्य धर्मों के मतों से की जाती है। कुछ ही सौ वर्ष पहले यूरोप में प्रचलित धर्मग्रंथ के अनुसार राजाओं की वंश-परंपरा देखकर पृथ्वी की आयु ४ वर्ष आँकी जाती थी।

महाभारत में पाँच वर्षों के युग की चर्चा है[1]। पांडवों के जन्म के संबंध में यह उल्लेख है

अनुसंवत्सरं जाता अपि ये कुरुसत्तमाः ॥
पांडुपुत्रा व्यराजंत पंच संवत्सरा इव ॥ २२ ॥

आदिपर्व अ १२४

अर्थ—एक-एक वर्ष के अन्तर से उत्पन्न हुए कुरुओं में श्रेष्ठ पांडु के वे पाँचों पुत्र (युग के) पाँच वर्षों के समान लगते थे।

वर्ष

वर्ष की लंबाई के संबंध में भी महाभारत के एक कथन से हमें सहायता मिलती है। पाठक को ज्ञात होगा कि जुआ में हारने पर पांडवों को १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास स्वीकार करना पड़ा था परंतु अज्ञातवास के लगभग अंत में अपने आश्रयदाता पर विपत्ति पड़ने पर अर्जुन को दुर्योधन आदि के विरुद्ध लड़ने के लिए लाचार होना पड़ा। जब दुर्योधन आदि ने अर्जुन को पहचान लिया तब उन्हें यह जानने की आवश्यकता पड़ी कि वनवास के आरंभ से उस दिन तक पूरे १३ वर्ष बीत गये थे या नहीं। आपस में मतभेद होने के कारण यह प्रश्न भीष्म के सम्मुख रक्खा गया। तब उन्होंने दुर्योधन से कहा

तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात्।
पंचमे पंचमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः ॥ ३ ॥
एषामभ्यधिका मासाः पंच च द्वादश क्षपाः।
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः ॥ ४ ॥

विराटपर्व अ ५२

युग शब्द किसी भी दीर्घकाल के लिए प्रयुक्त होता था चाहे वह पाँच वर्ष का हो चाहे वह लाखों वर्ष का हो।

अर्थ— समय के बढ़ने तथा नक्षत्रों के हटने से प्रति पाँचवें वर्ष दो अधिमास (मलमास) होते हैं ॥३॥

मेरी समझ में तो (बन गए हुए) इन (पाण्डवों) को तेरह वर्ष से पाँच मास और बारह दिन अधिक हो गये ॥४॥

अयन का परिणाम

ऊपर की गणना वेदांग-ज्योतिष के अनुसार की गयी है। स्पष्ट है कि महाभारत के समय भी वेदांग-ज्योतिष के ही नियम चालू थे। परन्तु जान पड़ता है कि अयन' के कारण जो अंतर पड़ गया था उसके लिए किसी प्रकार का संशोधन कर लिया गया था क्योंकि यहाँ नक्षत्रों के हटने की बात भी कही गयी है। हम देख चुके हैं कि वेदांग-ज्योतिष के समय में उत्तरायण तब आरम्भ होता था जब सूर्य धनिष्ठा के आरम्भ में रहता था। अयन के कारण उत्तरायण के आरम्भ होने का स्थान लगभग १ वर्षों में एक नक्षत्र (=१ चक्कर का सत्ताइसवाँ भाग) हट जाता है। इसलिए महाभारत के समय में उत्तरायण धनिष्ठा के आरम्भ-बिंदु से न होता रहा होगा। महाभारत के कुछ वाक्यों से अधिक स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि आवश्यक संशोधन हो गया था क्योंकि लिखा है

चकारान्यं च लोकं वै क्रुद्धो नक्षत्रसंपदा ॥
प्रतिश्रवणपूर्वाणि नक्षत्राणि चकार यः ॥३७॥

आदिपर्व अ ७१

अर्थ—(विश्वामित्र ने) क्रुद्ध होकर दूसरे लोक तथा श्रवण से आरम्भ होने वाले नक्षत्रों का निर्माण किया।

आकाश का वह बिंदु जहाँ सूर्य के रहने पर दिन और रात दोनों बराबर रहते हैं और ऋतु वसंत रहती है 'वसंत विषुव' कहलाता है। वसंत विषुव तारों के सापेक्ष धीरे-धीरे पीछे मुँह (अर्थात सूर्य के चलने से उलटी दिशा में) खिसकता रहता है और एक चक्कर लगभग २१ वर्ष में लगाता है। वसंत विषुव के इस प्रकार चलने को अयन कहते हैं। इसी अयन के कारण आकाशीय ध्रुव भी चलता रहता है (पृष्ठ ५९)। उत्तरायण और दक्षिणायन में अयन शब्द का प्रयोग हुआ है परन्तु विषुव के चलने और उत्तरायण दक्षिणायन में विशेष संबंध नहीं है। भ्रम दूर करने के लिए कुछ लोग विषुव के चलने को अयन चलन कहते हैं परन्तु यह उचित नहीं है, क्योंकि स्वयं अयन का अर्थ है चलना। विषुव-अयन अधिक उपयुक्त है।

फिर, यह भी वाक्य आता है —

अहः पूर्वं ततो रात्रिर्मासा शुक्लादय स्मृता ॥
श्रवणादीनि ऋक्षाणि ऋतव शिशिरादय ॥२॥

आश्वमेधपर्व अ ४४

अर्थ—ऐसा कहा जाता है कि पहले दिन अनन्तर रात तदनन्तर शुक्ल इत्यादि पक्ष मास श्रवण इत्यादि नक्षत्र एवं शिशिर आदि ऋतुएँ उत्पन्न हुई।

श्रवण इत्यादि नक्षत्र कहने से स्पष्ट है कि नक्षत्र श्रवण से आरम्भ होते थे और नक्षत्रों का श्रवण से आरम्भ होना यह सूचित करता है कि वहाँ या तो विषुव रहा होगा या उत्तरायण-बिन्दु या दक्षिणायन-बिन्दु क्योंकि ऐसी ही प्रथा पहले से चली आ रही थी। अन्य बातों के समान न होने के कारण मानना ही पड़ता है कि श्रवण के नक्षत्र में उत्तरायण-बिन्दु था।

श्रवण के आरम्भ-बिन्दु पर उत्तरायण लगभग ४५ ई पू में होता था।

सप्ताह

सप्ताह और दिनों के नाम (रविवार, सोमवार,) का उल्लेख कहीं भी नहीं है। महाभारत में अन्य-अन्य तिथियों से (नक्षत्र आदि बता कर) दिनांक इतनी बार बताया गया है कि रविवार आदि नाम न रहने से यह परिणाम अनिवार्य हो जाता है कि उस समय दिनों का नामकरण नहीं हुआ था। मीन मेष या राशि का नाम भी कहीं नहीं आता है। निस्सन्देह इन सब राशियों का जन्म महाभारत-युग के बाद हुआ होगा।

उत्तरायण और दक्षिणायन

महाभारत में दिनांक अधिकतर चन्द्रमा की स्थिति से बताये गये हैं परन्तु कहीं-कहीं पर सूर्य की स्थिति से भी दिनांक बताये गये हैं। उदाहरणतः एक स्थान पर यह है —

पर्वसु द्विगुणं दानमृतौ दशगुणं भवेत् ॥१२४॥
अयने विषुवे चैव षडशीतिमुखेषु च ॥
चन्द्रसूर्योपरागे च दत्तमक्षयमुच्यते ॥१२५॥

वनपर्व अ २

अर्थ—पर्व-दिनों में अर्थात् अमावस्या या पूर्णिमा के दिन दिया गया दान दुगुना पुण्य उत्पन्न करता है, ऋतु (के आरम्भ) में दिया गया दान दस-गुना पुण्य

उत्पन्न करता है। उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवों पर, तथा षडशीतिमुखों और चन्द्र तथा सूर्य के ग्रहणों पर दिया गया दान अक्षय कहा जाता है।

उत्तरायण और दक्षिणायन वे ही हैं जो अब मकर-संक्रांति और कर्क-संक्रांति कहलाते हैं। विषुव वे अवसर हैं जब मेष और तुला संक्रांतियाँ होती हैं। षडशीतियाँ वे समय हैं जब सूर्य रविमार्ग के उन भागों में रहता है जिन्हें अब मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशि कहते हैं। इससे प्रत्यक्ष है कि महाभारत के समय में रविमार्ग को १२ भागों में विभक्त किया जाता था। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि वर्ष में १२ महीने माने जाते थे। परन्तु महाभारत में राशियों के नाम नहीं दिये गए हैं। इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि उस समय रविमार्ग के बारह भागों का नामकरण नहीं हुआ था, अर्थात् मेष आदि नाम बाद में रक्खे गये।

ग्रहण

ऊपर के उद्धरण में ग्रहणों की चर्चा है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी ग्रहणों की चर्चा है। यह लोगों को ज्ञात था कि ग्रहण केवल अमावस्या या पूर्णिमा को लग सकते थे। अमावस्या या पूर्णिमा को वे पर्व कहते थे। अनहोनी-सी बात का होना अशुभ समझा जाता था। इसलिए जब पाण्डव वनवास जाने लगे तब ऐसा लिखा है कि अपर्व पर ही सूर्य-ग्रहण हुआ

राहुरग्रसदादित्यमपर्वणि विशाम्पते ॥ १९ ॥

सभापर्व अ ७९

अर्थ—हे राजन्! (उस समय) बिना पर्व (अमावस्या) के ही राहु ने सूर्य का ग्रहण कर दिया।

महाभारत युद्ध के आरंभ में एक ग्रहण के बाद दूसरे ग्रहण का १३ दिन पर ही हो जाना महा-अनिष्ट होने के लक्षण-स्वरूप लिखा गया है

अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीं।
चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णे नभस्तले ॥

भीष्मपर्व अ. २

चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां तु षोडशीं ॥
इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीं ॥
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीं ॥ ३२ ॥

भीष्मपर्व अ ३

अर्थ—कार्तिक की पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा प्रभाहीन होकर अदृश्य हो गया फिर कमल के समान नीले आकाश में अग्नि के रंग का (अर्थात् लाल) हो

गया[1]। पहले समय में चौदहवें, पन्द्रहवें अथवा सोलहवें दिन अमावस्या होती थी परंतु तेरहवें दिन अमावस्या का होना शुभ कदापि मान नहीं है। पर इस बार तो एक मास के भीतर ही (पूर्णिमा पर) चंद्रमा का और अमावस्या को सूर्य का ग्रहण हुआ है।

इससे प्रत्यक्ष है कि ग्रहणों के संबंध में पूर्व काल से ज्ञात था कि दो ग्रहणों के बीच केवल १३ दिन का अंतर नहीं हो सकता। वास्तव में उस समय १३ दिन के अंतर पर दूसरा ग्रहण लगा था या लेखक ने अशुभ लक्षणों में इसे भी गिना देना उत्तम समझा, कहा नहीं जा सकता, क्योंकि कभी-कभी पक्ष (अर्ध-मास) १४ दिन से कम का भी होता है और तब उसे १३ दिन का गिना जा सकता है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने बताया है कि शक १७ [illegible] ३ में फाल्गुन का कृष्ण पक्ष कुल १३ दिन का था। इसी प्रकार शक १८ [illegible] के ज्येष्ठ का शुक्ल पक्ष फिर कुल १३ दिन का था। ये १३ दिन के पक्ष विरले अवसरों पर ही आते हैं। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार पक्ष का न्यूनतम मान १४ दिनों से थोड़ा ही कम निकलता है। इस संबंध में पाठक को स्मरण रखना चाहिए कि न तो सूर्य सदा एक वेग से चलता है और न चंद्रमा ही। इसलिए पक्षों की लंबाई बराबर नहीं होती। यदि १४ दिन से कुछ कम का पक्ष हुआ तो भारतीय गणना के अनुसार दो ग्रहण १३ दिन पर लग सकते हैं। उदाहरणतः यदि किसी दिन (कल्पना के लिए मान लें १ जनवरी को) सूर्योदय के कुछ मिनट बाद तक ग्रहण लगा रहा तो अवश्य ही कहा जायगा कि उस दिन (अर्थात् १ जनवरी को) सूर्यग्रहण लगा था। १३ दिन बाद १४ जनवरी हो जायगी। उस हिसाब को यदि रात बीतने के दस-पाँच मिनट पहले चन्द्रग्रहण आरंभ हुआ तो अवश्य ही लोग कहेंगे कि १४ जनवरी को चन्द्रग्रहण लगा, क्योंकि हिन्दू भारतीय पद्धति में दिनांक सूर्योदय के साथ बदलता है, अर्धरात्रि के साथ नहीं। इस उदाहरण में १ जनवरी वाले सूर्यग्रहण के मध्य से १४ जनवरी वाले चन्द्रग्रहण के मध्य तक १३ दिन से कई घंटे अधिक बीत चुके रहेंगे, परंतु साधारण लोगों की भाषा में १३ दिन पर ही ग्रहण लग गया। इसलिए १३ दिन पर ग्रहण लगना असंभव ही नहीं है।

तो भी असाधारण बात है, अवश्य अनिष्ट होना दूसरी बात है। शुभ था महाभारत-युद्ध के आरंभ में दुर्योधन दो ग्रहणों का लगना केवल कवि की कल्पना

[1] सर्व चन्द्रग्रहण के अवसर पर ऐसा ही होता है।

जान पड़ती है। इस संदेह का समर्थन यों भी होता है कि दुर्योधन के मरने पर भी यही बात लिखी गयी है

राहुश्चाग्रसदादित्यमपर्वणि विशांपते ॥ ११ ॥

गदापर्व अ २७.

युद्ध के एक महीने पहले सूर्यग्रहण लग चुका था[1]। युद्ध के अंत में फिर सूर्य ग्रहण का लगना असंभव था। अपर्व में ग्रहण लगना तो सर्वथा असंभव है ही। इसलिए दुर्योधन के मरते समय अपर्व में ग्रहण लगना कवि की कल्पना ही हो सकती है। अतः ग्रहण संबंधी अन्य बातें भी अवास्तविक हों तो क्या आश्चर्य है।

परंतु इन उल्लेखों से यह तो स्पष्ट ही है कि ग्रहण कितने-कितने दिन पर लग सकते हैं इसका अच्छा ज्ञान उस समय भी था।

राहु सूर्य को निगल जाता है इससे सूर्यग्रहण लगता है इस कथन से पता नहीं चलता कि सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का वास्तविक कारण महाभारत के समय के ज्योतिषियों को ज्ञात था या नहीं। परंतु ग्रहों के संबंध में महाभारत में कहीं उन्हें पाँच माना गया है कहीं सात। सात तभी संभव है जब राहु और केतु भी उनमें गिन जायें। परंतु राहु और केतु का भी ग्रह माना जाना सूचित करता है कि उनकी गतियाँ ज्ञात थीं। इससे बड़ी संभावना हो जाती है कि ग्रहणों का ठीक कारण भी उस समय ज्ञात था।

ग्रह

ग्रहों की संख्या के संबंध में एक उद्धरण नीचे दिया जाता है

ते तु बद्धा महेष्वासा द्रौपदेया प्रहारिणः ॥
राक्षसं दुद्रुवुः सख्ये ग्रहाः पंच रविं यथा ॥३७॥

भीष्मपर्व अ. १

अर्थ—जैसे पाँच ग्रह सूर्य को घेरते हैं वैसे ही द्रौपदी के पाँचों महान धनुर्धर पुत्रों ने क्रुद्ध होकर अलम्बुष नामक राक्षस को घेर कर उस पर आक्रमण किया।

[1] दीक्षित भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ ११५।

ग्रहों की अनुवक्र तथा प्रतिवक्र (वक्र) गतियाँ अर्थात् उनका आगे और पीछे चलना भी महाभारत के समय के लोग जानते थे।[1] लिखा है

प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुर्जघ्ने संसप्तकान् बहून्॥
वक्रातिवक्रगमनादंगारक इव ग्रहः॥ १॥

कर्णपर्व अ १४ (भंडारकर रि इं)

अर्थ—फिर अर्जुन ने पीछे लौटकर बहुत-से संसप्तकों पर उसी प्रकार प्रहार किया जैसे तीव्र वक्र गति से चलता हुआ मंगल नामक ग्रह।

तारों के बीच कौन ग्रह कहाँ है इसका उल्लेख बीसों स्थान पर है। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति॥ १२॥
धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यं चाक्रम्य तिष्ठति॥ १३॥
मघास्वंगारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः॥
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते॥ १४॥

[1] पाठकों की जानकारी के लिए नीचे १९५६ में तारों के सापेक्ष मंगल का मार्ग दिखाया गया है। देखें कि लगभग ५ जुलाई से ९ अक्तूबर तक मंगल की गति वक्र (अर्थात् उलटी दिशा में) है। [कोने में अन्य ग्रह का मार्ग दिखाया गया है।]
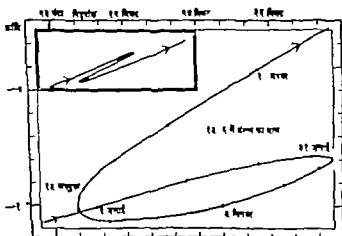
शुक्र प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते ॥ १५ ॥
रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ॥
चित्रास्वात्यन्तरे चैव विष्ठितः परुषग्रहः ॥१७॥
वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावकप्रभः ॥
ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहितांगो व्यवस्थितः ॥१८
संवत्सरस्थायिनौ च ग्रहौ प्रज्वलितावुभौ ॥
विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ॥ २७ ॥

भीष्मपर्व अ ३

अर्थ—(व्यास जी ने धृतराष्ट्र से कहा कि हे राजन्! कार्तिकी के बाद संग्राम का आरम्भ होगा क्योंकि उस समय) श्वेतग्रह (केतु) चित्रा को पार करके (स्वाती पर) रहेगा। महाभयंकर धूमकेतु (पुच्छलतारा) पुष्य के पास पहुँचेगा। मघा पर मंगल तथा श्रवण पर बृहस्पति वक्र होंगे एवं पूर्वा फाल्गुनी को पकड़ कर शनि उसे पीड़ित करेगा। पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्र पर समारूढ़ होकर शुक्र प्रकाशमान होगा। सूर्य और चन्द्रमा दोनों रोहिणी में रहेंगे और परुषग्रह (निर्दयी ग्रह) चित्रा और स्वाती के बीच रहेगा। वक्रानुवक्र (अर्थात् अति वक्र) होकर श्रवण में अग्नि के समान लाल लोहितांग (मंगल) ब्रह्मराशि (तारा विशेष) को भलीभाँति ढक लेगा। अत्यन्त प्रज्वलित बृहस्पति और शनैश्चर विशाखा के समीप वर्ष भर तक रहेंगे। [और ग्रहों की ये स्थितियाँ अत्यन्त अनिष्टकारी हैं।]

इन सब उद्धरणों से स्पष्ट है कि महाभारत के समय में लोगों को ग्रहों का अच्छा ज्ञान था। आकाश में ग्रहों की स्थितियाँ क्या हैं यह अवश्य ही बराबर देखा जाता रहा होगा।

अध्याय ८

आर्यभट

वेदांग-ज्योतिष के बाद

वेदांग-ज्योतिष के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक का हमें कोई भारतीय ज्योतिष-ग्रंथ नहीं मिलता। तब कौटिल्य के अर्थशास्त्र से (जो लगभग ३ ई० पूर्व का है) पता चलता है कि उस समय भी ज्योतिष में विशेष उन्नति नहीं हो पायी थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के लगभग १ वर्ष बाद की एक पुस्तक सूर्य-प्रज्ञप्ति है जिसमें जैनियों के मतानुसार विश्व की रचना की गयी है। इसके ज्योतिष सम्बन्धी नियम वेदांग-ज्योतिष से मिलते-जुलते हैं। इसके बाद लगभग ७ वर्ष के भीतर का लिखा हमें कोई ग्रंथ नहीं मिलता। तब हमें सन ४९९ ईसवी का आर्यभट-लिखित आर्यभटीय मिलता है। तंत्र नामक ग्रंथ भी आर्यभट का लिखा है। ये दोनों ग्रंथ आज भी उपलब्ध हैं। आर्यभट का जन्म सन ४७६ ई० में हुआ था। उनके बाद वराहमिहिर हुए जिनकी एक रचना पञ्चसिद्धान्तिका है। पञ्चसिद्धान्तिका में विशेषता यह है कि उसमें लेखक ने अपना सिद्धान्त न देकर उस समय के पाँच प्रचलित सिद्धान्तों का वर्णन किया है। ये हैं पौलिश रोमक वासिष्ठ सौर और पैतामह। वराहमिहिर ने लिखा है कि "इन पाँच में से पौलिश और रोमक के व्याख्याकार लाट देव हैं। पौलिश सिद्धान्त स्पष्ट है, रोमक सिद्धान्त उसी के निकट है, सूर्यसिद्धान्त सब से अधिक स्पष्ट है, शेष दोनों बहुत भ्रष्ट हैं। वराहमिहिर की मृत्यु सन ५८७ ई० में हुई। पञ्चसिद्धान्तिका में दिये हुए पैतामह सिद्धान्त में गणना करने के लिए सन ८ ई० को आदि काल माना है जिससे अनुमान किया जाता है कि असली पैतामह सिद्धान्त लगभग उसी समय रचा गया होगा। पैतामह सिद्धान्त भी ज्योतिष-वेदांग से बहुत आगे नहीं बढ़ पाया है। इसलिए वराहमिहिर ने इसे भ्रष्ट बताया है।

वराहमिहिर के बाद सन ५९८ ई० में ब्रह्मगुप्त उत्पन्न हुए जिनकी लिखी पुस्तकें ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त और खंडखाद्यक आज भी प्राप्य हैं। भास्कराचार्य ने अपनी

रचना सिद्धान्तशिरोमणि का ११५० ई० में तैयार किया। उनके बाद फिर किसी भारतीय ज्योतिषी ने विशेष ख्याति नहीं प्राप्त की।

आर्यभट के पहले के ज्योतिषी

जैसा ऊपर बताया गया है, आर्यभट की पुस्तक आर्यभटीय आज भी प्राप्य है। परन्तु आर्यभट के पहले भी कुछ प्रसिद्ध ज्योतिषी हो गये हैं जिनकी पुस्तकें अब लुप्त हो गयी हैं। इन ज्योतिषियों में से कई की चर्चा कई स्थानों पर आती है। महाभारत में लिखा है कि गर्ग महर्षि राजा पृथु के ज्योतिषी थे। उनको काल का ज्ञान विशेष-कर से अच्छा था। उनकी गार्गी-संहिता अब लुप्त हो गयी है, परन्तु सम्भव है गणित-ज्योतिष के बदले इसमें फलित ज्योतिष की बातें ही अधिक रही हों। वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के अतिरिक्त बृहत्संहिता नामक ग्रंथ भी लिखा है जो फलित ज्योतिष पर है। उसमें उन्होंने गर्ग से कई अवतरण दिये हैं जिनमें से दो तीन यहाँ दिये जाते हैं:

"वृद्ध गर्ग के प्रमाण पर मैं कहता हूँ कि सप्तर्षि मघा में थे।"[1]

"देवताओं के निवासस्थान मेरु पर्वत की इस वाटिका में नारद ने रोहिणी योग के नियमों की शिक्षा बृहस्पति को दी। उन्हीं नियमों की शिक्षा गर्ग पराशर, कश्यप और मय अपने अनेक शिष्यों को देते रहे हैं। उनके तथ्यों का निरीक्षण कर मैं संक्षिप्त पुस्तक लिखता हूँ।"[2]

"मैंने केतुओं की चर्चा की है, परन्तु पहले मैंने गर्ग, पराशर और असित देवल की पुस्तकों का तथा अन्य सब पुस्तकों का चाहे वे गिनती में कितनी भी अधिक हों अध्ययन कर लिया है।"[3]

पुलिश जिसके पौलिशसिद्धान्त को संक्षेप में वराहमिहिर ने अपनी पंच सिद्धान्तिका में दिया है संभवतः कोई यवन था क्योंकि अलबीरूनी ने (सन १०११ ई० में) अपने 'भारतवर्ष' में लिखा है कि पौलिश सिद्धान्त को पुलिश ने बनाया है जो सैन (सम्भवतः अलेक्जैंड्रिया) का निवासी था।

के महाशय की पुस्तक 'हिन्दू ऐस्ट्रोनोमी' में दिये गये अवतरणों से संकलित।

[1] बृहत्संहिता १३।३।

[2] बृहत्संहिता २४।२। पराशर तथा कश्यप के बारे में हमें अन्य कोई ज्ञान नहीं है। मय ने सूर्य-सिद्धान्त की घोषणा की थी।

[3] बृहत्संहिता ११।१। असित देवल का भी पता अब नहीं चलता।

ज्योतिष पर बौद्ध धर्म के विचार

बौद्ध धर्म फलित ज्योतिष को और अपत गणित ज्योतिष को भी बहुत ही हीन दृष्टि से देखता था। लिखा है कि

"कुछ ब्राह्मण और धर्मा लोग अपनी जीविका का उपार्जन नीच वृत्तियों से करते हैं और मय द्वारा दिये गये अन्न का भोग करते हैं। वे भविष्यवाणी करते हैं कि सूर्य-ग्रहण लगेगा चन्द्रग्रहण लगेगा नक्षत्रों का ग्रहण लगेगा चंद्रमा और सूर्य पथ में चलेंगे चन्द्रमा और सूर्य उपपथ में चलेंगे नक्षत्र पथ में चलेंगे नक्षत्र उपपथ में चलेंगे उल्कापात होगा दिशा-दाह (?) होगा भूचाल होगा देवदुन्दुभि बजेगी सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्र का उल्टा-पल्टा उदय होगा अस्त होगा सब पर विपत्ति पड़ेगी।"[1]

आर्यभट

जब बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा गुप्तकाल में हिंदू धर्म का उत्थान हुआ और यवनों की ज्योतिष का भी भारतवर्ष में आगमन हुआ तब भारतीय ज्योतिष का भी अध्ययन-अध्यापन जोरों से होने लगा। इसका फल यह हुआ कि विक्रम की छठी शताब्दी में ज्योतिष के कई आचार्य उत्पन्न हो गये। किसी ने भारतीय ज्योतिष का मंथन करके ज्योतिष पर ग्रंथ रचे किसी ने यवन ज्योतिष का सार लेकर ग्रंथ बनाये किसी ने दोनों का सार लेकर ज्योतिष के ग्रंथों की रचना की (और किसी ने दोनों से प्राप्त नवीन ज्ञान का भी समावेश किया)। इनमें सब से प्रमुख आर्यभट हुए, जिन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक आर्यभटीय में अपना जन्म-काल कलियुग संवत् ३ ७७ बताया है और ग्रहों की गणना के लिए १६ कलि संवत् निश्चय किया है। इनकी पुस्तक में शक काल अथवा विक्रम संवत् की चर्चा नहीं है। इस नाम के एक और ज्योतिषी ९५ ई० में उत्पन्न हो गये हैं जिन्होंने महासिद्धांत नामक ज्योतिष-ग्रंथ की रचना की है। इसलिए इन्हें हम प्रथम आर्यभट कहेंगे।

दीघनिकाय १।१८ (पाली टेक्स्टबुक सोसायटी)।

यहाँ से इस अध्याय के अंत तक की पूरी सामग्री मेरे द्वारा संपादित सरल विज्ञानसागर नामक ग्रंथ के एक अध्याय से लिया गया है जिसके लेखक स्वर्गीय महावीर प्रसाद श्रीवास्तव थे।

इति ६

१ अधिक मानी गयी थी और दूसरे में युग का आरम्भ सूर्योदय से माना गया था। पहली गणना को अर्द्ध-रात्रिक गणना और दूसरी को औदयिक गणना कहते हैं। यह प्रमाण महाभास्करीय और लघुभास्करीय नामक ग्रन्थों से मिलता है। इन पुस्तकों की रचना भास्कर नामक किसी ज्योतिषी ने की थी जो आर्यभट की शिष्य परंपरा में थे और सिद्धान्तशिरोमणि के रचयिता प्रसिद्ध भास्कराचार्य से भिन्न थे। इसलिए इनका नाम भास्कर प्रथम लिखना ठीक होगा। प्रथम पुस्तक में पहले औदयिक[1] विधि से गणना करने के गुणाङ्क दिये गये हैं फिर अर्द्धरात्रिक विधि से। जान पड़ता है कि आर्यभट का पहले का लिखा हुआ ग्रन्थ कोई था जो किसी प्रकार नष्ट हो गया और आर्यभटीय दूसरा ग्रन्थ है जिसकी रचना २३ वर्ष की अवस्था में नहीं की गयी थी वरन अधिक अवस्था में की गयी थी जब आर्यभट ने बार-बार के वेधों से अपनी पहली रचना में संशोधन कर लिये थे। आर्यभटीय की रचना-पद्धति बहुत ही वैज्ञानिक और भाषा बहुत ही संक्षिप्त तथा मँजी हुई है। इसलिए इनका जन्म-काल बताने वाले श्लोक का अर्थ केवल इतना ही है कि ३६०० कलियुग में उनकी अवस्था २३ वर्ष की थी जब ग्रहों के भगणाङ्कों की गणना निश्चय की गयी थी। यही बात आर्यभटीय के टीकाकारों ने भी मानी है।

संख्या लिखने की अनोखी रीति

आर्यभटीय में कुल १२१ श्लोक हैं जो चार खण्डों में विभाजित किये गये हैं — (१) गीतिकापाद, (२) गणितपाद, (३) कालक्रियापाद और (४) गोलपाद। गीतिका-

निरक्षः कर्मणो प्रोक्तो योऽस्मादौदयिको विधिः ।
अर्द्धरात्रस्तथा सर्वो यो विशेषः स कथ्यते ॥२१॥
लिप्ता भूदिने शेष्या ह्यभेभ्यो विशोध्यते ।
भृगुर्वोर्भगणेभ्योऽपि विधाविन्च ततोऽन्यथा ॥२२॥
अन्यस्माभ्येवमेव स्यात् शेषाः प्रागुक्तकल्पना ।
एतत्सर्वं समासेन तन्त्रान्तरमुदाहृतम् ॥३३॥
एतदेवाचार्यार्यभटस्य शास्त्रव्याख्यानसमये च
पाण्डुरंग स्वामिलाटदेवनिःशंकुप्रभृतिभ्यः प्रोवाच ।

भास्कर प्रथम

अस्माकमभिप्रायः । अस्मिन् काले गीतिकोक्त भगणैस्तैः
राशिरेनानीता ग्रहमध्यमोच्चपाताः स्फुटाः स्युः ॥

सूर्यदेव यज्वा की 'प्रकाशिका' टीका

पाद सबसे छोटा केवल ११ श्लोकों का है परंतु इसमें इतनी सामग्री भर दी गयी है जितनी सूर्यसिद्धांत के पूरे मध्यमाधिकार और कुछ स्पष्टाधिकार में आयी है। इसके लिए आर्यभट ने अक्षरों द्वारा संक्षेप में संख्या लिखने की एक अनोखी रीति का निर्माण किया है जो इस श्लोक में प्रकट की गयी है —

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ य।
खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा॥

अर्थ—क से आरंभ करके वर्ग अक्षरों को वर्ग स्थानों में और अवर्ग अक्षरों को अवर्ग स्थानों में (व्यवहार करना चाहिए) (इस प्रकार) ङ और म मिलकर य (होता है)। वर्ग और अवर्ग स्थानों के ९ के दूने शून्यों को ९ स्वर प्रकट करते हैं। वही (क्रिया) ९ वर्ग स्थानों के अन्त के पश्चात् (दुहरानी) चाहिए।

इकाई, सैकड़ा, दस हजार, दस लाख आदि विषम स्थानों को वर्ग स्थान और दहाई, हजार, लाख आदि सम स्थानों को अवर्ग स्थान कहते हैं क्योंकि १ १ १ आदि के वर्गमूल पूर्णांकों में आने आ सकते हैं परन्तु १ १ ० १ आदि के वर्गमूल पूर्णांकों में नहीं निकल सकते। संस्कृत या हिन्दी व्याकरण में वर्णमाला के अक्षर दो भागों मे बाँटे गये हैं १६ स्वर और ३३ व्यंजन। फिर, व्यंजन दो भागों में बाँटे गये हैं वर्ग और अवर्ग। क से म तक के अक्षर पाँच वर्गों में अर्थात् कवर्ग चवर्ग टवर्ग तवर्ग और पवर्ग में बाँटे गये हैं। शेष ८ अक्षरों को (अर्थात् य र ल व श ष स ह को) अवर्ग कहा गया है। आर्यभट ने वर्ग अक्षरों को १ २, २५ तक की संख्याओं को सूचित करने के लिए निर्धारित किया अवर्ग अक्षरों से ३ ४ १० को निरूपित किया और शून्य लगाने के लिए स्वरों से काम लिया।

इस श्लोक के अर्थ पर पाश्चात्य विद्वानगण विटूम बाबहुराजल कर्न आर्य रोडे के फ्लीट, ब्लार्क और भारतीय विद्वानगण दत्त, पंचोली दास और कहिरो ने अच्छी तरह विचार किया है। 'ख' का अर्थ ब्लार्क और फ्लीट ने 'स्थान' किया है परन्तु ख का अर्थ शून्य युक्तियुक्त और परम्परा के अनुसार है; और आर्यभटीय के व्याख्याकार भास्कर प्रथम, सूर्यदेव यज्वा आदि ने यही अर्थ किया है (देखें *विभूतिभूषण दत्त और अवधेश नारायण सिंह की हिस्टरी ऑव हिन्दू मैथिमैटिक्स* भाग १ पृष्ठ ६९)।

के रूप में हैं और गीतिकापाद में सम्मिलित नहीं किये गये हैं जैसा कि गीतिकापाद के ११वें श्लोक[1] में आर्यभट ने स्वयं लिखा है। इसके बाद के श्लोक में क्रमानुसार ? है जिसमें सूर्य चन्द्रमा पृथ्वी शनि गुरु मंगल शुक्र और बुध के महायुगीय भगणों की संख्या बतायी गयी है। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि आर्यभट ने एक महायुग में पृथ्वी के घूर्णन की संख्या भी दी है क्योंकि उन्होंने पृथ्वी का दैनिक भ्रमण माना है और इसके लिए आगे गोलपाद के ९वें श्लोक में नौका के चलने का उदाहरण भी दिया है। इस बात के लिए पीछे के आचार्यों ने जैसे वराहमिहिर ब्रह्मगुप्त आदि ने इनकी निन्दा की है। इससे भी आर्यभट की स्वतंत्रता का पता चलता है।

अगले श्लोक में ग्रहों के उच्च और पात के महायुगीय भगणों की संख्या बतायी गयी है। तीसरे श्लोक में बताया गया है कि ब्रह्मा के एक दिन में कितने मन्वन्तर और युग होते हैं और युधिष्ठिर के महाप्रस्थान के दिन (गुरुवार) के पहले कितने युग और युगपाद बीत चुके थे। इस श्लोक में भी एक नवीनता है। प्रत्येक महायुग में सतयुग त्रेता द्वापर और कलियुग भिन्न-भिन्न परिमाण के माने जाते हैं। परन्तु आर्यभट ने सबको समान माना है उन्होंने लिखा है कि वर्तमान महायुग के तीन युगपाद (=युग के चतुर्थांश) बीत गये थे जब कलियुग लगा। आगे के सात श्लोकों में राशि अंश कला आदि का संबंध आकाश-कक्षा का विस्तार पृथ्वी सूर्य चंद्र आदि की गति अमुक हाथ पुरुष और योजन का संबंध पृथ्वी के व्यास तथा सूर्य चन्द्रमा और ग्रहों के बिम्बों के व्यास के परिमाण ग्रहों की क्रान्ति और विक्षेप उनके पातों और मन्दोच्चों के स्थान उनकी मंद परिधियाँ और शीघ्र परिधियों के परिमाण तथा ३ अंश ४५ कला के अंतरों पर ज्याओं के मानों की सारणी है। इस प्रकार प्रकट है कि आर्यभट ने अपनी नवीन संख्या गणना की पद्धति से ज्योतिष और त्रिकोणमिति की बहुत-सी बातें दस श्लोकों में भर दी हैं।

अंकगणित और रेखागणित

आर्यभट पहले आचार्य हुए हैं जिन्होंने अपने ज्योतिष सिद्धान्त-ग्रंथ में अंकगणित बीजगणित और रेखागणित के प्रश्न दिये हैं। उन्होंने बहुत-से कठिन प्रश्नों को तीस श्लोकों में भर दिया है। एक श्लोक में तो श्रेढ़ी-गणित के ५ नियम आ गये हैं। पहले श्लोक में अपना नाम और स्थान भी बता दिया है। स्थान कुसुमपुर

[1] दशगीतिकासूत्रमिदं भूग्रहचरितं भपञ्जरे ज्ञात्वा।
ग्रहभगणपरिभ्रमणं स याति भित्त्वा परं ब्रह्म॥

है जिसे आजकल पटना कहते हैं। दूसरे श्लोक में संख्या लिखने की दशमलव पद्धति की एकाइयों के नाम हैं। इसके आगे के श्लोकों में वर्ग वर्गमूल घन घनफल वर्गमूल घनमूल त्रिभुज का क्षेत्रफल त्रिभुजाकार शंकु का घनफल वृत्त का क्षेत्र-फल गोल का घनफल विषम चतुर्भुज क्षेत्र के कर्णों के सम्पात से भुज की दूरी और क्षेत्रफल तथा सब प्रकार के क्षेत्रों की मध्यम लम्बाई और चौड़ाई जानकर क्षेत्रफल जानने के साधारण नियम दिये गये हैं। एक जगह बताया गया है कि परिधि के छठवें भाग की ज्या उसकी त्रिज्या के समान होती है। एक श्लोक में बताया गया है कि वृत्त का व्यास दो हजार हो तो उसकी परिधि ६२८३२ होती है। इससे परिधि और व्यास का संबंध चौथे दशमलव स्थान तक शुद्ध आ जाता है। दो श्लोकों में ज्याओं के जानने की व्युत्पत्ति बतायी गयी है जिससे सिद्ध होता है कि ज्याओं की सारणी आर्यभट ने कैसे बनायी थी। आगे वृत्त त्रिभुज और चतुर्भुज खींचने की रीति समतल के परखने की रीति लम्बक (साहुल) प्रयोग करने की रीति शंकु और छाया से छायाकर्ण जानने की रीति किसी दीपक और उससे बनी हुई शंकु की छाया से दीपक की ऊँचाई और दूरी जानने की रीति एक ही रेखापर स्थित दीपक और दो शंकुओं के संबंध के प्रश्न की गणना करने की रीति समकोण त्रिभुज के भुजों और कर्ण के वर्गों का संबंध जिसे पाइथागोरस का नियम कहते हैं परन्तु जो शुल्व सूत्र में हजारों वर्ष पहले लिखा गया था वृत्त की जीवा और शरों का संबंध दो काटते हुए वृत्तों के सामान्य खण्ड और शरों का संबंध दो श्लोकों में श्रेढ़ी-गणित के कई नियम एक श्लोक में एक-एक बढ़ती हुई संख्याओं के वर्गों और घनों का योगफल जानने का नियम यह नियम कि

$$(क+ख)^2 - (क^2+ख^2) = २कख$$

दो राशियों का गुणनफल और अंतर जानकर राशियों को अलग-अलग करने की रीति ब्याज की दर जानने का एक कठिन प्रश्न जो वर्ग समीकरण का उदाहरण है त्रैराशिक का नियम भिन्न के हरों को सामान्य हर में बदलने की रीति भिन्नों को गुणा और भाग देने की रीति बीजगणित के कुछ कठिन समीकरणों को सिद्ध करने के नियम दो ग्रहों का मतिकाल जानने का नियम और कुट्टक[1] नियम बताये गये हैं।

जितनी बातें ३३ श्लोकों में बतायी गयी हैं उनको यदि आजकल की परिपाटी के अनुसार विस्तार करके लिखा जाय तो एक बड़ी-सी पुस्तक बन सकती है और

[1] अर्थात् इनडिटर्मिनेट समीकरणों के हल करने का एक नियम।

उन सबको समझने के लिए हाई-स्कूल तक की शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी भी कठिनाई का अनुभव करेंगे।

कालक्रियापाद

कालक्रियापाद नामक अध्याय में ज्योतिष सबंधी बातें हैं। पहले दो श्लोकों में काल और कोण की एकात्मता का सबंध बताया गया है। आगे के ६ श्लोकों में अनेक प्रकार के मासों, वर्षों और युगों का सबंध बताया गया है। यहाँ एक विशेषता है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। ब्रह्मा का दिन या कल्प १००८ महायुगों का बताया गया है जो गीता, मनुस्मृति तथा अन्य सिद्धान्त-ग्रन्थों के प्रतिकूल है क्योंकि वे एक हजार महायुग का कल्प मानते हैं। नवें श्लोक में बताया गया है कि युग का प्रथमार्ध उत्सर्पिणी और उत्तरार्ध अवसर्पिणी काल है और इसका विचार चन्द्रोच्च से किया जाता है। परन्तु इसका अर्थ समझ में नहीं आता। किसी टीकाकार ने इसकी सतोषजनक व्याख्या नहीं की है। दसवें श्लोक की चर्चा पहले ही आ चुकी है जिसमें आर्यभट ने अपने जन्म का समय बताया है। इसके आगे बताया है कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से युग, वर्ष, मास और दिवस की गणना आरंभ होती है। आगे के २० श्लोकों में ग्रहों की मध्यम और स्पष्टगति सबंधी नियम हैं।

गोलपाद

गोलपाद आर्यभटीय का अंतिम अध्याय है। इसमें ५० श्लोक हैं। पहले श्लोक से प्रकट होता है कि रविमार्ग के जिस बिन्दु को आर्यभट ने मेषादि माना है वह वसत-विषुव बिन्दु था क्योंकि वे कहते हैं कि मेष के आदि से कन्या के अत तक रवि-मार्ग उत्तर की ओर हटा रहता है और तुला के आदि से मीन के अत तक दक्षिण की ओर। आगे के दो श्लोकों में बताया गया है कि ग्रहों के पात और पृथ्वी की छाया भी रविमार्ग पर भ्रमण करते हैं। चौथे श्लोक में बताया गया है कि सूर्य से कितने अतर पर चन्द्रमा, मगल, बुध आदि दृश्य होते हैं। पाँचवाँ श्लोक बताता है कि पृथ्वी, ग्रहों और नक्षत्रों का आधा भाग अपनी ही छाया से अप्रकाशित है और आधा सूर्य के सम्मुख होने से प्रकाशित है, यद्यपि नक्षत्रों के सबध में यह बात ठीक नहीं है। श्लोक ६, ७ में बताया गया है कि पृथ्वी के चारों ओर जल-वायु आदि फैले हुए हैं। ८वें श्लोक में यह विचित्र बात बताती गयी है कि ब्रह्मा के दिन में पृथ्वी की मोटाई एक योजन बढ़ जाती है और ब्रह्मा की रात्रि में एक योजन घट जाती है। श्लोक ९ में बताया गया है कि जैसे चलती हुई नाव पर बैठा हुआ मनुष्य किनारे के स्थिर पेड़ों को उलटी दशा में चलता हुआ देखता है वैसे ही लंका (भूमध्य रेखा) में स्थिर

उन सबको समझने के लिए हाई-स्कूल तक की शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी भी कठिनाई का अनुभव करेंगे।

कालक्रियापाद

कालक्रियापाद नामक अध्याय में ज्योतिष संबंधी बातें हैं। पहले दो श्लोकों में काल और क्षेत्र की इकाइयों का संबंध बताया गया है। आगे के ६ श्लोकों में अनेक प्रकार के मासों, वर्षों और युगों का संबंध बताया गया है। यहाँ एक विशेषता है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। ब्रह्मा का दिन या कल्प १००८ महायुगों का बताया गया है जो गीता, मनुस्मृति तथा अन्य सिद्धान्त-ग्रंथों के प्रतिकूल है क्योंकि वे एक हजार महायुग का कल्प मानते हैं। नवें श्लोक में बताया गया है कि युग का प्रथमार्ध उत्सर्पिणी और उत्तरार्ध अवसर्पिणी काल है और इनका विचार चन्द्रोच्च से किया जाता है। परन्तु इसका अर्थ समझ में नहीं आता। किसी टीकाकार ने इसकी संतोषजनक व्याख्या नहीं की है। दसवें श्लोक की चर्चा पहले ही आ चुकी है जिसमें आर्यभट ने अपने जन्म का समय बताया है। इसके आगे बताया है कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से युग, वर्ष, मास और दिवस की गणना आरंभ होती है। आगे के २ श्लोकों में ग्रहों की मध्यम और स्पष्टगति संबंधी नियम हैं।

गोलपाद

गोलपाद आर्यभटीय का अंतिम अध्याय है। इसमें ५० श्लोक हैं। पहले श्लोक से प्रकट होता है कि रविमार्ग के जिस बिन्दु को आर्यभट ने मेषादि माना है वह वसंत-विषुव बिन्दु था क्योंकि वे कहते हैं कि मेष के आदि से कन्या के अंत तक रविमार्ग उत्तर की ओर हटा रहता है और तुला के आदि से मीन के अंत तक दक्षिण की ओर। आगे के दो श्लोकों में बताया गया है कि ग्रहों के पात और पृथ्वी की छाया ये रविमार्ग पर भ्रमण करते हैं। चौथे श्लोक में बताया गया है कि सूर्य से कितने अंतर पर चन्द्रमा, मंगल, बुध आदि दृश्य होते हैं। पाँचवाँ श्लोक बताता है कि पृथ्वी, ग्रहों और नक्षत्रों का आधा भाग अपनी ही छाया से अप्रकाशित है और आधा सूर्य के सम्मुख होने से प्रकाशित है। यद्यपि नक्षत्रों के संबंध में यह बात ठीक नहीं है। श्लोक ६, ७ में बताया गया है कि पृथ्वी के चारों ओर जल-वायु आदि फैले हुए हैं। ८वें श्लोक में यह विचित्र बात बतायी गयी है कि ब्रह्मा के दिन में पृथ्वी की गोलाई एक योजन बढ़ जाती है और ब्रह्मा की रात्रि में एक योजन घट जाती है। श्लोक ९ में बताया गया है कि जैसे चलती हुई नाव पर बैठा हुआ मनुष्य किनारे के स्थिर पेड़ों को उल्टी दिशा में चलता हुआ देखता है वैसे ही लंका (भूमध्य रेखा) में स्थिर

कोई अच्छी टीका नहीं है। संस्कृत में इसकी चार टीकाएँ हैं। प्रथम भास्कर, सूर्यदेव यज्वा, परमेश्वर और नीलकंठ की टीकाओं की चर्चा हिस्ट्री ऑव हिन्दू मैथिमैटिक्स[1] में है। इनमें से परमेश्वर या परमादीश्वर की भटदीपिका टीका के साथ उदयनारायण सिंह ने अपनी हिन्दी की टीका संवत् १९६३ में प्रकाशित की थी। सूर्यदेव यज्वा की संस्कृत टीका का नाम आर्यभट प्रकाश है। यह टीका भटदीपिका से बहुत अच्छी है परन्तु अभी तक छपी नहीं है। अंग्रेजी में आर्यभटीय की एक टीका डाक्टर कर्न ने भटदीपिका के साथ सन् १८७४ ई० में लाइडेन (हालैण्ड) में छापी थी।

[1] विभूतिभूषण दत्त तथा अवधेश नारायण सिंह कृत।

करणग्रंथ

यद्यपि ग्रंथ का नाम पंचसिद्धांतिका है, जिससे बोध होता है कि इसमें पाँच सिद्धांत दिये गये हैं, तो भी यह करणग्रंथ है। करणग्रंथ का अर्थ है काम-चलाऊ पुस्तक। करणग्रंथों में ऐसे नियम दिये रहते हैं जिनसे ज्योतिष की प्रमुख गणनाएँ चटपट हो जाती हैं, चाहे उत्तर पूर्णतया शुद्ध होने के बदले केवल मोटे ही हिसाब से शुद्ध निकले। सिद्धांत-ग्रंथों में नियमों के सिद्धांत दिये रहते हैं और ऐसे नियम दिये रहते हैं जिनसे उत्तर यथासंभव शुद्ध निकले, चाहे उन्हें निकालने में बहुत अधिक समय क्यों न लगे। परंतु पंचसिद्धांतिका में कई स्थानों में ऐसे विषय भी हैं जो साधारणतः करणग्रंथों में नहीं रहते, केवल सिद्धांतों में रहते हैं।

विवादग्रस्त अध्याय

पंचसिद्धांतिका में पैतामह, वासिष्ठ, रोमक, पौलिश और सौर (सूर्य) इन पाँच सिद्धांतों का सारांश दिया गया है। वराहमिहिर ने यह भी लिख दिया है कि इन सिद्धांतों में सबसे उत्तम कौन-सा है और अन्य के स्थान क्या हैं। उन्होंने कहा है कि सूर्य-सिद्धांत सबसे उत्तम है, उसके बाद रोमक और पौलिश लगभग समरस हैं और शेष दो सिद्धांत इनसे बहुत हीन हैं। पंचसिद्धांतिका में इन सिद्धांतों का विस्तार भी लगभग इसी क्रम में है। परंतु थीबो और सुधाकर द्विवेदी यह ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाये कि प्रत्येक सिद्धांत का विस्तार पंचसिद्धांतिका में कहाँ तक है, क्योंकि कुछ अध्याय ऐसे हैं जिनके न आरंभ में और न अंत में, या कहीं अन्यत्र, बताया गया है कि किस सिद्धांत के अनुसार यह अध्याय लिखा गया है। अधिकांश अध्यायों के बारे में कोई संदेह नहीं है। विवादग्रस्त अध्याय संभवतः वराहमिहिर के निजी हैं या संभवतः वे दो या अधिक सिद्धांतों में सर्वनिष्ठ हैं।

सूर्य सिद्धांत

सूर्य-सिद्धांत नामक ग्रंथ हमें अलग से भी उपलब्ध है और इस ग्रंथ का सारांश पंचसिद्धांतिका में भी है। तुलना करने से पता चलता है कि दोनों में बहुत अंतर है। ऐसा जान पड़ता है कि पुराने सूर्य-सिद्धांत में, जो वराहमिहिर के समय में प्रचलित था, पीछे से संशोधन कर दिये गये हैं जिनका उद्देश्य यह था कि सूर्य, चंद्रमा आदि के मध्यम (अन्तर बताने का काल) वेध प्राप्त (अर्थात् आँख से देखे गये या यंत्रों से नापे गये) मानों से यथासंभव मिल जायें। संशोधित सूर्य-सिद्धांत पुराने ग्रंथ से अधिक शुद्ध फल देता है, इसमें संदेह नहीं। इस संशोधित सूर्य-सिद्धांत को

हम आधुनिक सूर्य-सिद्धान्त ग्रहण करते। यद्यपि संशोधन हुए लगभग १ वर्ष हो गये हैं। कई बातों के सूक्ष्म विवेचन से थीबो और सुधाकर द्विवेदी इस निर्णय पर पहुँचे कि वराहमिहिर ने अपने समय में प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त का सच्चा सारांश दिया है, उसमें कोई मनमाना परिवर्तन नहीं किया है। इससे उनको विश्वास हो गया कि अन्य चार सिद्धान्तों का सारांश भी वराहमिहिर ने बिना कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये ही दिया होगा।

सिद्धान्त ग्रंथों में कलियुग के आरम्भ से गणना करने की परिपाटी है। आधुनिक सूर्य-सिद्धान्त में दी हुई बातों के अनुसार हम कलियुग के आरम्भ की गणना कर सकते हैं। इस प्रकार कलियुग का आरम्भ ३१०२ ईसवी पूर्व की १८वी फरवरी के आरम्भ वाली अर्धरात्रि पर होना ठहरता है। सिद्धान्तों में यह भी बताया जाता है कि कलियुग के आरम्भ में सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध आदि ग्रह, राहु और चन्द्र विषुव का क्या स्थान था। यह भी दिया रहता है कि एक युग में कितने वर्ष और कितने अहोरात्र होते हैं, चन्द्रमा कितने चक्कर लगाता है, मंगल कितने, इत्यादि। इस प्रकार सूर्य आदि पिंडों का कोणीय वेग ज्ञात रहता है, उनकी प्रारंभिक स्थिति ज्ञात रहती है और यह भी ज्ञात रहता है कि कलियुग के आरम्भ से इष्ट समय तक कितने दिन बीते हैं। इसलिए सरल अंकगणित से ज्ञात किया जा सकता है कि इष्ट समय पर उस पिंड की स्थिति क्या है, अर्थात् चक्कर-चक्कर अपने आकाशीय मार्ग में वह पिंड कहाँ पहुँचा होगा।

ऐसी गणनाएँ

थोड़ा विचार करने से पाठक सुगमता से देख सकता है कि ऊपर की रीति में बहुत-सा परिश्रम बेकार करना पड़ता है। पिंड ने कितने सम्पूर्ण चक्कर लगा लिये हैं उससे हमारा कुछ प्रयोजन नहीं रहता। इसलिए कलियुग के आरम्भ से गणना करने के बदले क्यों न किसी निकटवर्ती काल से गणना आरम्भ की जाय? उदाहरणतः यह भी तो सम्भव है कि हम किसी सुविधाजनक दिवस को चुन लें, उस दिन किसी सुविधाजनक क्षण को चुन लें और सब आवश्यक आकाशीय पिंडों की स्थितियों की गणना उस क्षण के लिए कर लें। यह काम बस एक बार करना पड़ेगा। फिर यह देखें कि चुने क्षण से इष्ट क्षण तक (आज स्थिति जाननी हो तो आज तक) कितने दिन बीते हैं। फिर, पिंडों का कोणीय वेग ज्ञात है ही, अर्थात् यह ज्ञात है कि एक दिन में वह कितना अंश (कितनी डिग्री) चलता है। इस प्रकार हम गणना कर सकते हैं कि इष्ट क्षण पर पिंड की स्थिति क्या होगी। इस गणना में विशेष सुविधा यह है कि चुने हुए प्रारंभिक क्षण से इष्ट क्षण तक थोड़े ही दिन बीते रहेंगे (कुछ सौ या

कुछ हजार दिन) और इसलिए यदि दिनों की दैनिक गति में थोड़ी-बहुत त्रुटि भी रहेगी तो इष्ट क्षण पर गणना द्वारा प्राप्त स्थिति में उपेक्षणीय ही अंतर पड़ेगा। पाठक सुगमता से समझ सकता है कि जब कलियुग के आरंभ से गणना की जाती है तो तब से आज तक के दिनों की संख्या जिसे ज्योतिष में अहर्गण कहते हैं बहुत ही बड़ी हो जाती है और गति में नगण्य-सी भी त्रुटि रहने से ग्रह की इष्टकालिक स्थिति में अनपेक्षणीय अशुद्धि आ जाती है।

करणग्रंथों में ठीक यही काम किया जाता है जो ऊपर बताया गया है। एक क्षण चुन लिया जाता है जो इष्ट समय के पर्याप्त निकट रहता है और तभी से गणना की जाती है। वस्तुतः कुछ लोग इसी बात को करणग्रंथ का मुख्य लक्षण समझते हैं। उनके विचार में वह ग्रंथ सिद्धांत है जिसमें कलियुग के आरंभ से गणना हो और वह करणग्रंथ है जिसमें किसी निकटस्थ विशिष्ट काल से गणना हो*। यह विशिष्ट काल (जिसे हम आदिकाल कहेंगे) ग्रंथकार की रुचि के अनुसार ग्रंथ आरंभ करने का दिन होता है या ग्रंथकार का जन्म दिन होता है या उस समय के राजा के राजगद्दी पाने का दिन होता है या इसी प्रकार का कोई महत्त्वपूर्ण अवसर चुना जाता है। इसलिए आदिकाल ज्ञात होने से ग्रंथ के रचनाकाल का भी अनुमान लग जाता है। पंचसिद्धांतिका के आदिकाल पर विचार नीचे किया जायगा।

पितामह-सिद्धांत

पंचसिद्धांतिका का बारहवाँ अध्याय पितामह-सिद्धांत का सारांश देता है। इस अध्याय में कुल पाँच श्लोक हैं। प्रथम तीन का अर्थ नीचे दिया जाता है जिससे पंचसिद्धांतिका की शैली का नमूना मिल जायगा —

१ पितामह के अनुसार रवि और शशि का युग पाँच वर्ष का होता है। तीस महीने में एक अधिमास होता है और बासठ दिनों में एक तिथि का क्षय होता है।

२ शकेंद्र काल (शकों के राजा के अनुसार चलने वाले वर्ष) से २ घटा दो और उसे पाँच से भाग दो। जो शेष बचे उससे अहर्गण बनाओ और यह (अहर्गण) माघ शुक्ल पक्ष से आरंभ होगा।

* कुछ लोग कलियुग से गणना करने वाले ग्रंथों को तंत्र कहते हैं और केवल उन ग्रंथों को सिद्धांत कहते हैं जिनमें कल्प के आदि से गणना की जाती है परंतु अधिकांश लोग सिद्धांत और तंत्र को पर्यायवाची समझते हैं।

ध्रुव का मार्ग

तारों के सापेक्ष ध्रुव धीरे-धीरे वृत्ताकार मार्ग में चलता है और एक चक्कर लगभग २६ वर्षों में लगाता है। जब ध्रुव किसी तारे के पास पहुँच जाता है तो वह तारा ध्रुव-तारा कहलाता है। वर्तमान और सन १०८ ई पू के ध्रुव-तारों की स्थितियों पर ध्यान दें।
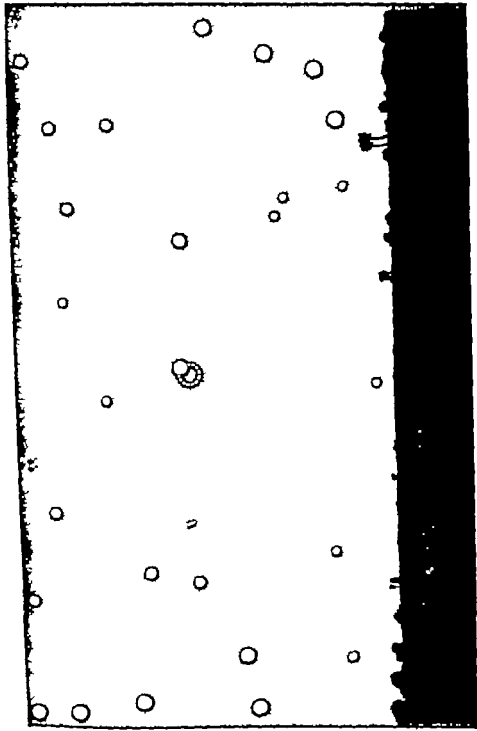
वर्तमान ध्रुव-तारा।

वर्तमान ध्रुव-तारा पूर्णतया अचर नहीं है। यह बहुत छोटे वृत्त में प्रति दिन एक चक्कर लगाता है।

सन १४   ई पू में
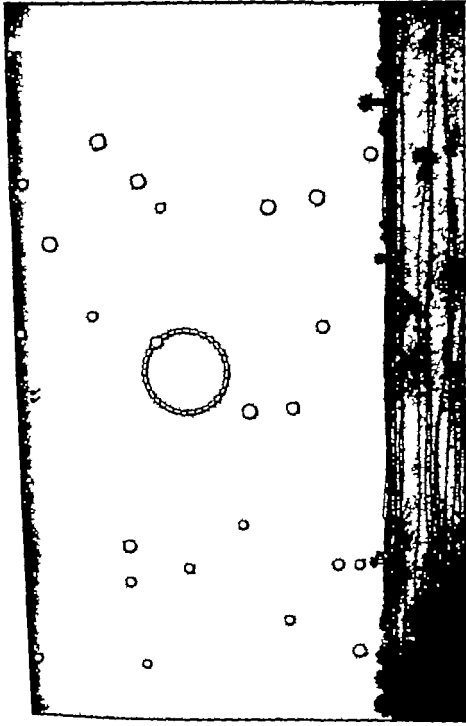
दक्षिणीय ध्रुव से समीपतम तारा बहुत फीका था और प्रति दिन इतने बड़े वृत्त में चलता था कि कोई उसे ध्रुव नहीं मान सकता था ।
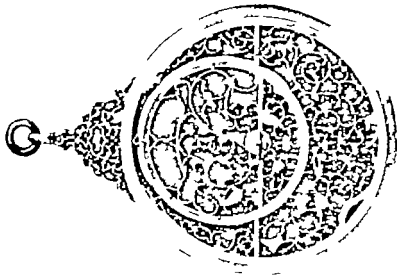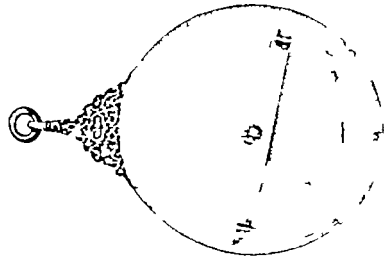
यन्त्रराज।
जयसिंह के बनवाये पीतल के ये यन्त्र जयपुर में सुरक्षित हैं।

सम्राट-यंत्र दिल्ली।
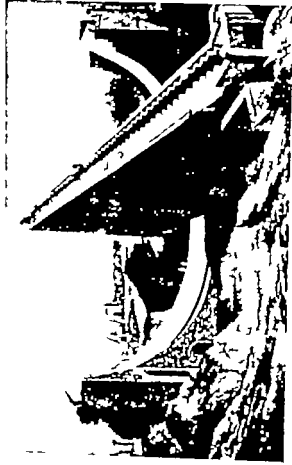
सन १८१५ में प्रकाशित एक चित्र से। अब इस यंत्र का पुनरुद्धार कर दिया गया है। दिल्ली के प्रसिद्ध 'जंतर-मंतर' नामक उद्यान में यह सबसे बड़ा यंत्र है। इससे तारों की स्थिति बताने वाले निर्देशांक (विषुवांश और क्रांति) मापे जाते हैं।

रामयंत्र दिल्ली।

रामयंत्र में वस्तुतः एक चोटी पर रहते हैं और इनसे उन्नतांश और दिगंश नापे जाते हैं। अधभूमि में तर चोटी अवमनाण मन है। [के महोदय की पुस्तक 'एस्ट्रोनॉमिकल ऑब्जरवेटरीज ऑफ जयसिंह' से]

(छायाकार [illegible] कुमार [illegible]

मिश्र-यन्त्र दिल्ली।

दिल्ली के जन्तर-मन्तर में एक यन्त्र यह भी है। इस अकेले यन्त्र से कई यन्त्रों का काम चल सकता है। इसी से इसे मिश्रयन्त्र कहते हैं।
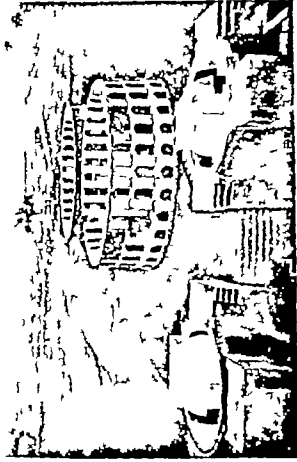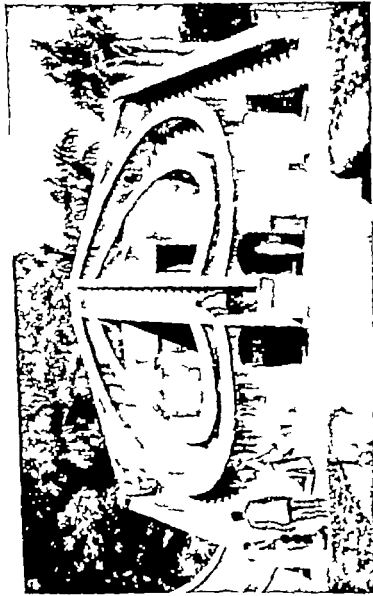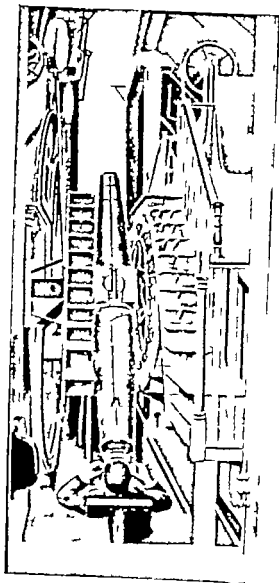
आधुनिक याम्योत्तर यंत्र।
इस यंत्र से तारों की स्थिति बताने वाले निर्देशांक (विषुवांश और क्रांति) नापे जाते हैं। [स्प्लेंडर आव दि हेवेन्स से]

था। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार वर्ष में लगभग ३६५ दिन ५ घंटा ४८ मिनट ४६ सेकंड होता है। रोमक का वर्षमान ठीक नहीं है जो यवन ज्योतिषी हिपार्कस का था[1]।

कुछ अन्य बातों में भी रोमक-सिद्धांत और यवन (अर्थात ग्रीस देश के) ज्योतिष में समानता है परंतु कई बातों में विभिन्नता भी है।

रोमक-सिद्धांत का लेखक

रोमक-सिद्धांत को श्रीषेण ने लिखा था। परंतु थीबो का मत है कि श्रीषेण ने कोई मौलिक पुस्तक नहीं लिखी थी। उसने किसी पुराने रोमक-सिद्धांत को केवल नवीन रूप दिया था। ब्रह्मगुप्त ने अपने स्फुट-सिद्धांत में श्रीषेण के नाम का कई बार उल्लेख किया है और इन स्थानों पर टीका करते समय ब्रह्मगुप्त के टीकाकार ने स्पष्ट रूप से और कई बार लिखा है कि रोमक-सिद्धांत का लेखक श्रीषेण था। परंतु थीबो ने स्फुट-सिद्धांत के पाठ का कुछ संशोधन करके निम्न अर्थ लगाया है

श्रीषेण विष्णुचंद्र प्रद्युम्न आर्यभट लाट और सिंह की ग्रहणादि विषयों पर बातें एक दूसरे के विपरीत होने से यह प्रति दिवस सिद्ध है कि वे अज्ञानी हैं। (इस अध्याय के पूर्वगामी खंड में) मैंने जो दूषण आर्यभट के संबंध में बताये हैं वे थोड़े हेर-फेर से पूर्वोक्त सभी आचार्यों पर लागू हैं। परंतु मैं श्रीषेण आदि पर कुछ और आलोचना करता हूँ। 'लाट से श्रीषेण ने सूर्य और चंद्रमा की मध्य गतियाँ की चंद्रोच्च और पात भी लिया फिर वशिष्ठ बुध-शीघ्र बृहस्पति शुक्र-शीघ्र और शनि की गतियाँ भी ली वशिष्ठ से आनीत वर्षों की संख्या और युगों का प्रमाण लिया आर्यभट से मंदोच्च परिधि और पात संबंधी नियम लिये और ग्रहों की स्पष्ट गतियाँ भी और इस प्रकार रत्नों की ढेर रोमक को श्रीषेण ने गुदड़ बना डाला।

रोमक-सिद्धांत का काल

पंचसिद्धांतिका में दिये हुए रोमक-सिद्धांत के अनुसार अहर्गण बनाने के लिए यह आदेश है कि शक वर्ष से ४२७ घटाया जाय। इसका अर्थ यह है कि शक ४२७ आदिकाल माना गया है जहाँ से अहर्गण आदि की गणना आरंभ की गयी है। इसलिए शक ४२७ को ही लोग वराहमिहिर का समय मानते हैं। अलबीरूनी ने भी इसी को पंचसिद्धांतिका का समय माना है। डाक्टर बर्न का मत है

[1] यह सायन वर्ष का मान है सायन वर्ष वह वर्ष है जो ऋतुओं के अनुसार चलता है। हिपार्कस का काल सन १४६ १२७ ई पू के लगभग था।

कि शक ४२७ (=सन् ५०५ ईसवी) वराहमिहिर के जन्म का वर्ष है। उनका देहान्त शक ५०९ में हुआ ऐसा आमराज ने लिखा है और दोनों में सामंजस्य है। यह भी विचार योग्य है कि आर्यभट का जन्म शक ३९८ में हुआ था और उसने अपनी पुस्तक आर्यभटीय की रचना शक ४२१ में की थी। आर्यभट का उल्लेख पंचसिद्धान्तिका में है। इसलिए इतना तो प्रत्यक्ष है कि पंचसिद्धान्तिका शक ४२१ के वर्षों बाद लिखी गयी होगी।

प्रश्न यह उठता है कि शक ४२७ स्वयं रोमक-सिद्धान्त का ही आदिकाल तो नहीं था। परन्तु बात ऐसी नहीं जान पड़ती। एक तो वराहमिहिर ने बहुत अर्वाचीन सिद्धान्त को पर्याप्त प्रामाणिक नहीं माना होगा। दूसरे, ब्रह्मगुप्त के स्फुट सिद्धान्त में लाटदेव का नाम आया है जिससे श्रीषेण ने सूर्य चंद्रमा आदि की गणित ली। वराहमिहिर ने स्वयं अध्याय १५ श्लोक १८ में लिखा है "लाटाचार्य ने कहा है कि यवनपुर के सूर्यास्त से अहर्गण की गणना की जाती है"। इससे स्पष्ट है कि लाटाचार्य प्रामाणिक थे और वे श्रीषेण से पर्याप्त पहले रहे होंगे अन्यथा श्रीषेण को नवीन सिद्धान्त लिखने की आवश्यकता ही नहीं रहती। इन सब बातों से यही अनुमान किया जाता है कि रोमक-सिद्धान्त और भी पुराना रहा होगा और शक ४२७ रोमक-सिद्धान्त का निजी आदिकाल नहीं है; इसे वराहमिहिर ने चुना होगा।

पंचसिद्धान्तिका में रोमक-सिद्धान्त के अतिरिक्त रोमक देश का भी नाम आया है। यवनपुर, यवनाचार्य आदि शब्द भी आये हैं। यवनपुर का देशान्तर भी दिया है जिससे पता चलता है कि यवनपुर 'अलेक्जैंड्रिया' नामक नगर रहा होगा। फिर, जैसा ऊपर बताया गया है, रोमक-सिद्धान्त के मुख्य स्थिरांक वे ही थे जो यवन ज्योतिष

सन् ३३२ ई० पू० में इस नगर की नींव अलेक्जैंडर महान (सिकंदर) ने डाली थी और अब यह मिस्र देश (ईजिप्ट) का प्रधान नौस्थान (बंदरगाह) है। नींव पड़ने के सौ वर्ष के भीतर ही यह बहुत बड़ा शहर हो गया था। यह यूरोप तथा अरब और भारतवर्ष के बीच वाणिज्य का गढ़ था। यहीं पर यवनों का सब से बड़ा विश्वविद्यालय था। परंतु सन् ३० ई० पू० में यह रोमन लोगों के हाथ में चला गया। ऑगस्टस सीज़र के काल में इसकी जनसंख्या ३ लाख थी। सन् ६४१ में इस पर अरब वालों का अधिकार हो गया। अरब सेनापति अम्र ने अपने नरेश को अलेक्जैंड्रिया जीतने पर लिखा था कि यहाँ "४००० महल, ४००० स्नानागार, १२००० तेल बेचने वाले, १२००० माली, ४०००० यहूदी जो कर देते हैं और ४०० नाट्यशालाएँ हैं"। पृष्ठ ११८ पर इस नगर की स्थिति दिखायी गयी है।

१ यदि अहर्गण में उसी का एकसठवाँ भाग जोड़ दिया जाय तो योगफल तिथियाँ बतायेगा। यदि अहर्गण को ९ से गुणा किया जाय और गुणनफल को १२२ से भाग दिया जाय तो फल सूर्य का नक्षत्र बतायेगा। अहर्गण को ७ से गुणा करो फिर ६१ से भाग दो और फल को (अहर्गण में) घटाओ। फल चन्द्रमा का नक्षत्र होगा जो धनिष्ठा के आरम्भ से गिना जायगा।

ऊपर के अनुवाद में बहुत से शब्द आ गये हैं जो मूल संस्कृत में नहीं है। मूल पाठ तो बहुत ही संक्षिप्त है। उदाहरणतः तीसरा श्लोक इस प्रकार है[1] :—

सैकपञ्चदशो गच्छे तिथिर्मिवार्कं नवाहृतेऽश्वर्क्ष:।

विपक्षमार्क: सप्तमिरत्रं शशिर्म धनिष्ठाद्यम् ॥३॥

पञ्चसिद्धान्तिका में १८ अध्याय हैं और कुल ४४२ श्लोक हैं।

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि पैतामह-सिद्धान्त में वेदाङ्ग-ज्योतिष की तरह पाँच वर्ष का युग था। अन्य बातों में भी यह वेदाङ्ग-ज्योतिष से मिलता-जुलता है। वर्ष में महत्तम दिनमान १८ मुहूर्त माना गया है और लघुतम दिनमान १२ मुहूर्त।

रोमक-सिद्धान्त

पञ्चसिद्धान्तिका के प्रथम अध्याय के पन्द्रहवें श्लोक में रोमक-सिद्धान्त के युग का संक्षिप्त वर्णन है। यह युग भी सूर्य और चन्द्रमा का युग कहा गया है परन्तु इसमें २८५ वर्ष हैं। कहा गया है कि एक युग में १०५ अधिमास होते हैं और १६५४७ क्षय तिथियाँ। यदि हम इन संख्याओं को १५ से भाग दे दें तो रोमक सिद्धान्त के अनुसार १९ वर्ष में ठीक-ठीक ७ अधिमास होते हैं। ये संख्याएँ ठीक वे ही हैं जिनका प्रचार प्रसिद्ध यवन ज्योतिषी मेटन ने लगभग ४३ ई० पू० में—वराहमिहिर के समय से लगभग एक हजार वर्ष पहले—किया था। रोमक सिद्धान्त ने शायद १९ वर्ष का युग न मानकर २८५ वर्षों का युग इसलिए लिया कि युग में केवल वर्षों और मासों की ही संख्याएँ पूर्ण संख्याएँ न हों, दिनों की संख्या भी पूर्ण संख्या हो। रोमक-सिद्धान्त में दी हुई बातों के आधार पर गणना करने से पता चलता है कि उसके कर्ता के अनुसार वर्ष का मान

३६५ दिन ५ घंटा ५५ मिनट १२ सेकंड

[1] यह संशोधित पाठ है।

था। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार वर्ष[1] में लगभग ३६५ दिन ५ घंटा ४८ मिनट ४६ सेकंड होता है। रोमक का वर्षमान ठीक वही है जो यवन ज्योतिषी हिपार्कस का था[2]।

कुछ अन्य बातों में भी रोमक-सिद्धांत और यवन (अर्थात ग्रीस देश के) ज्योतिष में समानता है, परंतु कई बातों में विभिन्नता भी है।

रोमक-सिद्धांत का लेखक

रोमक-सिद्धांत को श्रीषेण ने लिखा था। परंतु थीबो का मत है कि श्रीषेण ने कोई मौलिक पुस्तक नहीं लिखी थी। उसने किसी पुराने रोमक-सिद्धांत को केवल नवीन रूप दिया था। ब्रह्मगुप्त ने अपने स्फुट-सिद्धांत में श्रीषेण के नाम का कई बार उल्लेख किया है और इन स्थानों पर टीका करते समय ब्रह्मगुप्त के टीकाकार ने स्पष्ट रूप से और कई बार लिखा है कि रोमक-सिद्धांत का लेखक श्रीषेण था। परंतु थीबो ने स्फुट-सिद्धांत के पाठ का कुछ संशोधन करके निम्न अर्थ लगाया है

श्रीषेण, विष्णुचंद्र, प्रद्युम्न, आर्यभट, लाट और सिंह की ग्रहणादि विषयों पर बातें एक दूसरे के विपरीत होने से यह प्रति दिवस सिद्ध है कि वे अज्ञानी हैं। (इस अध्याय के पूर्वगामी अंश में) मैंने जो दूषण आर्यभट के संबंध में बताये हैं वे थोड़े हेर-फेर से पूर्वोक्त सभी आचार्यों पर लागू हैं। परंतु मैं श्रीषेण आदि पर कुछ और आलोचना करता हूँ। लाट से श्रीषेण ने सूर्य और चंद्रमा की मध्य गतियाँ और चंद्रोच्च और पात भी लिया, फिर मंगल, बुध-शीघ्र, बृहस्पति, शुक्र-शीघ्र और शनि की गतियाँ भी लीं, वशिष्ठ से व्यतीत वर्षों की संख्या और युगों का मान लिया, आर्यभट से मंदोच्च, परिधि और पात संबंधी नियम लिये और ग्रहों की स्पष्ट गतियाँ भी, और इस प्रकार रत्नों की ढेर रोमक को श्रीषेण ने गूदड़ बना डाला।

रोमक-सिद्धांत का काल

पंचसिद्धांतिका में दिये हुए रोमक-सिद्धांत के अनुसार अहर्गण बनाने के लिए यह आदेश है कि शक वर्ष से ४२७ घटाया जाय। इसका अर्थ यह है कि शक ४२७ आदिकाल माना गया है जहाँ से अहर्गण आदि की गणना आरंभ की गयी है। इसलिए शक ४२७ को ही लोग वराहमिहिर का समय मानते हैं। अलबीरूनी ने भी इसी को पंचसिद्धांतिका का समय माना है। डाक्टर कर्न का मत है

[1] यह सायन वर्ष का मान है; सायन वर्ष वह वर्ष है जो ऋतुओं के अनुसार चलता है।
[2] हिपार्कस का काल सन् १४६-१२७ ई० पू० के लगभग था।

कि शक ४२७ (=सन् ५ ५ ईसवी) वराहमिहिर के जन्म का वर्ष है। उसका देहांत शक ५ ९ में हुआ ऐसा आमराज ने लिखा है और दोनों में सामंजस्य है। यह भी विचार योग्य है कि आर्यभट का जन्म शक ३९८ में हुआ था और उसने अपनी पुस्तक आर्यभटीय की रचना शक ४२१ में की थी। आर्यभट का उल्लेख पंचसिद्धांतिका में है। इसलिए इतना तो प्रत्यक्ष है कि पंचसिद्धांतिका शक ४२१ के वर्षों बाद लिखी गयी होगी।

प्रश्न यह उठता है कि शक ४२७ स्वयं रोमक-सिद्धांत का ही आविष्कार तो नहीं था। परन्तु बात ऐसी नहीं जान पड़ती। एक तो वराहमिहिर ने बहुत बर्षों नीज सिद्धांत को पर्याप्त प्रामाणिक नहीं माना होगा दूसरे, ब्रह्मगुप्त के स्फुट सिद्धांत में लाटदेव का नाम आया है जिससे श्रीषेण ने सूर्य चंद्रमा आदि की गतियाँ की। वराहमिहिर ने स्वयं अध्याय १५, श्लोक १८ में लिखा है 'लाटाचार्य ने कहा है कि यवनपुर के सूर्यास्त से अहर्गण की गणना की जाती है। इससे स्पष्ट है कि लाटाचार्य अवश्य थे और वे श्रीषेण से पर्याप्त पहले रहे होंगे अन्यथा श्रीषेण को नवीन सिद्धांत लिखने की आवश्यकता ही नहीं रहती। इन सब बातों से यही अनुमान किया जाता है कि रोमक-सिद्धांत और भी पुराना रहा होगा और शक ४२७ रोमक-सिद्धांत का निजी आविष्कार नहीं है इसे वराहमिहिर ने चुना होगा।

पंचसिद्धांतिका में रोमक-सिद्धांत के अतिरिक्त रोमक देश का भी नाम आया है यवनपुर, यवनाचार्य आदि शब्द भी आये हैं। यवनपुर का देशांतर भी दिया है जिससे पता चलता है कि यवनपुर अलेक्जेंड्रिया नामक नगर रहा होगा। फिर, जैसा ऊपर बताया गया है रोमक-सिद्धांत के मुख्य स्थिरांक से ही वे जो यवन ज्योतिष

सन् ३३२ ई पू में इस नगर की नींव अलेक्जेंडर महान (सिकंदर) ने डाली थी और अब यह मिस्र देश (ईजिप्ट) का प्रमुख नौकाश्रय (बंदरगाह) है। नींव पड़ने के सौ वर्ष के भीतर ही यह बहुत बड़ा शहर हो गया था। यह यूरोप तथा अरब और भारतवर्ष के बीच वाणिज्य का केंद्र था। यहाँ पर यवनों का सब से बड़ा विश्व-विद्यालय था। परंतु सन् ८ ई पू में यह रोमन लोगों के हाथ में चला गया। ऑगस्टस सीज़र के काल में इसकी जनसंख्या ३ लाख थी। सन् ६३६ में इस पर अरब वालों का अधिकार हो गया। अरब सेनापति अम्र ने अपने नरेश को अलेक्जेंड्रिया जीतने पर लिखा था कि यहाँ "४ महल ४ स्नानागार, १२, तेल बेचने वाले १२, यहूदी ४ ...ऋहुदी जो कर देते हैं और ४ नाट्य-शालाएँ हैं। पृष्ठ ११८ पर इस नगर की स्थिति दिखायी गयी है।

में प्रचलित थे। इन सब बातों से स्पष्ट हो जाता है कि रोमक-सिद्धांत यवन ज्योतिष पर आश्रित था।

पुलिश सिद्धांत

पंचसिद्धांतिका की प्राप्य प्रतियों में उस श्लोक का पाठ जिसमें पुलिश-सिद्धांत के अनुसार अहर्गण बनाने का नियम है इतना अशुद्ध था कि थीबो और सुधाकर ठीक से उसका अर्थ न लगा सके। परंतु इसमें एक स्थान पर ९७६ की संख्या है (ऋतु सप्त नव भवत) अवश्य ही यह उन दिनों की संख्या होगी जिसके पश्चात एक अधिमास पड़ता है। इसी प्रकार ६३ (त्रिऋतु) संभवतः उन दिनों की संख्या है जिसके पश्चात एक तिथि का क्षय होता है। जान पड़ता है कि पुलिश-सिद्धांत ने किसी बड़े युग को लेकर उसमें कुल अधिमासों और क्षय तिथियों को बताने की रीति को नहीं अपनाया। उसने यही बताकर काम चला लिया कि कितने-कितने दिनों पर अधिमास पड़ता है या क्षय तिथि पड़ती है। पुलिश-सिद्धांत में वर्ष ३६५ दिन ६ घंटा १२ मिनट का माना गया था।

पुलिश-सिद्धांत में ग्रहों की गणना के लिए भी नियम दिये गये हैं परंतु ये सूर्य-सिद्धांत और रोमक-सिद्धांत के नियमों की अपेक्षा बहुत स्थूल हैं। गणना की सुविधा के लिए संक्षिप्त मार्गों और संक्षिप्त नियमों से काम चलाया गया है। पुलिश-सिद्धांत में उज्जयिनी (उज्जैन) और काशी (बनारस) से यवनपुर का देशान्तर दिया है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यवनपुर अलेक्जेंड्रिया ही रहा होगा।

पुलिश-सिद्धांत नामक ग्रंथ का उल्लेख भट्टोत्पल ने वराहमिहिर के बृहत्संहिता की टीका में और पृथूदक स्वामी ने ब्रह्मगुप्त के स्फुट-सिद्धांत की टीका में किया है। परंतु इन दोनों टीकाकारों ने जिस पुलिश-सिद्धांत का उल्लेख किया है वह कोई और ही ग्रंथ रहा होगा क्योंकि उसमें एक महायुग था जिसमें वर्षों, मासों, दिनों, और ग्रहों के भगणों की संख्याएँ पूर्ण संख्याएँ थीं। उसमें वर्षमान ३६५ दिन ६ घंटे १२ मिनट ३६ सेकंड था जो वराहमिहिर में उल्लिखित पुलिश-सिद्धांत से भिन्न है।

वसिष्ठ-सिद्धांत

वसिष्ठ-सिद्धांत (या वासिष्ठ सिद्धांत) बहुत संक्षेप में ही पंचसिद्धांतिका में दिया गया है। यह बहुत कुछ पितामह सिद्धांत की तरह है परंतु उससे कई बातों में अधिक शुद्ध है। वराहमिहिर ने इस सिद्धांत और पितामह-सिद्धांत को निकृष्टतम श्रेणी का माना है। पितामह सिद्धांत की तरह वसिष्ठ सिद्धांत में भी माना

गया है कि जब दिन बढ़ने लगता है तो प्रति दिन बराबर वृद्धि होती है (जो अशुद्ध है या बहुत स्थूल है) परन्तु लघुतम और महत्तम दिनों के मान पितामह-सिद्धांत के मानों से भिन्न हैं।

वसिष्ठ-सिद्धांत में राशियों की चर्चा है। लग्न भी है जो बताता है कि रविमार्ग का कौन-सा भाग पूर्वीय क्षितिज से लगा हुआ है। परन्तु सूर्य चन्द्रमा आदि, की मध्यम और स्पष्ट गतियों में भेद का ज्ञान इस सिद्धांत के कर्त्ता को न था। इसलिए वसिष्ठ-सिद्धांत की गिनती उस श्रेणी में नहीं की जा सकती जिसमें सूर्य-सिद्धांत आदि हैं।

ब्रह्मगुप्त के स्फुट-सिद्धांत में विष्णुचन्द्र के लिखे वसिष्ठ-सिद्धांत का उल्लेख है परन्तु वहाँ अर्थ यह जान पड़ता है कि जैसे श्रीषेण ने रोमक-सिद्धांत को भ्रष्ट बना दिया वैसे ही विष्णुचन्द्र ने वसिष्ठ-सिद्धांत को। ब्रह्मगुप्त तथा वराहमिहिर के एक-दो उक्तियों से ऐसा जान पड़ता है कि वसिष्ठ-सिद्धांत की रचना विजयनन्दिन ने की थी यद्यपि यह बात स्पष्ट रूप से नहीं कही गयी है।

वर्तमान समय में जो ग्रन्थ लघु वसिष्ठ-सिद्धांत के नाम से छपता है उसका कोई संबंध पञ्चसिद्धांतिका के वसिष्ठ-सिद्धांत से नहीं दिखायी पड़ता।

सूर्य-सिद्धांत

पञ्चसिद्धांतिका के सूर्य-सिद्धांत की चर्चा आधुनिक सूर्य-सिद्धांत के संबंध में की जायगी।

तुलना

पञ्चसिद्धांतिका के पाँच सिद्धांतों की तुलना से स्पष्ट पता चलता है कि किस प्रकार भारतीय-ज्योतिष धीरे-धीरे विकसित होकर सूर्य-सिद्धांत के ज्योतिष में परिवर्तित हुआ। पितामह-सिद्धांत वेदांग-ज्योतिष गर्ग-संहिता सूर्य-प्रज्ञप्ति आदि की जाति का था। इन सब ग्रन्थों में पाँच वर्ष का युग था सूर्य आदि आकाशीय पिंड सदा समान वेग से चलते हुए माने जाते थे और दिन समान क्रम से घटता हुआ माना जाता था। सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति साधारण गणना से बतायी जाती थी। उत्तरायण का आरंभ तब माना जाता था जब सूर्य धनिष्ठा के आदि बिंदु पर रहता था। वराहमिहिर की पञ्चसिद्धांतिका में पितामह-सिद्धांत के अनुसार पञ्चवर्षीय युग की गणना करने में शक २ से आरंभ करने को कहा गया है।

इन प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थों की एक-दो विशेषताएँ पीछे के सभी ग्रन्थों में बरतायी गयीं। एक तो युग का महत्त्व। सभी सिद्धांत-ग्रन्थों में युग का प्रयोग

किया गया। युग सब होते गये परंतु उनका तिरस्कार किसी ने नहीं किया यद्यपि ऐसा करना सुगम था। करण-ग्रंथों के रचयिताओं ने अवश्य इसका तिरस्कार किया। दूसरी बात थी तिथियों का प्रयोग। यह तो आज तक चालू है। अन्य किसी देश में तिथियों का प्रयोग नहीं होता।

वसिष्ठ-सिद्धांत पितामह-सिद्धांत से अधिक विकसित था परंतु सूर्य-सिद्धांत से बहुत निम्न कोटि का था।

शेष तीन सिद्धांत—पौलिश रोमक और सौर—तीनों बहुत कुछ एक तरह के थे। इन तीनों में उन विषयों का समावेश था जो नवीन भारतीय ज्योतिष के द्योतक थे। इन सब में सूर्य और चंद्रमा की स्पष्ट गतियों की भी चर्चा है क्योंकि उनकी स्थिति केवल यह मान कर नहीं निकाली गयी है कि वे सदा समान कोणीय वेग से चलते हैं यह भी बताया गया है कि उनका कोणीय वेग समान वेग से कितना अधिक या न्यून बना रहता है। पौलिश और रोमक सिद्धांतों में अधिक सादृश्य है। सूर्य-सिद्धांत इन दोनों से अधिक विकसित है अधिक शुद्ध और अधिक परिपूर्ण है। सूर्य-सिद्धांत में ग्रहण-गणना के नियम पूर्ण और पर्याप्त हैं उनकी तुलना में रोमक-सिद्धांत के नियम बहुत कम और स्थूल हैं और पौलिश सिद्धांत के नियम तो और भी स्थूल हैं।

ग्रीष्म अयनांत पहले आश्लेषा के मध्य में होता था और वराहमिहिर के समय में पुनर्वसु के आरंभ में। ये बातें वराहमिहिर को ज्ञात थी क्योंकि पंचसिद्धांतिका में दोनों की चर्चा है परंतु उसमें कोई बात ऐसी नहीं लिखी है जिससे पता चले कि उसने इसका कारण समझ लिया था कि अयन विषुव तारों के सापेक्ष पीछे-मुँह क्यों खिस-कता रहता है।

यवन ज्योतिष से संबंध

पौलिश और रोमक सिद्धांतों के नामों से ही संदेह होता है कि इनका उद्गम यवन ज्योतिष से था। इन दोनों में वर्ष का मान वह है जो सायन वर्ष का है (नाक्षत्र वर्ष का नहीं जो सूर्य-सिद्धांत में है)। रोमक में अहर्गण की गणना यवनपुर के याम्यो-

सायन वर्ष वह है जिसका आरंभ सदा एक ही ऋतु में पड़ता है चाहे हजारों वर्ष क्यों न बीत जायँ। नाक्षत्र वर्ष वह है जिसका आरंभ सूर्य के सदा किसी विशेष तारे के पास पहुँचने पर होता है। अयन के कारण दोनों में लगभग २ मिनट का अंतर है।

तर से की गयी है और दूसरे में यमनपुर से उज्जयनी ?? देशांतर दिया गया है। दोनों में वे नवीन बातें हैं जो यवन ज्योतिष में भी परन्तु वेदाङ्ग-ज्योतिष पितामह सिद्धांत और वसिष्ठ-सिद्धांत में नहीं थी। इससे धारणा होती है कि नवीन भारतीय ज्योतिष यवन ज्योतिष पर आधारित था। परन्तु जब इसकी खोज की जाती है कि किस विशेष यवन पुस्तक या यवन आचार्य से भारतीयों ने अपना ज्ञान प्राप्त किया तो बड़ी कठिनाई पड़ती है। यवन और नवीन भारतीय ज्योतिष में सादृश्य होते हुए भी पर्याप्त विभिन्नता है। ऐसा जान पड़ता है कि भारत में यवन ज्योतिषियों का ज्ञान हिपार्कस के बाद और टाल्मी[1] के पहले आया सम्भवतः थोड़ी-थोड़ी मात्रा में और कई बार, और भारतीय ज्योतिषियों ने इस ज्ञान को अपने निजी विवेचन और खोज से अपने निजस साँचे में ढाल लिया और फिर वे उसकी उन्नति करते रहे। सूर्य-सिद्धान्त में कई बातें ऐसी हैं जो विशेष महत्त्व की हैं और यवन ज्योतिष में नहीं मिलती।

वराहमिहिर ने आर्यभट के सिद्धांत का सारांश अपनी पंचसिद्धांतिका में नहीं दिया। इससे समझा जा सकता है कि उसके समय में आर्यभट का ग्रंथ इतना प्राचीन नहीं समझा जाता था जितना रोमक-सिद्धांत या सूर्य-सिद्धांत। आर्यभटीय के नियम सूर्य-सिद्धांत के नियमों से मिलते जुलते हैं। वस्तुतः सूर्य-सिद्धांत के नियमों को अधिक शुद्ध करने की चेष्टा भी आर्यभट ने की थी परन्तु वर्तमान सूर्य-सिद्धांत आर्यभटीय से अधिक शुद्ध है जैसा एक अन्य अध्याय में विस्तार से दिखाया गया है।

त्रैलोक्य-संस्थान

पंचसिद्धांतिका में त्रैलोक्य-संस्थान नाम का तेरहवाँ अध्याय है जो पूर्वोक्त सिद्धांतों में से किसी का नहीं जान पड़ता। सम्भवतः यह अध्याय वराहमिहिर की स्वतंत्र रचना है। इसमें विश्व की रचना तथा कुछ फुटकर बातें बतायी गयी हैं। वराहमिहिर ने इस अध्याय के पहले श्लोक में बताया है कि

पंचमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः।
खेऽयस्कान्तान्तःस्थो लोह इवावस्थितो वृत्तः॥

अर्थ—पंचभूत से बनी पृथ्वी का गोल तारों के पंजर (ठठरी) में उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार चुम्बकों के बीच लोहा।

[1] आगामी अध्याय देखें।

इस प्रकार वराहमिहिर मानता था कि पृथ्वी किसी अन्य वस्तु पर टिकी नहीं है। अन्तरिक्ष में चारों ओर से बेलाग है। उसने यह भी लिखा है[1] कि जैसे मनुष्यों के देश में अग्निशिखा वायु में ऊपर उठती है और फेंकी जाने पर भारी वस्तु पृथ्वी पर गिरती है उसी प्रकार उलटी ओर, असुरों के देश में भी होता है।

परन्तु पृथ्वी के अक्ष भ्रमण के प्रश्न में वराहमिहिर की राय आर्यभट के मत के विरुद्ध थी। उसने लिखा है कि "कुछ लोग कहते हैं कि पृथ्वी भ्रमण करती है परन्तु यदि ऐसा होता तो चील तथा अन्य पक्षी आकाश से अपने घोंसले में न लौट सकते[2]। और फिर, यदि पृथ्वी वस्तुतः एक दिन में एक चक्कर लगाती तो ध्वजा आदि पृथ्वी के वेग के कारण पश्चिम की ओर फहराते रहते। और यदि कोई कहे कि पृथ्वी धीरे-धीरे घूमती है तो फिर (एक दिन में एक बार) वह कैसे घूम लेती है ?"[3]

[1] पंचसि १३।४।

[2] पंचसि १३।६-७।

[3] कुछ पाठकों को आज भी शंका हो सकती है कि वस्तुतः क्या बात है कि चील आदि ऊपर उड़ जाने पर पीछे नहीं छूट जाते। इस शंका का समाधान इस प्रकार हो जाता है कि रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठकर गेंद सीधा ऊपर उछालने से गेंद अंत में सीधा नीचे हो तो गिरता है, वह पीछे थोड़े ही छूट जाता है। कारण यह है कि उछलते समय गेंद में वह वेग भी था जो रेलगाड़ी में था और यह वेग बराबर बना रहता है इसलिए गेंद पीछे नहीं छूटता। रेलगाड़ी में बैठे व्यक्ति को जान पड़ता है कि गेंद सीधे ऊपर गया और सीधे नीचे गिरा परंतु भूमि पर स्थित व्यक्ति को वही गेंद वक्र में चलता दिखायी पड़ेगा। वह देखेगा कि यात्री के हाथ से फेंके जाने पर गेंद वक्र में चल कर फिर यात्री के नवीन स्थिति में आ पहुँचता है। वराहमिहिर और साधारण पाठक के हृदय का भ्रम इस बात पर आश्रित है कि वे समझते हैं कि वेग को बनाये रखने के लिए बल लगाने की आवश्यकता है परंतु आधुनिक गति-विज्ञान कहता है कि प्रत्येक पिंड अपनी स्थिरावस्था में पड़ा रहता है या सरल रेखा में समवेग से चलता रहता है; और केवल तभी वह अपनी स्थिरावस्था या समवेग से सरल रेखा में चलने की अवस्था को छोड़ता है जब वह बाहर से बल द्वारा प्रेरित होता है। (देखें गोरखप्रसाद और हरिश्चन्द्र गुप्त : गतिविज्ञान अध्याय ४)।

जैनियों का मत था कि आकाश में दो सूर्य होते हैं दो चन्द्रमा होते हैं। इस पर वराहमिहिर का कहना है कि यदि जैसा आर्हत ने कहा है दो सूर्य और दो चन्द्रमा होते जो पारी-पारी से उदित होते हैं तो यह कैसे होता है कि सूर्य से ध्रुव तक जाने वाली रेखा (जो उस पर स्थित तारों के कारण सूर्य के अस्त होने पर भी दिखायी देती है) एक दिन में चक्कर लगा लेती है ?

चन्द्रमा में कलाएँ क्यों दिखायी पड़ती हैं इसका सच्चा कारण वराहमिहिर को ज्ञात था। लिखा है जैसे-जैसे प्रति दिन चन्द्रमा का स्थान सूर्य के सापेक्ष बदलता है वैसे-वैसे उसका प्रकाशमय भाग बढ़ता जाता है ठीक उसी तरह जैसे कम राह्न में घड़े का पश्चिम भाग अधिकाधिक प्रकाशित होता जाता है।

ज्योतिष यंत्र

वराहमिहिर के समय में अच्छे ज्योतिष यंत्रों का अभाव था। शंकु (अर्थात् खड़ा या तिरछा डंडा) बहुत काम में आता था। लिखा है कि ऋजु (सीधे) शंकु की जड़ पर आँख लगा कर शंकु को इस प्रकार तिरछा करो कि शंकु का अग्र आँख और ध्रुव-तारा तीनों एक रेखा में आ जायँ। ~ तब (शंकु के अग्र से आँख द्वारा नीचे गये समतल पर नापा गया) अक्ष अक्षांश की ज्या है। ऐसे प्रयोगों से मत विषमसीय रीति से भूकेन्द्र या समस्त पृथ्वी को नापते हैं जैसे कबन्ध मिले थोड़े-से अन्न से अन्न का स्वाद जाना जा सकता है। ऐसे शंकु को भास्कराचार्य ने पीछे यष्टियन्त्र का नाम दिया (अध्याय १४ देखें)।

परन्तु वराहमिहिर ने सब यंत्रों का भेद खोल कर रख देना उचित न समझा। लेखक समाप्ति नामक चौवहवें अध्याय में साधारण यंत्रों और रीतियों का वर्णन देकर यह लिखा है[1] गुरु को चाहिए कि केवल स्थिर-बुद्धि शिष्यों को ये बातें बतावें और शिष्य को चाहिए कि इन बातों को सीखकर अपने यंत्रों को इस प्रकार बनावें कि पुत्र को भी उसका भेद ज्ञात न हो।

पंचसि १३।३७।

पंचसि १३।३१ १४। वराहमिहिर का कहना ठीक है। दो स्थानों पर पूर्णकाल रीति से शंकु द्वारा अक्षांश नाप कर सारी पृथ्वी की नाप जानी जा सकती है। (देखें लेखक-रचित सरल गणित-ज्योतिष पृष्ठ १५७।)

पंचसि १४।२८।

इस अध्याय में ज्यामितीय रचनाओं और यन्त्रों के अतिरिक्त एक उन्नतांश-मापक का भी वर्णन है जो इस प्रकार है:

ऐसा चक्र लो जिसकी परिधि ९६ बराबर अंशों में बँटी हो, जिसका व्यास एक हस्त हो और जो मोटाई में आधी अंगुली हो। उसकी मोटाई के बीच में एक स्थान पर छेद कर दो। इस छोटे-से छेद द्वारा मध्याह्न पर सूर्य की रश्मियों

उन्नतांशमापक।

वराहमिहिर के वर्णन के अनुसार खींचा गया चित्र।

को तिरछी दिशा में चलने दो [और ऐसा प्रबन्ध करो कि यह रश्मि पूर्वोक्त चक्र के केंद्र से होकर जाय]। तो चक्र के जितने भाग में जितना अंश [सूर्यरश्मियों से प्रा

खित बिंदु और] चक्र-केंद्र से लटकाये गये लाइन-सूत्र के बीच पड़ते हैं वे मध्याह्न सूर्य की शिरोबिंदु-दूरी के अंश हैं[1]।

नाडिका-यंत्र ।

वराहमिहिर के वर्णन के अनुसार खींचा गया चित्र ।

समय मापन के लिए जल-घटी का उपयोग बताया गया है —

तांबे का बरतन आधे घड़े के रूप में बनाओ और पेंदे में छेद करो। इसे पानी से भरे बड़े बरतन में रखो। जब यह पानी से भर उठे तो एक नाडिका बीती होगी। पेंदे का छिद्र इतना छोटा होना चाहिए कि एक अहोरात्र (रात-दिन) में यह ६० बार डूबे।

वराहमिहिर की जीवनी

वराहमिहिर ने अपने को अवन्ती का बताया है। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं उनका देहान्त सन ५८७ ईसवी में हुआ।

[1] पंचसि १४।२१-२१।
पंचसि १४।१२।
पंचसि १८।६१।

वराहमिहिर को गणित-ज्योतिष की अपेक्षा फलित ज्योतिष में अधिक रुचि थी। उसकी बृहत्संहिता नामक पुस्तक वस्तुतः एक बड़ी-सी पोथी है जो फलित ज्योतिष पर है। उसके बृहज्जातक और योगयात्रा नामक ग्रंथ भी फलित ज्योतिष पर हैं। परंतु उसकी पंचसिद्धांतिका गणित-ज्योतिष पर है और वह तत्कालीन ज्योतिष के ज्ञान के लिए अपूर्व सिद्ध हुई है। पंचसिद्धांतिका न होती तो ज्योतिष-इतिहास का हमारा ज्ञान बहुत अधूरा ही रह जाता। अलबीरूनी ने अपने 'भारतवर्ष' में वराहमिहिर को बहुत आदर प्रदान किया है। लिखा है कि "वराह के कथन सत्य पर आश्रित हैं परमेश्वर करे कि सभी बड़े लोग उसके आदर्श का पालन करें।

हिन्दी-शब्दसागर में वराहमिहिर के सम्बन्ध में निम्न सूचना दी गयी है—

"वराहमिहिर के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के प्रवाद कुछ वचनों के आधार पर प्रचलित हैं। जैसे ज्योतिर्विदाभरण के एक श्लोक में कालिदास धन्वन्तरि आदि के साथ वराहमिहिर भी विक्रम की सभा के नौ रत्नों में गिनाये गये हैं। पर इन नौ नामों में से कई एक भिन्न-भिन्न काल के सिद्ध हो चुके हैं। अतः यह श्लोक प्रमाण के योग्य नहीं। अपने बृहज्जातक के उपसंहाराध्याय में वराहमिहिर ने अपना कुछ परिचय दिया है। उसके अनुसार ये अवन्ती (उज्जयिनी) के रहने वाले थे। 'कापित्थ'* स्थान में सूर्यदेव को प्रसन्न करके इन्होंने वर प्राप्त किया था। इनके पिता का नाम आदित्यदास था।

*संभवतः यह कपित्थ-ग्राम है जो उज्जैन के निकट (आज भी) कायथा के नाम से विद्यमान है। इनके पुत्र का नाम पृथुयशस् था और उनकी रचना षट्पंचाशिका भी प्रसिद्ध है।

अध्याय १०

पाश्चात्य ज्योतिष का इतिहास

यवनों ने ज्योतिष ज्ञान कहाँ से पाया

भारत में कहाँ तक ज्योतिष का ज्ञान यवनों से आया इसे जाँचने के लिए पाश्चात्य ज्योतिष के इतिहास पर एक दृष्टि डाल लेना उचित होगा। ज्योतिष की आवश्यकता सभी देशवासियों को पड़ती है और दीर्घकाल तक आकाशीय पिंडों के अध्ययन से ज्योतिष की अनिवार्य मोटी-मोटी बातें सभी को ज्ञात हो जाती हैं। प्राचीन समय में बाबुल लोगों (बैबिलोनियनों) का ज्योतिष-ज्ञान बहुत

[चित्रकार: [illegible]]

प्राचीन मंदिरों का अवशेष।

बाबुल लोग ऊँचे ऊँचे स्थानों पर मंदिर बनाते थे और उनकी छतों से ज्योतिष संबंधी वेध किया करते थे।

बढ़ा-चढ़ा था। ये लोग टाइग्रिस और यूफ्रेटीज़ नदी के मध्य की तथा समीपवर्ती भूमि में रहते थे (आगामी पृष्ठ पर चित्र देखें)। इन्हीं से यवनों (अर्थात् ग्रीस

भारत
बैबिलन
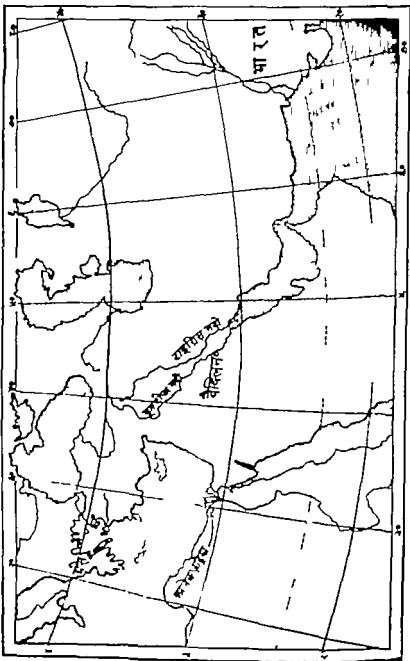
देश के निवासियों) को ज्योतिष की प्रारम्भिक बातों का ज्ञान हुआ। इतना निश्चित है कि तारा-मंडलों में तारों का विभाजन यवनों ने बाबुलों से पाया। ग्रहों का ज्ञान भी उन्हें बाबुलों से मिला। बाबुलों ने ग्रहणों की भविष्यवाणी करने के लिए सैरोस नामक युग का आविष्कार किया था। यह २२३ चान्द्र मासों का (लगभग १८ वर्ष ११ दिन का) होता है। ऐसे एक युग के ग्रहण आगामी युग में उसी क्रम में और प्रायः ठीक उतने ही समयों पर होते हैं। इस युग का आविष्कार कब हुआ यह अब कहा नहीं जा सकता परन्तु एक राजा के समय के कर्मों से स्पष्ट हो जाता है कि सन ३८ ईसवी पूर्व में तारा-मंडलों के नाम पड़ गये थे यद्यपि उनमें थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहा। यवनों को तारा-मंडलों का जो ज्ञान मिला और जिसे ऐरेटस नामक कवि ने छन्दबद्ध किया अवश्य ही ऐसे तारा मंडलों का है जो लगभग २८ ई॰ पू॰ में देखे गये होंगे। इसका प्रमाण यह है कि जिन तारा-मंडलों का नाम पूर्वोक्त सूची में नहीं है अवश्य ही वे तारा मंडल होंगे जो उस देश से नहीं दिखायी पड़ते थे। इस प्रकार हम जानते हैं कि तारों का कौन-सा भाग वहाँ नहीं दिखायी पड़ता था। इस भाग का केंद्र अवश्य ही दक्षिण ध्रुव रहा होगा।

[सर्] और चिपीज़ की पुस्तक से

मंदिर या वेधशाला ?
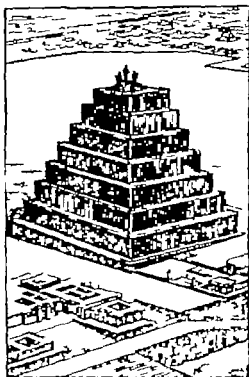
बाबुल लोग ऊँचे ऊँचे मंदिर बनाया करते थे और उनकी छतों पर से आकाशीय पिंडों का वेध किया करते थे।

इसलिए हम जानते हैं कि उस समय दक्षिण ध्रुव तारों के बीच कहाँ रहा होगा। अब देखने की बात है कि दक्षिण ध्रुव और उत्तर ध्रुव भी तारों के बीच भ्रमण के कारण चला करते हैं और तारों के सापेक्ष उनकी स्थिति जानने से हम बता सकते हैं कि पूर्वोक्त स्थिति किस काल में रही होगी। ऐसे ही विचारों से एरेटस के वर्णन से तारामंडलों के बनने का काल निर्णय किया गया है। एरेटस ने २७० ई० पू० में अपने ग्रंथ लिखे थे परंतु तारा-मंडलों का विभाजन निस्संदेह लगभग २८०० ई० पू० का है और ४०° अक्षांश के देश में बना है।

बाबुल में ज्योतिष

मिट्टी के कुछ खपड़े मेसोपोटेमिया[1] से मिले हैं जिन पर तरह-तरह की बातें लिखी हुई हैं। इन्हें पढ़ने में भाषा-वैज्ञानिकों ने सफलता पायी है। इन खपड़ों से पता चलता है कि दूसरी शताब्दी ई० पू० में मेसोपोटेमिया में ज्योतिष का विशद ज्ञान था। उस समय वहाँ के ज्योतिषियों को ज्ञात था कि शुक्र, बुध, शनि, मंगल और बृहस्पति अपने पुराने स्थान पर क्रमानुसार ८, ४६, ५९, ७९, ८३ वर्षों में लौटते हैं। इन युगों की लंबाई से ही स्पष्ट है कि बाबुल लोग सैकड़ों वर्ष पहले से ही ग्रहों का नियमित रूप से वेध करते रहे होंगे। प्रति वर्ष पंचांग (खपड़ों पर खुदे अक्षरों में) प्रकाशित किया जाता था जिसमें अमावस्या का दिनांक दिया जाता था और यह भी कि चंद्र-दर्शन कब होगा। ग्रहणों का दिनांक और ब्योरा भी पहले से बता दिया जाता था। तारों का उदय-अस्त और ग्रहों की स्थितियाँ भी प्रकाशित होती थीं। उनका नाक्षत्र वर्ष सच्चे मान से कुछ ४½ मिनट अधिक था। पादरी एफ० एक्स० कग्लर ने एक महत्त्वपूर्ण बात का पता लगाया है कि बाबुलों के चांद्र मास आदि का काल ठीक उतना ही था जितना प्रसिद्ध यवन ज्योतिषी हिपार्कस का, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि हिपार्कस ने इनका ज्ञान वस्तुतः बाबुलों से पाया था, वह इनका स्वयं आविष्कारक न था।

बैबिलोनिया से ज्योतिष का ज्ञान ग्रीस में लगभग सातवीं शताब्दी ई० पू० में अच्छी तरह पहुँचा। लगभग ६४० ई० पू० में एक बाबुल विद्वान ने कोस द्वीप में पाठशाला खोली और थेल्स नामक यवन संभवतः उसका शिष्य था। पाइथागोरस ने (लगभग ५३० ई० पू० में) बैबिलोनिया, मिस्र देश और भारतवर्ष आदि देशों में पर्यटन करके तथा निजी खोज से ज्योतिष तथा गणित का विशेष ज्ञान प्राप्त किया।

[1] बाबुलों के देश का आधुनिक नाम।

यह वही गणितज्ञ है जिसके नाम से पाइथागोरस का प्रमेय प्रसिद्ध है—ज्यामिति का यह प्रमेय बताता है कि समकोण त्रिभुज में कर्ण पर बना वर्ग शेष भुजाओं पर बने वर्गों के योग के बराबर होता है[1]। पाइथागोरस का मत था कि पृथ्वी अंतरिक्ष में बेकाम टिकी है अन्य किसी पिंड या पदार्थ या जीव पर आश्रित नहीं है। उसके शिष्यों की पुस्तकों से प्रकट है कि वे यह मानते थे कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती रहती है। अरिस्तार्कस का (लगभग २८०—२६४ ई पू में) सिद्धान्त था कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी तथा अन्य ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं परन्तु आर्किमिडीज ने इस सिद्धान्त को भ्रमपूर्ण बताया। यूडोक्सस ने (४ ८—३५५ ई पू म) इसका भी प्राय मुख सिद्धान्त बनाया कि क्यों ग्रह बराबर एक दिशा में चलने के बदले आगे पीछे चलते हैं। कुछ अन्य ज्योतिषियों ने इसमें थोड़ा-बहुत संशोधन किया परन्तु इस विषय पर अपोलोनियस (लगभग २५०—२२ ई पू में) वह सिद्धान्त बना लिया था जो सूर्य-सिद्धान्त में भी है और अपोलोनियस के समय से लगभग १८ वर्षों तक ठीक समझा गया। अरिस्टिलस और टिमोरिस ने (लगभग १२०—२६ ई पू में) तारों की स्थितियाँ नाप कर तारा-सूचियाँ बनायी। अरिस्टार्कस ने सूर्य और चन्द्रमा की दूरियों का अनुपात जानने की भी एक रीति का वर्णन किया जो सिद्धान्तत ठीक है परन्तु व्यवहार में बहुत अच्छा परिणाम नहीं देता। एरॉटॉसथिनिज ने रविमार्ग और विषुवत के बीच के कोण को नापा और उसकी नाप में कुल ५ कला की अशुद्धि थी। उसने पृथ्वी के व्यास की भी गणना दो स्थानों से ध्रुव के उन्नतांशों को नाप कर किया।

हिपार्कस

इसमें संदेह नहीं कि यवन ज्योतिषियों में सबसे महान हिपार्कस और टालमी थे। हिपार्कस का जन्म कब हुआ था मृत्यु कब हुई इसका ठीक पता नहीं है परन्तु उसका काल लगभग १४६—१२७ ई पू था। उसकी गणना प्रसिद्धतम प्राचीन ज्योतिषियों और गणितज्ञों में होती है। उसका जन्म-स्थान नीसिया था। १६१ से १२६ ई पू में वह अलेक्जेंड्रिया[2] में ज्योतिष वेध किया करता था और

[1] संभवत पाइथागोरस ने इस प्रमेय को भारतवर्ष में सीखा था। देखें साइटन्सिफट डर डॉयटशेन मॉरगनलैंडिशेन गजेलशाफ्ट।

[2] पृष्ठ ११८ के चित्र में इसकी स्थिति दिखायी गयी है पृष्ठ ११२ पर इस नगर का वर्णन किया जा चुका है।

इति ९

उसके पहले अपनी जन्मभूमि में। उसकी पुस्तकें अब अधिकांश लुप्त हो गयी हैं। परन्तु हमें उसके विषय में जानकारी स्ट्रेबो (प्रथम शताब्दी ई पू) और मिस्र के महान ज्योतिषी टाल्मी के लेखों से प्राप्त होती है। टाल्मी ने अपनी पुस्तक *सिनटैक्सिस में बार-बार हिपार्कस की चर्चा की है और कई स्थानों पर तो हिपार्कस* के वाक्यों का ज्यों-का-त्यों उद्धरण दिया है। सिनटैक्सिस का नाम पीछे ऐलमैजेस्ट पड गया क्योंकि अरब वाले इसे अल मजस्ती कहते थे। यह ग्रंथ कोपरनिकस (१४७३–१५४३ ई) और केपलर (१५७१–१६३ ई) के समय तक वेद-पुराण की तरह अकाट्य समझा जाता था और इसी से यह सुरक्षित रह गया। टाल्मी ने हिपार्कस की बड़ी प्रशंसा की है और सदा बताने की चेष्टा की है कि कितनी बातें उसे हिपार्कस से मिली परन्तु बहुत से स्थानों में सदेह बना ही रह जाता है कि कितना अश हिपार्कस से मिला और कितना इसमें टाल्मी का नया काम है। जान पड़ता है *कि हिपार्कस ने कई एक छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ फुटकर विषयो पर लिखी* थी परन्तु सपूर्ण ज्योतिष पर किसी ग्रथ की रचना नहीं की थी। इसके विपरीत सिनटैक्सिस में सब बातों का पूरा विवेचन था ज्योतिष राशियों के मान पहले से बहुत अच्छे थे और पुस्तक बहुत अच्छे ढग से लिखी गयी थी। सभवत इसी कारण से हिपार्कस की कृतियों का आदर कम हो गया और समय पाकर वे लुप्त हो गयी। टाल्मी हिपार्कस के लगभग ३ वर्ष बाद हुआ था। ज्योतिष के प्रमुख प्रश्नों के उत्तर हिपार्कस ने दे दिये थे। टाल्मी ने उनको परिष्कृत किया त्रुटियों की पूर्ति की और नवीन सारणियाँ बनायी।

हिपार्कस का काम

हिपार्कस ने ज्योतिष के प्रमुख ध्रुवाको को निर्धारित कर दिया था जैसे सायन और नक्षत्र वर्षों की लबाइयाँ चाद्रमास की लबाई, पाँचो ग्रहो के सयुति-काल रवि मार्ग की तिर्यक्ता (तिरछापन) जिसे प्राचीन भारत के ज्योतिषी परम क्रांति कहते थे चद्रमार्ग की तिर्यक्ता सूर्य-कक्षा का मदोच्च (जहाँ सूर्य हमसे दूरतम रहता है), सूर्य-कक्षा की उत्केंद्रता (अथवा चिपटापन) चद्रमा का लबन (अथवा दूरी) और इन सभी राशियों के मान प्राय ठीक थे। अवश्य ही उसने बहुत-सी बातें खाल्दी[1] (कल्डियन) लोगों से सीखी थी परन्तु स्पष्ट है कि उसने स्वय इन राशियों को नापा था और कई एक के नवीन तथा अधिक अच्छे मान दिये थे। हिपार्कस गोले पर तारों

[1] बाबुलों के देश में ही पीछे खाल्दियों का अधिकार हुआ।

(नक्षत्रों) का चित्र बनाकर उनका अध्ययन करता था। इस गोल को हम खगोल कहेंगे। तारा-मंडलों के वर्णन में जो नवीन बातें हिपार्कस ने बतायीं—कौन-सा तारा किन तारों के बीच में है, किस तारा-मंडल की आकृति किस प्रकार की है इत्यादि—सब खगोल देखकर बताये हुए जान पड़ते हैं।

इसकी विशेष संभावना जान पड़ती है कि हिपार्कस किसी-न-किसी प्रकार के याम्योत्तर यंत्र का प्रयोग करता था। आधुनिक याम्योत्तर यंत्र में एक दूरदर्शी इस प्रकार आरोपित रहता है कि वह केवल याम्योत्तर में चल सके। इसकी रचना नीचे के चित्र से समझ में आ जायगी। इसकी प्रयोग-विधि पृष्ठ १ ४ पर दिखायी गयी है।

याम्योत्तर यंत्र।

इस चित्र से आधुनिक याम्योत्तर यंत्र के अवयवों को सुगमता से समझा जा सकता है।

आधुनिक वेधशालाओं का यह प्रधान यंत्र है। अवश्य ही हिपार्कस के याम्योत्तर यंत्र में दूरदर्शी के बदले केवल सरल नलिका रही होगी। हिपार्कस ने बहुत से वेध

शिरोबिंदु और उत्तर तथा दक्षिण बिंदुओं से जानेवाले समतल को याम्योत्तर कहते हैं।

किये जो इतने शुद्ध थे कि आश्चर्य होता है कि कैसे उन यंत्रों से वह इतनी सूक्ष्मता प्राप्त कर सका। उसने सूर्य और चन्द्रमा की गतियों का प्रायः सच्चा सिद्धांत बना लिया था परन्तु ग्रहों के कभी आगे कभी पीछे चलने के सिद्धांत में पूरी सफलता नहीं पायी थी। उसके काम को टालमी ने पूरा किया। हिपार्कस ने भी अरिस्टार्कस की यह बात नहीं मानी कि सूर्य निश्चल है और पृथ्वी तथा ग्रह उसकी प्रदक्षिणा करते हैं।

अयन का आविष्कार

हिपार्कस के आविष्कारों में से निस्संदेह अयन का पता लगाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। जब वसंत ऋतु में दिन रात बराबर होते हैं तब खगोल पर तारों के बीच सूर्य की स्थिति को वसंत विषुव कहते हैं। वसंत विषुव तारों के बीच स्थिर नहीं रहता—वह चलता रहता है। इसी चलने को अयन कहते हैं। जब हिपार्कस ने अपने वेधों की तुलना टिमोकैरिस के वेधों से की तो उसे तुरंत पता चल गया कि अवश्य ही वसंत विषुव पीछे मुँह (अर्थात् सूर्य के चलने से उलटी दिशा में) चलता रहता है। वसंत विषुव के सापेक्ष सूर्य के एक चक्कर लगाने को सायन वर्ष कहते हैं तारों के सापेक्ष एक चक्कर लगाने को नाक्षत्र वर्ष कहते हैं। दोनों में २ मिनट २१ सेकंड का अन्तर है। हिपार्कस को इन दोनों वर्षों का भेद ज्ञात था। भारतीय ज्योतिषियों को इसका भेद ७ वर्ष पीछे वराहमिहिर के समय में भी ज्ञात नहीं हुआ। वस्तुतः भारत के अधिकांश पंचांग आज भी सायन वर्ष की अवहेलना करते हैं।

अयन के कारण वसंत विषुव का स्थान बहुत धीरे-धीरे ही बदलता है। वसंत विषुव आकाश का एक चक्कर लगभग २६ वर्षों में लगा पायेगा। सूर्य के व्यास के बराबर (अर्थात् लगभग आधा अंश) हटने में वसंत विषुव को लगभग ११ वर्ष लग जाता है। यही कारण है कि अयन का पता लगाना कठिन है। हिपार्कस ने टिमोकैरिस और अपने वेधों की तुलना से अयन का आभास तो पा लिया परन्तु

यह स्थूल परिभाषा है; शुद्ध परिभाषा यह है कि रविमार्ग और विषुवत् के एक छेदन-बिंदु को वसंत विषुव कहते हैं दूसरे को शरद विषुव; इनमें से वसंत विषुव वह है जहाँ सूर्य पृथ्वी के उत्तर गोलार्ध में वसंत ऋतु रहने पर स्थिर रहता है। वसंत विषुव और ध्रुव में घनिष्ठ संबंध है। वसंत विषुव का पीछे मुँह चलना ध्रुव के एक वृत्त में चलने का परिणाम है। ध्रुव के चलने की बात पहले बतायी जा चुकी है। (पृष्ठ ५९ और पृष्ठ ९७ का चित्र देखें।)

इससे पूर्व किदनास नामी हुआ था जब उसने और भी पुराने खाल्दी लोगों के वेधों से अपने वेधों की तुलना की। उसने अनुमान किया कि अयन विन्दु एक वर्ष में ३६ (छत्तीस विकला) है परन्तु वस्तुतः यह एक वर्ष में लगभग ५ विकला है।

हिपार्कस ने तारों की सूची भी बनायी जिसमें लगभग ८५ तारों का उल्लेख था और इसमें प्रत्येक तारे की स्थिति भोगांश (लॉन्जिट्यूड) और शर (लैटिट्यूड) देकर बतायी गयी थी। इस सूची का उद्देश्य सम्भवतः यह रहा होगा कि यदि कोई नवीन तारा कभी दिखायी पड़े तो उसका निश्चित पता चल सके क्योंकि हिपार्कस के समय में वृश्चिक राशि में एक नवीन तारा वस्तुतः दिखायी पड़ा था जिसका उल्लेख चीन के ज्योतिषियों ने किया है (१३४ ई० पू०)। हिपार्कस की सूची को थोड़ा-बहुत संशोधन करके टालमी ने प्रकाशित किया। हिपार्कस ने कोणों की जीवाओं के भी मान दिये थे।* उसके गणितीय तथा भौगोलिक कार्यों के विवेचन की यहाँ आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

टालमी

टालमी अलक्जेंड्रिया (मिस्र देश) का निवासी था। उसका पूरा नाम क्लॉडियस टॉलेमियस था जो अँग्रेजी में संक्षिप्त होकर टालमी हो गया है। वह प्रसिद्ध ज्योतिषी, गणितज्ञ और भौगोलिक था। उसके जन्म अथवा मृत्यु काल का ठीक पता नहीं है परन्तु एक प्राचीन यवन लेखक के अनुसार उसने टॉलेमेस हर्माई नामक यवन नगर में जन्म लिया था। इतना अच्छी तरह ज्ञात है कि वह सन् १२७ ईसवी से सन् १४१ या १५१ ई० तक वेध करता रहा। अरबी लेखकों के अनुसार टालमी ७८ वर्ष की आयु में मरा। यहाँ टालमी के गणित और भूगोल विषयक कार्यों पर विचार न किया जायगा। केवल उसके ज्योतिष सम्बन्धी कार्यों पर संक्षेप में विवेचन किया जायगा।

हिपार्कस ने समतल और गोलीय त्रिकोणमिति के कुछ प्रमेयों का आविष्कार किया था और उसने ज्योतिष के सिद्धान्तों की उत्पत्ति में सहायता ली थी। टालमी ने इस विषय का इतना पूर्ण और दोषरहित विवेचन किया कि लगभग १४ वर्षों तक कोई दूसरा लेखक उसके आगे न बढ़ सका। आकाशीय पिंडों के चलन का टालमीय सिद्धान्त भी इसी प्रकार लगभग इतने ही समय तक सर्वमान्य बना रहा। टालमी

* जीवा और ज्या का सम्बन्ध यह है कि जीवा क = २ ज्या ½ क।

की गणितीय तथा ज्योतिष कृतियाँ जिस पुस्तक में एक साथ छपी हैं उसका नाम यवनों ने मैथिमैटिके सिनटैक्सिस रक्खा, जिसका अर्थ है गणित-संहिता। अरब वालों ने प्रशंसापूर्ण नाम खोज कर इसे मजस्ती कहा जिसमें वे अरबी उपसर्ग अल लगा दिया करते थे। इसी से इस पुस्तक का नाम अँग्रेजी तथा कई अन्य यूरोपीय भाषाओं में अलमैजेस्ट पड़ गया। इसका अर्थ हुआ महाराज।

सिनटैक्सिस

सिनटैक्सिस अर्थात् अलमैजेस्ट के प्रथम खंड में पृथ्वी, उसका रूप, उसका केंद्र पर स्थिर रहना, आकाशीय पिंडों का वृत्तों में चलना, कोण-जीवाओं की गणना करने की रीति, कोण जीवाओं की सारणी, रविमार्ग की तिर्यक्ता, उसे नापने की रीति और फिर ज्योतिष के लिए आवश्यक समतल तथा गोलीय त्रिकोणमिति और अंत में रेखांश तथा भोगांश से विषुवांश तथा क्रांति जानने की रीति और आवश्यक सारणी ये सब बातें दी हुई हैं। खंड २ में खगोल संबंधी कुछ प्रश्नों का उत्तर है, जैसे किसी अक्षांश पर महत्तम दिनमान क्या होगा, इत्यादि। खंड ३ में वर्ष की लंबाई और सूर्य-कक्षा की आकृति आदि की गणना-विधि का विवेचन है, जिसमें सिद्धांत मुख्यतः यह है कि सूर्य ऐसे वृत्त में चलता है जिसका केन्द्र किसी अन्य वृत्त पर चलता है। इस खंड के प्रथम अध्याय में टॉलमी ने यह भी बताया है कि सिद्धांत ऐसा होना चाहिए जो सरलतम हो और वेध प्राप्त बातों के विरुद्ध न हो और ऐसे वेधों में जिनमें सूक्ष्मता की आवश्यकता है उन वेधों को चुनना चाहिए जो दीर्घ कालों पर लिये गये हों। इससे वेधों की त्रुटियों का विशेष दुष्परिणाम न पड़ेगा। खंड ४ में चांद्र मास की लंबाई और चंद्रमा की गति बतायी गयी है। खंड ५ में ज्योतिष यंत्र की रचना, सूर्य तथा चंद्रमा के व्यास, छाया की नाप, सूर्य की दूरी आदि विषय हैं। खंड ६ में चंद्रमा और सूर्य की युतियों तथा ग्रहणों पर विचार किया गया है। खंड ७ और ८ में तारों तथा अयन पर विचार किया गया है। खंड ७ में उत्तरी तारा-सूची है और खंड ८ में दक्षिणी तारा-सूची। दोनों में कुल मिलाकर १०२२ तारे दिये गये हैं। प्रत्येक तारे के भोगांश और शर बताये गये हैं और चमक भी। खंड ८ में आकाशगंगा का भी वर्णन है। खंड ९ से १३ तक में ग्रह संबंधी बातें बतायी गयी हैं।

सिनटैक्सिस के भाष्य

सिनटैक्सिस पर कई भाष्य लिखे गये हैं। पैपस की यवन भाषा में लिखी टीका (जो केवल खंड ६ और आंशिक खंड ५ पर है) अब भी प्राप्य है। अलेक्ज़ेंड्रिया के थियन का भाष्य ग्यारह खंडों में है। थियन लगभग सन् ४ ई

में था परन्तु उसकी पुस्तक १५३८ ई० में प्रकाशित हुई। सन ८२७ में सिनटैक्सिस का उल्था अरबी भाषा में किया गया। इसके बाद कई सर्वांग अरबी अनुवाद हुए और इनमें से एक अनुवाद का लैटिन अनुवाद सन ११७५ में हुआ। यवन भाषा से लैटिन अनुवाद १४५१ में हुआ। हाइबर्ग ने टालमी की कृतियों का प्रामाणिक संस्करण १८९९-१९०७ में प्रकाशित कराया। इसके पहले कई संस्करण और अनुवाद छप चुके थे जिनका ब्योरा इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में मिलेगा। एक जरमन अनुवाद १९१२-१३ में छपा।

अलमैजस्ट यवन ज्योतिष का उच्चतम शिखर था। टालमी के बाद डेढ़ हजार वर्ष तक कोई बड़ा ज्योतिषी हुआ ही नहीं, केवल भाष्यकार हुए।

अध्याय ११

सूर्य सिद्धांत

मध्यमाधिकार

वराहमिहिर ने अपनी पंचसिद्धांतिका में जिन पाँच सिद्धांतों का सारांश दिया है उनमें से एक सूर्य-सिद्धांत भी है और पाँचों में इसी का स्थान सबसे ऊँचा है। सूर्य-सिद्धांत अब भी उपलब्ध है परंतु वर्तमान सूर्य-सिद्धांत और वराहमिहिर के सूर्य-सिद्धांत में कुछ बातों में अंतर है। निस्संदेह पीछे के ज्योतिषियों ने सूर्य सिद्धांत को अधिक परिष्कृत करने के लिए उसके गुणांकों में आवश्यकतानुसार संशोधन कर दिया होगा। नीचे का विवरण वर्तमान सूर्य-सिद्धांत के बारे में है।

हिंदी पाठकों के लिए सूर्य-सिद्धांत का महावीरप्रसाद श्रीवास्तव कृत 'विज्ञान भाष्य तथा मूल' जो विज्ञान-परिषद इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था सर्वोत्तम है। एक अंग्रेजी अनुवाद पादरी बरजेस ने १८६ में प्रकाशित कराया था जिसे कलकत्ता विश्वविद्यालय ने १९३५ में फिर से छापा। यह अनुवाद बहुत ही सुन्दर हुआ है और बरजेस की टिप्पणियाँ भी बहुत अच्छी हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय वाले संस्करण में प्रबोधचंद्र सेनगुप्त की भूमिका भी है जिसमें सूर्य-सिद्धांत संबंधी कई बातों का विचार विशेष है।

सूर्य-सिद्धांत के आधुनिक रूप में १४ 'अधिकार' अर्थात् अध्याय हैं। पहले अध्याय में ग्रहों की मध्य गतियाँ हैं। यह समझने के लिए कि मध्यगति क्या है स्मरण रखना चाहिए कि सूर्य, चंद्रमा तथा बुध आदि ग्रह समान कोणीय वेग से नहीं चलते परंतु गणना की सुविधा के लिए पहले यह मान लिया जाता है कि वे समान वेग से चलते हैं। इस कल्पना के अनुसार गणना करने से प्राप्त *स्थितियाँ* मध्यम या मध्यक स्थितियाँ कहलाती हैं। सूर्य-सिद्धांत के प्रथम अध्याय में इनकी ही गणना बतायी गयी है। इसी से पहला अध्याय मध्यमाधिकार कहा जाता है।

सूर्य-सिद्धांत का लेखक

ईश्वर वन्दना के पश्चात आठ श्लोकों में यह भी बताया गया है कि पुस्तक का लेखक कौन है। वे इस प्रकार हैं

अल्पावशिष्टे तु कृते मयनामा महासुरः ।
रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ॥२॥
वेदाङ्गमग्र्यमखिलं ज्योतिषां गतिकारणम् ।
आराधयन् विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥३॥
तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने ।
ग्रहाणां चरितं प्रादान् मयाय सविता स्वयम् ॥४॥
विदितस्ते मया भावस्तोषितस्तपसा ह्यहम् ।
दद्यां कालाश्रयं ज्ञानं ग्रहाणां चरितं महत् ॥५॥
न मे तेजःसहः कश्चिदाख्यातुं नास्ति मे क्षणः ।
मदंशः पुरुषोऽयं ते निःशेषं कथयिष्यति ॥६॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः समादिश्यांशमात्मनः ।
स पुमान् मयमाहेदं प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम् ॥७॥
शृणुष्वैकमनाः पूर्वं यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम् ।
युगे युगे महर्षीणां स्वयमेव विवस्वता ॥८॥
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः ।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥९॥

अर्थ —सत्युग के कुछ शेष रहने पर मय नामक महा असुर ने सब वेदांगों में श्रेष्ठ और ज्योतिष पिंडों की गतियों का कारण बताने वाले परम पवित्र और रहस्यमय उत्तम ज्ञान को जानने की इच्छा से कठिन तप करके सूर्य भगवान की आराधना की ॥२–३॥

उसकी तपस्या से संतुष्ट और प्रसन्न होकर सूर्य भगवान ने स्वयं वर चाहने वाले मय को ग्रहों के चरित अर्थात् ज्योतिषशास्त्र का उपदेश दिया ॥४॥

भगवान सूर्य ने कहा कि तेरा भाव मुझे विदित हो गया है और मैं तेरे तप से बहुत संतुष्ट हूँ। मैं तुझे ग्रहों के महान चरित का उपदेश करता हूँ जिससे समय का ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है। परन्तु मेरा तेज कोई सह नहीं सकता और उपदेश देने

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के विज्ञान-भाष्य से।

सूर्य-सिद्धांत का वक्ता

ईश्वर वन्दना के पश्चात् आठ श्लोकों में यह भी बताया गया है कि पुस्तक का वक्ता कौन है। वे इस प्रकार हैं¹—

अल्पावशिष्टे तु कृते मयनामा महासुरः।
रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ॥२॥
वेदाङ्गमग्र्यमखिलं ज्योतिषां गतिकारणम्।
आराधयन् विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥३॥
तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने।
ग्रहाणां चरितं प्रादात् मयाय सविता स्वयम् ॥४॥
विदितस्ते मया भावस्तोषितस्तपसा ह्यहम्।
दद्यां कालाश्रयं ज्ञानं ग्रहाणां चरितं महत् ॥५॥
न मे तेजःसहः कश्चिदाख्यातुं नास्ति मे क्षणः।
मदंशः पुरुषोऽयं ते निःशेषं कथयिष्यति ॥६॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः समादिश्यांशमात्मनः।
स पुमान् मयमाहेदं प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम् ॥७॥
शृणुष्वैकमनाः पूर्वं यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम्।
युगे युगे महर्षीणां स्वयमेव विवस्वता ॥८॥
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥९॥

अर्थ—सत्युग के कुछ भाग शेष रह जाने पर मय नामक महा असुर ने सब वेदांगों में श्रेष्ठ, सारे ज्योतिष पिंडों की गतियों का कारण बताने वाले, परम पवित्र और रहस्यमय उत्तम ज्ञान को जानने की इच्छा से कठिन तप करके सूर्य भगवान की आराधना की ॥२-३॥

उसकी तपस्या से संतुष्ट और प्रसन्न होकर सूर्य भगवान ने स्वयं वर चाहने वाले मय को ग्रहों के चरित्र अर्थात् ज्योतिषशास्त्र का उपदेश दिया ॥४॥

भगवान सूर्य ने कहा कि तेरा भाव मुझे विदित हो गया है और तेरे तप से मैं संतुष्ट हूँ। मैं तुझे ग्रहों के महान चरित्र का उपदेश करता हूँ जिससे समय का ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है। परन्तु मेरा तेज कोई सह नहीं सकता और उपदेश कर

¹ महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के विज्ञान भाष्य से।

के लिए मुझे समय भी नहीं है। इसलिए यह पुरुष जो मेरा अंश है तुम्हें भली भाँति उपदेश देगा ॥५-६॥

इतना कहकर सूर्य भगवान अन्तर्धान हो गये और सूर्यांश पुरुष ने आदेशानुसार, मय से जो विनीत भाव से झुके हुए और हाथ जोड़े हुए थे कहा—एकाग्रचित्त होकर यह उत्तम ज्ञान सुनो जिसे भगवान सूर्य ने स्वयं समय-समय पर महर्षियों से कहा था। भगवान सूर्य ने पहले जिस शास्त्र का उपदेश दिया था वही आदि शास्त्र यह है युगों के परिवर्तन से केवल काल में कुछ भेद पड़ गया है ॥७-९॥

इस प्रकार स्वयं सूर्य-सिद्धांत के अनुसार यह पुस्तक देव-वाणी है परन्तु अपना नाम गुप्त रख कर पुस्तक को अलौकिक बताना प्राचीन लेखकों की एक साधारण रीति थी। ऐसी पुस्तकों का सम्मान कुछ अधिक आदर होता था।

जिस प्रकार १८ पुराण थे उसी प्रकार १८ ज्योतिष सिद्धांतों का भी उल्लेख मिलता है जिनमें से अधिकांश के नाम प्राचीन ऋषियों के नाम पर पड़े हैं। सुधाकर द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'गणक-तरंगिणी' में इस संबंध में निम्न श्लोक दिया है

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरंगिराः॥
लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः॥

चूँकि इसमें यवन सिद्धांत का भी नाम आता है इसलिए यह श्लोक बहुत प्राचीन न होगा। तो भी इन अठारह सिद्धांतों में से अधिकांश लुप्त हो गये हैं।

सूर्य-सिद्धांत के प्रथम अध्याय के ग्यारहवें और बारहवें श्लोक में समय की एकाइयाँ दी गयी हैं जिनकी सूची टीकाकारों ने कुछ और बढ़ा दी है। ये एकाइयाँ निम्नलिखित हैं

१० गुर्वक्षर = १ प्राण
६ प्राण = १ विनाडी
६० विनाडी = १ नाडी
६० नाडी = १ दिन।

नाडी को नाडिका और घटिका भी कहते हैं। सिद्धांत के सब एकाइयाँ तो बन गयीं परन्तु पता नहीं कि वे ठीक-ठीक कैसे नापी जा सकती थीं। उस समय में जब नाडिका छेद वाले बरतन के डूबने से नापी जाती थी विनाडी तक समय को ठीक नापना कठिन ही रहा होगा।

इसके बाद मास और वर्ष की परिभाषाएँ हैं। एक वर्ष को देवताओं का एक दिन (दिन+रात) बताया गया है। देवताओं के ३६ दिनों को देवताओं का एक वर्ष बताया गया है। बारह हजार ऐसे वर्षों का एक चतुर्युग कहा गया है। ७१ चतुर्युगों का एक मन्वन्तर होता है जिसके अंत में सतयुग के बराबर की सन्ध्या होती है। चौदह मन्वन्तरों का एक कल्प होता है। प्रारंभिक सन्ध्या को लेकर कल्प में इस प्रकार ४ ३२, वर्ष होते हैं।

बताया गया है कि एक कल्प को ब्रह्मा का एक दिन कहते हैं। ऐसे ३६ दिनों को ब्रह्मा का एक वर्ष कहते हैं और ब्रह्मा की आयु में इस प्रकार के १ वर्ष होते हैं। ब्रह्मा की आयु को "पर" भी कहते हैं। इसके आधे को परार्ध कहते हैं।

समय की इकाइयाँ

सूर्य-सिद्धान्त में समय का विभाजन वही है जो पुराणों में पाया जाता है परन्तु यहाँ केवल ब्रह्मा की आयु पर ही इकाइयाँ समाप्त कर दी गयी हैं। विष्णु पुराण में इससे भी बड़ी इकाइयाँ हैं। वहाँ दो परार्धों को विष्णु का एक दिन कहा गया है और उसके आगे भी इकाइयाँ बतायी गयी हैं।

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्मा की आयु ३११ ० ४ लाख अरब वर्षों की होती है।

अवश्य ही समय की ये सभी इकाइयाँ काम में नहीं आती थीं। बहुत छोटी और बहुत बड़ी इकाइयाँ केवल आरम्भ में ही इकाइयों की सूची में आयी हैं। अवश्य ही इनसे गणित में पटुता प्रदर्शित होती है न कि समय को क्रियात्मक रूप से नाप सकने में चातुर्य।

इकाइयों को बताने के बाद यह बताया गया है कि वर्तमान समय कौन से मन्वन्तर का कौन-सा युग है। सृष्टि में कितना समय लगा यह भी बताया गया है। फिर ग्रहों की गति बतायी गयी है। यह कल्पना की गयी है कि सब ग्रहों का अनुरैखिक वेग अर्थात् योजन प्रति घड़ी में (अथवा मील प्रति घंटा में) वेग एक ही है। आधुनिक ज्योतिष के अनुसार यह कल्पना अशुद्ध है। उसके अनुसार ग्रह का अनुरैखिक वेग दूरी के वर्गमूल के व्युत्क्रम के अनुसार रहता है।

इसके पश्चात् कोणीय नाप की इकाइयाँ बतायी गयी हैं —

६ विकला = १ कला
६ कला = १ भाग (जिसे अंश भी कहते हैं)
३ भाग = १ राशि
१२ राशि = १ भगण (अर्थात् एक पूरा चक्कर)।

ग्रहों की गतियाँ

अब ग्रहों की कोणीय मध्यक गतियाँ बतायी गयी हैं। उन्हें बताने के लिए यह बताया गया है कि एक महायुग (= $\frac{1}{1000}$ कल्प) में सूर्य, बुध आदि कितने चक्कर लगाते हैं। उदाहरणतः बताया गया है कि सूर्य ४३ लाख २० हजार चक्कर लगाता है। यह वस्तुतः एक युग में वर्षों की संख्या है। मंगल २२ लाख ९६ हजार ८ सौ बत्तीस चक्कर लगाता है, इत्यादि।

पाश्चात्य देशों में ग्रहों की स्थितियाँ किसी निकट समय के विशेष क्षण पर बताकर उनकी दैनिक गति दे दी जाती है जिससे उनकी स्थितियाँ अन्य क्षणों पर गणना द्वारा निकाली जा सकती हैं। परन्तु भारतीय ज्योतिष में इस पद्धति पर बने ग्रन्थों को करणग्रन्थ कहते थे और उनका आदर कम होता था। विशेष आदर सिद्धान्त-ग्रन्थों का होता था। ऐसे ग्रन्थों में मान लिया जाता था कि कल्प के प्रारम्भ में सूर्य, चन्द्रमा तथा सब ग्रह* आकाश के एक बिंदु पर थे और चन्द्रमा तथा ग्रहों की कक्षाओं के पात और सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों के शीघ्रोच्च† भी वहीं थे। तब प्रत्येक युग में उनके भगणों (चक्करों) की संख्याएँ बतायी जाती थीं जो स्वभावतः ऐसी होती थीं कि ग्रन्थकार के समय में आकाशीय पिंडों की स्थितियाँ ठीक निकलें और उनकी दैनिक गतियाँ भी यथासम्भव ठीक निकलें।

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार सत्युग के आरम्भ में सब ग्रह मेष राशि के आदि बिंदु पर थे, केवल उनके उच्च और पात उस स्थान पर न थे। गणना से देखा जा सकता है कि कलियुग के आरम्भ में भी यही बात सच थी। सर्वसम्मति से यह आरम्भ ३१०२ ई० पू० की उज्जयिनी की उस अर्धरात्रि को हुआ था जो १७ फरवरी के अन्त और १८ फरवरी के आरम्भ में पड़ती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वस्तुतः उक्त दिनांक पर सब ग्रहादि साथ थे। बरजेस ने विलकीन्स से गणना करायी जो अमरीका के नॉटिकल अलमनक कार्यालय में उस समय अध्यक्ष थे। बेंटली और बर्जेस ने भी स्वतंत्र रूप से गणना की। इनसे

* प्राचीन ग्रन्थों में सूर्य और चन्द्रमा को भी ग्रह मानते थे। जब सूर्य और चंद्रमा को छोड़ अन्य ग्रहों का ही उल्लेख करने की आवश्यकता पड़ती थी तो उनको तारा-ग्रह कहते थे। हम इस पुस्तक में तारा-ग्रहों को केवल ग्रह कहेंगे और सूर्य तथा चन्द्रमा को ग्रह न मानेंगे।

† आगे पृष्ठ ११४ पर ये शब्द समझाये गये हैं।

दिन पहले के लिए ग्रहादि की स्थितियाँ बताने में उनकी मानी हुई गतियों की अवश्य भावी त्रुटियों का प्रत्यक्षतः बड़ा प्रभाव पड़ता है। आधुनिक ज्योतिष में अभी इतनी परिपक्वता नहीं है कि निश्चयात्मक रूप से कहा जा सके कि कलियुग के आरंभ में ग्रहादि के स्थान ठीक-ठीक क्या थे। इसी से तिलक, बेली और बेंटली के उत्तरों में अंतर आया परंतु इतना निश्चित है कि कलियुग के आरंभ में सब ग्रह और सूर्य तथा चंद्रमा एक स्थान पर नहीं थे यद्यपि वे एक दूसरे से बहुत दूर भी नहीं थे। जान पड़ता है कि सूर्य-सिद्धांत के प्रणेता ने अथवा किसी अन्य सिद्धांतकार ने अपने समय में ग्रहों की स्थितियों और उनकी दैनिक गतियों के आधार पर गणना की होगी और तब पता लगा होगा कि कब ग्रहादि लगभग एक साथ थे और उसी समय को कलियुग का आरंभ माना होगा। यदि कलियुग के आरंभ में सचमुच ग्रहादि एक साथ थे और लोगों ने उन्हें देखा था और सूर्य-सिद्धांत के समय तक ऐसी लोक-कथा चली आ रही थी तो अवश्य वेदों में या वेदांग-ज्योतिष या महाभारत या पुराणों में इस बात की चर्चा होती। बरजेस के अनुसार ग्रहादि की स्थितियाँ स्थूल रूप से कलियुग के आरंभ में यों थीं —

	भोगांश
सूर्य	१ २
बुध	२६६
शुक्र	११५
मंगल	२९
बृहस्पति	३१८
शनि	२८२
चंद्रमा	१ ८

बीज-संस्कार

सूर्य-सिद्धांत के आधार पर अब भी कुछ पंचांगों की गणना होती है परंतु दैनिक गतियों में त्रुटि रहने के कारण अब ग्रहों की स्थितियों में कौ-दस अंश (डिगरी) का अंतर पड़ जाता है। प्राचीन सूर्य-सिद्धांत के स्थिरांक और भी अशुद्ध थे। इसलिए उस ग्रंथ के बनने के कुछ ही सौ वर्ष बाद उसके आधार पर गणना और वेध में अंतर पड़ने लगा होगा। इसीलिए पीछे के ग्रंथकारों ने सूर्य आदि आकाशीय पिंडों के लिए बीज-संस्कार बनाया, अर्थात् युग में सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों के भगणों की संख्या में परिवर्तन कर दिया, दूसरे शब्दों में उनकी दैनिक गति बदल दी।

गणित के अनुसार जो सिद्ध हो उसी को प्रमाण मानकर जो भगण नि
से ही माने जायें तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि अत्यंत ज्ञानी पुरुष भी क
रीति के जानने में समर्थ हो सकता है परंतु (केवल) रीति से ग्रहों के भ
की संख्या नहीं निकल सकती। [उसे वेध की आवश्यकता पड़ेगी और
से भी वह पूर्णतया सफल नहीं हो सकता।] कारण यह है कि मनुष्य
आयु बहुत थोड़ी होती है और उपपत्ति जानने के लिए ग्रह को प्रति दिन
करना होता है जब तक कि भगण (कई बार) पूरा न हो जाय और
का एक भगण तो ३ वर्षों में पूरा होता है मंदोच्चों के भगण अनेक क
भियों में पूरे होते हैं। इसलिए यह कार्य पुरुष-साध्य नहीं है। इसलि
बुद्धिमान गणक किसी ऐसे आगम को मानकर जो उस समय ठीक समझा जा
हो और जिसकी गणना की कुशलता प्रतिष्ठाप्राप्त गणकों ने स्वीकार कर लि
हो अपनी गणित तथा गोल संबंधी ग्रहों को दिखाने के लिए, तथा भ्रमवश
कुछ अनर्थकारी दोष आ गये हैं उनको दूर करने के लिए, दूसरे ग्रंथ बनाते हैं

भास्कराचार्य का जन्म सन १११४ ई में हुआ था। ऊपर के उद्धरण
स्पष्ट है कि भास्कराचार्य सूर्य चंद्रमा बुध शुक्र आदि का भगणकाल वेध से ठीक-ठी
निकालना असंभव समझते थे। भारतीय ज्योतिषियों में से सबसे अधिक विद्
और विशद सिद्धांत भास्कराचार्य का ही है। यदि वे इस काम को असंभव समझ
थ तो उनके कई पीढ़ी पहले वाले ज्योतिषी भी स्वयं भगण-संख्याएँ न निकाल स
होंगे। इससे कुछ लोग अनुमान करते हैं कि ये संख्याएँ प्रथम बार विदेश से आय
और तब विविध ज्योतिषियों ने आवश्यकतानुसार उनमें सुधार कर लिया। भग
अशुद्ध होने से भी संकेत मिलता है कि सूर्य-सिद्धांत का अधिकांश विदेश से आया। पर
यह भी विचारणीय है कि सुधार करने के बाद कुछ बातों में सूर्य-सिद्धांत के भुजांक
से निकाला फल टॉलमी के भुजांकों से निकाले गये फल से अधिक शुद्ध होता था।

अहर्गण

सूर्य-सिद्धांत के आगामी तीन श्लोकों में बताया गया है कि सृष्टि के आरंभ से
किसी इष्ट समय तक सावन दिनों की संख्या कैसे जानी जा सकती है। इन दिन

सूर्य-सिद्धांत का विज्ञान-भाष्य, पृ ५१।

सावन दिन साधारण दिन को कहते थे जिसे सूर्योदय से आगामी सूर्योदय तक
नापा जाता था। दिव्य दिन नाक्षत्र दिन आदि से स्पष्ट करने के लिए ही इसे
सावन दिन कहते थे।

को सम्मिलित रूप से युगण या दिनराशि कहा गया है। पीछे इसी को अन्य सिद्धांतकार अहर्गण कहने लगे। तीनों शब्दों का अर्थ एक ही है।

अहर्गण की गणना में बड़ी-बड़ी सन्याएँ आती हैं। उदाहरणतः १९७९ विक्रमीय की बसंत पंचमी (माघ सुदी ५) तक का अहर्गण

७ १४४ ४१ ११९ ३

है[1]। इसी से करण ग्रंथों की सहायता से गणना करने में सुगमता रहती है। करण ग्रंथों में कल्प की आदि से या कलियुग के आरंभ से गणना करने के बदले किसी निकट दिनांक से ही गणना की जाती है। परन्तु सिद्धांत का ही स्थान विद्वानों में अधिक ऊँचा रहा है।

फिर, इष्टकाल कौन-सा वार है और वर्षपति तथा मासपति कौन-कौन हैं इसे जानने की रीति बतायी गयी है। मासपति और वर्षपति सूर्य चंद्रमा मंगल आदि ग्रह ही होते हैं और साधारण काम के लिए ये महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

इसके बाद बताया गया है कि किसी विशेष ग्रह की मध्यम स्थिति कैसे जानी जा सकती है। कलियुग के आरंभ में इनका स्थान ज्ञात है ही। युग में भगणों की संख्या भी ज्ञात है। इसलिए साधारण अनुपात से ग्रहों की स्थिति ज्ञात हो जाती है। इसी प्रकार पात और मंदोच्च की भी स्थितियों के लिए नियम बताए गये हैं।

अध्याय के अंत में यह है

विस्तरेणैतदुदितं संक्षेपाद्व्यावहारिकम्।
मध्यमानयनं कार्यं ग्रहाणामिष्टतो युगात् ॥

अर्थ—ग्रहों के मध्यम स्थान जानने की रीति अब तक विस्तार के साथ कही गयी है परन्तु व्यवहार के लिए इष्ट युग से ही यह काम संक्षेप में करना चाहिए।

इससे स्पष्ट है कि सूर्य-सिद्धांत का रचयिता भी यह अनुभव कर रहा था कि सृष्टि के आरंभ से गणना करना निष्प्रयोजन बहुत-सा कार्य बढ़ा देना है।

पृथ्वी की नाप

इसके बाद पृथ्वी की नाप बताई गयी है (८ योजन) फिर पृथ्वी की परिधि। हमी जानते हैं कि व्यास को ३.१४१६ से गुणा करने से परिधि निकलती है। सूर्य सिद्धांत में $\sqrt{(1\ )}$ अर्थात् ३.१६२ से गुणा करने को कहा गया है। इससे अधिक मान निकलेगा जिसमें लगभग ३ प्रतिशत अर्थात् एक प्रतिशत से कम की

[1] सिद्धांत-भाष्य, पृ. ५७।
[2] रवि १

अशुद्धि रहेगी। विषुवत् के समानान्तर किसी विशेष स्थान से होकर जाने वाले लघुवृत्त की परिधि जानने का सूत्र भी दिया गया है जो पूर्णतया शुद्ध है।

मध्य याम्योत्तर रेखा वह बतायी गयी है जो अवन्ती (उज्जैन) से होकर जाती है। इसी रेखा पर रोहीतक (सम्भवतः वर्तमान रोहतक) है यह भी बताया गया है। आगे के तीन श्लोकों में बताया गया है कि किसी स्थान का देशान्तर कैसे नापा जा सकता है। वर्तमान समय में रेडियो-संकेतों से देशान्तर जाना जाता है। इसके पहले तार-संकेतों से जाना जाता था। सूर्य-सिद्धान्त में सर्व चन्द्र-ग्रहण के आरम्भ या अन्त को देखकर देशान्तर नापने का आदेश है।

मध्य याम्योत्तर से पूर्व या पश्चिम वाले स्थानों में दिन का आरम्भ कब से मानना चाहिए यह बता कर नियम दिया गया है जिससे सूर्य चन्द्र मंगल आदि का मध्यक स्थान मध्यरात्रि से इच्छानुसार घड़ी आगे या पीछे जाना जा सकता है। इस प्रकार इष्ट समय पर इन आकाशीय पिंडों का भोगांश जानने का सम्पूर्ण और ब्योरेवार नियम है। इसके बाद के श्लोकों में इसकी गणना बतायी गयी है कि चन्द्रमा मंगल आदि रविमार्ग से कितना उत्तर या दक्षिण हटे रहते हैं दूसरे शब्दों में उनका शर क्या है।

स्पष्टाधिकार

प्रथम अध्याय का नाम है मध्यमाधिकार, क्योंकि इसमें सूर्य आदि की मध्यक स्थितियाँ हैं अर्थात् वे स्थितियाँ जहाँ सूर्य आदि दिखायी पड़ते यदि वे सदा समान वेग से चलते और औसतन उतने ही काल में एक चक्कर लगाते जितने में वे वस्तुतः लगाते हैं। द्वितीय अध्याय का नाम स्पष्टाधिकार है। इसमें बताया गया है कि सूर्य आदि की मध्यक स्थितियों में क्या-क्या संशोधन करना चाहिए जिसमें संशोधित स्थितियाँ वही हो जायें जो आकाश में वस्तुतः रहती हैं।

पहले तो एक व्यापक सिद्धान्त दिया गया है कि सूर्य आदि क्यों मध्यक वेग से कभी शीघ्रतर चलते हैं कभी मन्दतर। इस सिद्धान्त का सारांश यह है कि अंतरिक्ष में वायु-धाराएँ हैं जो उनको नियमित रूप से इधर या उधर खींचती रहती हैं। फिर शीघ्रतर, शीघ्र सम मन्द मन्दतर वेग बताये गये हैं।

तेरह श्लोकों में ज्या-सारणी बतायी गयी है जो पर्याप्त शुद्ध है। बर्जेस ने बताया है कि ये ज्याएँ पहले कैसे निकाली गयी होंगी और फिर उनकी शुद्धि की जाँच करके उनकी गणना के लिए अधिक सुगम नियम कैसे बने होंगे[1]। इन-

[1] कलकत्ता वाला संस्करण पृष्ठ ११।

अन्य साक्ष्य की जाँच से बर्जेस का विश्वास है कि ज्या की सारणी अवश्य भारत में बनी होगी।

ज्या की सारणी बनाने में वृत्त की परिधि और व्यास की निष्पत्ति की आवश्यकता पड़ती है और यहाँ √(१) के बदले प्रायः पूर्णतया शुद्ध मान लिया गया है। इससे स्पष्ट है कि यह मान सिद्धांतकारों को ज्ञात था, केवल सुविधा के विचार से स्थूल गणना के लिए, उसका मान √(१०) भी ले लिया जाता था।
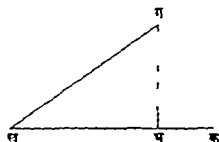
यदि क ख ग कोई कोण है और बिंदु ग से भुजा ख क पर लंब ग घ गिराया गया है तो गघ—खग के मान को कोण कखग की ज्या कहते हैं। यह आधुनिक परिभाषा है। सूर्य-सिद्धांत में खग को ३४३८ मान लिया गया है और तब बताया गया है कि विविध कोणों के लिए गघ का मान कितना होता है और गघ के मान को ज्या कहा गया है। एक समकोण को २४ बराबर भागों में बाँट कर एक भाग, दो भाग, तीन भाग इत्यादि की ज्याएँ बतायी गयी हैं। ज्या की आवश्यकता कई गणनाओं में पड़ती है।

आगामी श्लोक में बताया गया है कि सूर्य की परम क्रांति अर्थात् महत्तम क्रांति कितनी होती है, वस्तुतः परम क्रांति की ज्या बतायी गयी है। फिर उसी श्लोक में यह भी बताया गया है कि किसी अन्य अवस्था में क्रांति की गणना कैसे की जा सकती है।

श्लोक २९ में बताया गया है कि मंदोच्च कर्म केंद्र पर भुजज्या और कोटिज्या की गणना कैसे करनी चाहिए। यहाँ केंद्र शब्द संस्कृत नहीं है क्योंकि इसके पहले की पुस्तकों में इसका प्रयोग नहीं होता था। बर्जेस ने लिखा है कि केंद्र ग्रीक शब्द Κεντρον (केन्त्रन) है और ग्रह के स्पष्ट स्थान निकालने की नींव में ही इस शब्द के आने में यह रहस्य है।

सारणी से ३ अंश या इसके दुगुने, तिगुने आदि की ही ज्या जानी जा सकती है, अब बताया गया है कि अन्य कोणों की ज्या किस प्रकार जानी जा सकती है। जो नियम दिया गया है वह सरल अंतर्वेशन का नियम है।

मंद-परिधि

चौथी सदी और उसके बाद वाले ग्रन्थों में बताया गया है कि सूर्य, चंद्रमा, मंगल आदि का स्पष्ट स्थान कैसे ज्ञात किया जा सकता है। इसके समझने के लिए साथ के चित्र पर विचार करें। गणना के लिए कल्पना की जाती थी कि पिंड एक छोटे से वृत्त पर समान वेग से चलता है और उस वृत्त का केंद्र समान वेग से दूसरे वृत्त पर चलता है। छोटे वृत्त को सूर्य-सिद्धान्त में मंद-परिधि कहा गया है। बड़ा वृत्त वही है जिस पर पिंड की मध्यक स्थिति रहती है। वस्तुतः मंद-परिधि का केंद्र पिंड की मध्यक स्थिति है।

उदाहरण के लिए सूर्य पर विचार करें। चित्र में पृ पृथ्वी है। मध्यक सूर्य[1] वृत्त म$_2$ म म$_1$ पर चलता है। जब मध्यक सूर्य बिंदु म पर रहता है तब वास्तविक सूर्य स पर रहता है। जब तक मध्यक सूर्य म$_2$ से म पर आता है तब तक
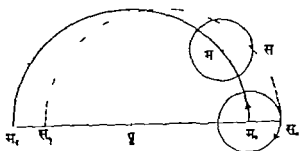
वास्तविक सूर्य बिंदु स पर पहुँचता है और जब मध्यक सूर्य म$_1$ पर पहुँचता है तब वास्तविक सूर्य बिंदु स$_1$ पर पहुँचता है। इस प्रकार वास्तविक सूर्य कक्षा स$_2$ स स$_1$ पर चलता है। गणित से सिद्ध किया जा सकता है कि कक्षा स$_2$ स स$_1$ एक वृत्त है जो मध्यक सूर्य की कक्षा के ठीक बराबर है परन्तु पृथ्वी कक्षा स$_2$ स स$_1$ के केंद्र पर नहीं है। परिणाम यह होता है कि गणना के अनुसार सूर्य की दूरी जो निकलती है वह समय के अनुसार कभी कम कभी अधिक रहती है और इसी प्रकार सूर्य की दैनिक कोणीय गति भी न्यूनाधिक निकलती है और ये दोनों गणना-प्राप्त मान वास्तविक मान के प्रायः बराबर होते हैं।

[1] अर्थात् सूर्य की मध्यक स्थिति, अथवा वह कल्पित बिंदु जो वास्तविक सूर्य के औसत कोणीय वेग से और औसत दूरी पर चलता है।

मंद-परिधि में सूर्य के एक चक्कर लगाने का समय ठीक उतना ही माना जाता है जितने में मध्यम सूर्य अपनी कक्षा में एक चक्कर लगाता है परंतु चंद्रमा के लिए दोनों के चक्कर लगाने का समय एक नहीं माना जाता। मंगल आदि ग्रहों में भी सूर्य की ही तरह मंद-परिधि में वास्तविक ग्रह के चक्कर लगाने का समय और मध्यम ग्रह के चक्कर लगाने का समय एक माना जाता है परंतु इन ग्रहों के लिए और भी काम करना पड़ता है जो कुछ कठिन होने के कारण यहाँ नहीं समझाया जायगा।

टालमी से तुलना

जब सूर्य और चंद्रमा की स्पष्ट स्थिति निकालने की रीति की तुलना टालमी की रीति से की जाती है तो कई बातों में विभिन्नता दिखायी पड़ती है। चंद्रमा का स्थान टालमी के अनुसार गणना करने पर कुछ अधिक अच्छा निकलता है। वर्तमान गणित से तुलना करने पर सूर्य-सिद्धांत की रीति बहुत स्थूल है विशेष कर चंद्रमा की स्पष्ट स्थिति जानने की रीति। वर्तमान रीति से चंद्रमा की स्पष्ट स्थिति निकालने के लिए कई सौ संशोधन करने पड़ते हैं। ब्रिटिश तथा अन्य पाश्चात्य नाविक पंचांगों के लिए ब्राउन की चंद्र-सारणियों से काम लिया जाता है जो दो बड़े आकार के मोटे खंडों में छपा है एवं चाँद की चार स्थितियों की गणना में कई व्यक्ति पाँच-छ महीने तक गणना करते हैं गणक-मशीनों की सहायता लेते हैं और वेध प्राप्त बीज संस्कार करते हैं। इतना करने पर भी सूर्य-ग्रहण की गणना में वास्तविकता से तुलना करने पर कुछ सेकंड का अंतर रह ही जाता है। इसलिए कोई आश्चर्य न होना चाहिए कि सूर्य-सिद्धांत के अनुसार गणना करने पर घंटे या घंटे का अंतर पड़ जाता है। सूर्य-ग्रहण की गणना के लिए सूर्य और चंद्रमा की स्पष्ट स्थितियाँ सूक्ष्मता से ज्ञात रहनी चाहिए। सूर्य का स्थान तो प्राय ठीक ही ज्ञात रहता है। चंद्रमा की स्थिति में कुछ अनिश्चितता आधुनिक गणित में भी रह जाती है। इसी से सूर्य-ग्रहण के लिए गणना-प्राप्त समय में कुछ त्रुटि रह जाती है।

सूर्य-सिद्धांत में एक अन्य सूक्ष्मता भी लायी गयी है। मंद-परिधि को सब स्थितियों में एक ही व्यास का नहीं माना गया है। माना गया है कि इसका व्यास एक ओर अधिक रहता है और जैसे-जैसे इसका केंद्र मध्यम ग्रह की कक्षा की दूसरी ओर पहुँचता है वैसे-वैसे इसका व्यास घट कर न्यूनतम हो जाता है।

देखो गोरखप्रसाद: चंद्र-सारणी (काशी-नागरीप्रचारिणी सभा)।

ग्रहों की स्थितियों की गणना बताने के बाद इसकी गणना बतायी गयी है कि किसी दिन कौन-सी तिथि है यह कैसे जाना जाय। फिर करणों की गणना बतायी गयी है।[1]

त्रिप्रश्नाधिकार

त्रिप्रश्नाधिकार में तीन विषयों पर विचार किया गया है : दिशा, देश और काल (समय)। पहले तो शंकु स्थापित करने के लिए आदेश है :

जल के द्वारा शोध कर समतल किये हुए पत्थर के तल पर अथवा वज्रलेप (सुर्खी चूने आदि के मिश्रण) से बने हुए समतल चबूतरे पर शंकु के अनुसार इष्ट अंगुल (अर्थात् इच्छानुसार नाप) के व्यासार्ध का एक वृत्त खींचो। इस वृत्त के केंद्र में बारह अंगुल का एक शंकु लम्ब रूप में स्थापित करो। इसकी छाया की नोक मध्याह्न के पहले और पीछे पूर्वोक्त वृत्त को जहाँ-जहाँ स्पर्श करे वहाँ वहाँ वृत्त पर बिंदु बना दो इन दो बिंदुओं को पूर्वाह्न और अपराह्न बिंदु कहते हैं। फिर इन दो बिंदुओं के बीच में तिमि द्वारा (अर्थात् मछली की आकृति की ज्यामितीय रचना
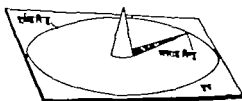
शंकु।
शंकु की पूर्वाह्न और अपराह्न छाया देख कर पूर्व-पश्चिम रेखा खींची जाती थी।
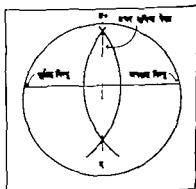
उत्तर-दक्षिण दिशा जानने की रीति।

[1] करण योग आदि क्या है यह इस पुस्तक के अंतिम अध्याय में बताया गया है।

करके[1]) उत्तर-दक्षिण रेखा खींचो। उत्तर-दक्षिण दिशाओं के बीच में तिमि द्वारा पूरब-पश्चिम रेखा खींचो।

यहाँ शंकु की सब नाप नहीं बतायी गयी है।

भारतीय ज्योतिष ग्रंथों में कहीं भी यंत्रों का ब्योरेवार वर्णन नहीं है, परंतु जान पड़ता है कि शंकु उस समय एक महत्वपूर्ण यंत्र माना जाता था। इसका वर्णन सूर्य-सिद्धांत में है ही। अन्यत्र भी इसका वर्णन मिलता है।

श्लोक ५ से ८ तक में छाया संबंधी परिभाषायें तथा आदेश हैं।

श्लोक ९ और १ में एक अत्यंत महत्वपूर्ण बात बतायी गयी है। कहा गया है

एक युग में भगण चक्र ६ बार पूर्व की ओर दोलक की तरह आन्दोलन करता है। इस ६ को इष्ट अहर्गण से गुणा करके महायुगीय सावन दिनों की संख्या से भाग देने पर जो आये उसका भुज बना कर युग से ३ को गुणा करके १ से भाग दो। ऐसा करने से जो कुछ आये वही अयनांश कहलाता है। ग्रहों (अर्थात सूर्य चंद्रमा मंगल आदि) के स्थानों में इसका संस्कार देकर (जोड़ कर) ग्रहों की क्रांति छाया चरदल इत्यादि जानना चाहिए।

अयन

इस श्लोक का महत्व यह है कि इसमें अयन की गणना बतायी गयी है। अयन को समझने के लिए ध्यान दें कि आकाश में तारे, ग्रह चंद्रमा सूर्य सब पूर्व क्षितिज पर उदित होते हैं और मोटे हिसाब से २४ घंटे में एक चक्कर लगाकर दूसरे दिन फिर पूर्व क्षितिज पर पहुँच जाते हैं। आकाशीय पिंडों की यह दैनिक गति है। यदि आकाश को गोले से निरूपित किया जाय और इस
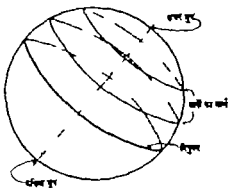
[1] यह वही रचना है जिससे दी हुई सरल रेखा पर लंब-अर्धक खड़ा किया जाता है।

पर तारों के दैनिक मार्ग अंकित किये जायें तो वे सब समानान्तर वृत्त होंगे। इस गोले को हम खगोल कहेंगे। खगोल के केंद्र से जो रेखा पूर्वोक्त सब वृत्तों के समतल पर लम्ब खींची जा सकती है वही खगोल का अक्ष है। अक्ष खगोल को दो बिंदुओं में काटता है जिनमें से एक उत्तर ध्रुव है और दूसरा दक्षिण ध्रुव। इन दोनों ध्रुवों के ठीक मध्य में रहने वाला खगोल पर खींचा गया वृत्त विषुवत कहलाता है।

हम खगोल पर सूर्य की स्थिति भी अंकित कर सकते हैं। यदि हम शंकु की छाया देखें तो हमें सूर्य की दिशा और उन्नतांश (ऊँचाई) ज्ञात हो जाती है और इससे खगोल पर सूर्य की स्थिति का पता चल जाता है। यदि हम प्रतिदिन मध्याह्न पर सूर्य की स्थिति ज्ञात करके उसे अपने खगोल पर अंकित करें तो एक वर्ष में ज्ञात होगा कि सूर्य एक वृत्त पर चलता है जिसे हम रविमार्ग कहेंगे। हम देखेंगे कि रविमार्ग विषुवत को दो व्यासतः सम्मुख (अर्थात आमने-सामने के) बिन्दुओं में काटता है। इनमें एक वसंत विषुव बिंदु (संक्षेपतः वसंत विषुव) है और दूसरा शरद विषुव बिंदु।
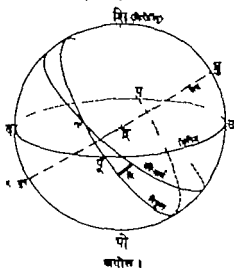
खगोल।
रविमार्ग विषुवत को लगभग २३½ अंश के कोण पर काटता है।

यदि वसंत विषुव बिंदु का स्थान समय-समय पर खगोल पर अंकित किया जाय तो पता चलेगा कि वसंत विषुव (और इसलिए शरद विषुव भी) तारों के सापेक्ष धीरे-धीरे खिसकता रहता है। इसी को अयन कहते हैं। यह गति बड़ी ही धीमी है। एक चक्कर लगाने में विषुव को लगभग २१ वर्ष लगता है।

अब गति-विज्ञान के नियमों से सिद्ध कर दिया गया है कि विषुव बराबर ही एक दिशा में चलता रहेगा और समय पा कर चक्कर पूरा कर देगा। परन्तु केवल वेध से बताना असंभव है कि विषुव चक्कर लगायेगा या कुछ दूर जा कर लौट आवेगा। सूर्य-सिद्धांत का मत है कि विषुव बराबर एक ही दिशा में नहीं चलता यह अपनी

औसत स्थिति के इधर-उधर दोलन किया करता है जैसे तागे से लटका हुआ लंगर।

सूर्य-सिद्धांत में जो बातें दी हैं उनसे यह परिणाम निकलता है कि विषुव एक वर्ष में ५४ विकला चलता है। अयन का मान यह बात है कि सूर्य-सिद्धांत के समय में विषुव प्रति वर्ष ५४ विकला ही चलता रहा होगा। इस प्रकार बातों में कुछ अंतर है परन्तु अयन का नापना इतना टेढ़ा है कि आश्चर्य होता है कि कैसे इतनी सूक्ष्मता से इसे उस काल में किसी ने नापा होगा। अयन का पता यवन (ग्रीक) ज्योतिषी हिपार्कस ने लगाया (पृष्ठ १२१ देखो) और उसने कहा कि अयन ३६ विकला प्रति वर्ष से कम न होगा। प्रसिद्ध टालमी ने अयन को अधिक सूक्ष्मता से नापने के बदले ३६ विकला प्रति सेकंड का ही शुद्ध मान लिया। जिन लोगों की यह धारणा है कि ज्योतिष संबंधी सब सूक्ष्म ज्ञान भारत में ग्रीस से आया यह नहीं बता पाते कि भारतीयों ने अयन का इतना अच्छा मान कैसे प्राप्त किया। हम देख चुके हैं (पृष्ठ ५६) कि पहले कृत्तिकाएँ वसंत विषुव पर थीं। क्या कोई पारम्पर्य था जिससे सूर्य-सिद्धांत के समय के ज्योतिषी अनुमान कर सकें कि शतपथ ब्राह्मण के काल से उस समय तक लगभग कितने वर्ष बीते थे और इस प्रकार अपने समय में विषुव की स्थिति को देख कर वे गणना कर सकें कि इतने वर्षों में विषुव इतना चला तो एक वर्ष में कितना चलता होगा? कम-से-कम इतना तो है कि सूर्य-सिद्धांत के अनुसार विषुव इधर-उधर २७ अंश तक दोलन करता है और कृत्तिका से सूर्य-सिद्धांत के समय तक विषुव कुल २६$\frac{1}{2}$ अंश चला था। बहुत संभव है कि २७ अंश इसीलिए चुना गया हो। सिद्धांतकार का विश्वास रहा होगा कि पुरानी स्थिति फिर आयगी।

कुछ पाश्चात्यों को संदेह है। वे समझते हैं कि संयोगवश ही भारतीयों का पूर्वोक्त मान इतना सच्चा निकला।

क्या वस्तुतः विषुव दोलन करता है?

हम देख चुके हैं कि वर्तमान सूर्य-सिद्धांत में और वराहमिहिर के समय में उप-लब्ध सूर्य-सिद्धांत में अंतर है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या सूर्य-सिद्धांत के प्राचीन रूप में भी अयन की चर्चा थी। ब्रह्मगुप्त ने अपने सिद्धान्त में अयन की कोई चर्चा नहीं की है, यद्यपि वह वराहमिहिर के बहुत पीछे हुआ और इसलिए प्राचीन सूर्य-सिद्धांत से बहुत ही पीछे। इससे संभावना नहीं जान पड़ती है कि सूर्य-सिद्धांत के प्राचीन पाठ में अयन न रहा होगा। जब हम इस पर विचार करते हैं कि ग्रह की छाया वाले अध्याय में अयन बताने के बदले इसे प्रथम अध्याय में बताना

अधिक उचित होता और इस पर भी विचार करते हैं कि इस अध्याय के श्लोक ८ तक शंकु-छाया संबंधी बातें हैं और ग्यारहवें श्लोक से फिर छाया-संबंधी बातें आरंभ हो जाती हैं तो संदेह की कुछ पुष्टि ही हो जाती है। भास्कराचार्य ने अपने ग्रंथ सिद्धांत-शिरोमणि में यही लिखा है कि विषुव बराबर एक दिशा में चलता रहता है परन्तु उनके भाष्यकारों ने उस सिद्धांत को ठीक नहीं माना वे नहीं मानते थे कि विषुव दोलन करता है और भारत से यह अशुद्ध सिद्धांत अरब में और वहाँ से प्रारंभिक यूरोपीय ज्योतिष में भी पहुँच गया[1]।

शंकु की छाया

बारहवें श्लोक में उस दिन मध्याह्न काल के समय शंकु-छाया पर विचार किया गया है जिस दिन सूर्य विषुवत पर रहता है। आगामी श्लोक में शंकु-छाया से स्थान का अक्षांश जानने की रीति बतायी गयी है। आगे चलकर बताया गया है कि मध्याह्न पर छाया नाप कर किस प्रकार सूर्य की क्रांति नापी जा सकती है और उससे सूर्य के भोगांश की गणना की जा सकती है। इसी प्रकार के अन्य कई एक शंकु और छाया से संबंध रखने वाले प्रश्नों के लिए नियम दिये गये हैं। बयालिसवें श्लोक में शंकु की छाया की नोक का मार्ग खींचने की रीति बतायी गयी है। इस मार्ग को वृत्त मान लिया गया है जो ठीक नहीं है। भास्कराचार्य ने भी स्वीकार किया है कि यह नियम अशुद्ध है।

इसके बाद बताया गया है कि लंका और इष्ट स्थान में मेष आदि राशियों के उदयकाल की गणना किस प्रकार की जा सकती है। भारतीय ज्योतिष ग्रंथों में लंका वह बिंदु है जहाँ उज्जैन की याम्योत्तर रेखा भूमध्य रेखा को काटती है। यह बिंदु सीलोन (वर्तमान सीलोन) से दूर है। लग्न[2] जानने की रीति भी बतायी गयी है।

चंद्रग्रहणाधिकार

चंद्रग्रहणाधिकार नामक चौथे अध्याय के पहले श्लोक में बताया गया है कि सूर्य का व्यास ६५ योजन है और चंद्रमा का ४८ योजन। सूर्य-सिद्धांत में

[1] बरजेस पृष्ठ ११९।

[2] इष्ट समय पर रविमार्ग का जो बिंदु क्षितिज पर रहता है वही उस समय का लग्न (अर्थात लगा हुआ बिंदु) कहलाता है।

प्रथम अध्याय में ही बता दिया है कि पृथ्वी का व्यास १६ योजन है। इस प्रकार चन्द्रमा का व्यास सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी के व्यास का ११ है वास्तविक माप लगभग २७ है। इस प्रकार चन्द्रमा का व्यास सूर्य-सिद्धान्त में एक प्रकार से बहुत शुद्ध है। परन्तु सूर्य का व्यास बहुत अशुद्ध है।

चन्द्रमा के व्यास की नाप किस प्रकार प्राप्त की गयी थी इसकी चर्चा कहीं नहीं है। कोणीय व्यास का अनुमान तो रहा ही होगा। परन्तु इससे असली व्यास का पता तभी लग सकता है जब चन्द्रमा की दूरी ज्ञात हो। दूरी नापने के लिए आवश्यक है कि नापा जाय कि दो स्थानों से देखने पर चन्द्रमा की दिशाओं में कितना अंतर पड़ता है। प्रत्यक्ष है कि यह अंतर जितना ही अधिक होगा चन्द्रमा की दूरी उतनी ही कम होगी अंतर जितना ही कम होगा दूरी उतनी ही अधिक होगी। परन्तु दो स्थानों से चन्द्रमा की दिशाओं का अंतर नापना सुगम नहीं है। इससे आश्चर्य होता है कि चन्द्रमा की दूरी कैसे नापी गयी होगी।

सूर्य की दूरी नापी नहीं गयी है। एक सिद्धान्त पर उसकी दूरी की गणना कर ली गयी है। सिद्धान्त यह था कि सूर्य चन्द्रमा मंगल आदि सब समान वेग से अंतरिक्ष में चलते हैं। परन्तु यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। फलतः इसके आधार पर निकाली गयी सूर्य की दूरी भी अशुद्ध निकली और इसलिए सूर्य का व्यास भी। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास का लगभग चौगुना है। आधुनिक वेधों से पता चलता है कि सूर्य इससे कहीं अधिक बड़ा है—उसका व्यास पृथ्वी के व्यास के १ गुने से भी कुछ अधिक है।

पृथ्वी के अर्ध-व्यास के सम्मुख चन्द्रमा पर जो कोण बनेगा उसे चन्द्रमा का लंबन कहते हैं। पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी घटती-बढ़ती रहती है। इसी से लंबन भी घटता-बढ़ता रहता है। आधुनिक नापों के अनुसार इसका औसत मान लगभग ५७ कला है और वास्तविक मान लगभग ६१ कला और ५४ कला के बीच घटता बढ़ता रहता है। सूर्य-सिद्धान्त ने चन्द्र लंबन को स्थिर माना है और उसका मान ५३३ कला किया है। हिपार्कस ने चन्द्र लंबन को अपनी नापों के अनुसार ५७ कला माना था जो प्रायः शुद्ध है। परन्तु हिपार्कस ने भी सूर्य की नाप बताने में गलती की। उसके पहले अपनी नापों के आधार पर अरिस्टार्कस की धारणा थी कि सूर्य चन्द्रमा की अपेक्षा कुल १९ गुनी दूरी पर है। परन्तु यह मान बहुत ही अशुद्ध है। वस्तुतः सूर्य चन्द्रमा की अपेक्षा लगभग ४ गुनी दूरी पर है। परिणामतः हिपार्कस ने सूर्य का लंबन ३ कला माना। सूर्य-सिद्धान्त ने सूर्य का लंबन ४ विकला माना। दोनों मान शुद्ध मान से बहुत अधिक हैं। शुद्ध मान लगभग ३ कला है।

इसके बाद चन्द्रग्रहणाधिकार में सूर्य और चन्द्रमा के आभासी (दृश्य) व्यासों के जानने की रीति बतायी गयी है। तब यह बताया गया है कि चन्द्रमा की कक्षा के पास पृथ्वी की छाया कितनी बड़ी रहती है। सभी जानते हैं कि इसी छाया में घुसने से चन्द्रग्रहण लगता है। चन्द्रमा को राहु और केतु के ग्रसने की बात तो जनता के सन्तोष के लिए पुराण आदि में कह दी गयी है। सूर्य-सिद्धान्त के रचयिता को तथा अन्य ज्योतिषियों को ग्रहणों का ठीक कारण ज्ञात था और वे उसकी गणना भी कर सकते थे। नवाँ श्लोक यह है

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भवेत् ।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥

अर्थ—सूर्य के नीचे आ जाने पर चन्द्रमा उसको बादल की तरह ढक लेता है [इस प्रकार सूर्य-ग्रहण लगता है]। पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा भू-छाया में प्रवेश कर जाता है इस प्रकार चन्द्रमा का ग्रहण लगता है।

इसके बाद निम्न बातें जानने के लिए नियम बताये गये हैं ग्रस्त भाग का परिमाण सर्व-ग्रहण होगा या खण्ड-ग्रहण या ग्रहण लगेगा ही नहीं ग्रहण और सर्व-ग्रहण कितने समय तक रहेगा ग्रहण का आरम्भ और अन्त कब होगा सर्व-ग्रहण का आरम्भ और अन्त कब होगा ज्ञात समय पर कितना भाग ग्रस्त रहता है आसपास किस समय दिखायी पड़ेगा ग्रहण का चित्र।

विषय के कठिन होने के कारण अधिक ब्योरा यहाँ देना उचित नहीं जान पड़ता।

सूर्यग्रहणाधिकार

इस अध्याय में १७ श्लोकों में सूर्य-ग्रहण की गणना करने की रीति बतायी गयी है। बड़ी बुद्धिमत्ता से कई एक नियम बनाये गये हैं जो लगभग ठीक हैं परन्तु कुछ मिलाकर इतने संशोधन छूट गये हैं कि अन्तिम परिणाम बेकार ही रह जाता है। बरजेस ने २६ मई, सन १८५४ के सूर्य-ग्रहण की गणना अमरीका के एक नगर के लिए अपने सहायक भारतीय पण्डित से सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार कराकर प्रकाशित की है और गणना में जहाँ कहीं अशुद्धता रह गयी थी उसका संशोधन भी कर दिया है। बड़े पृष्ठों पर छोटे टाइप में छापने पर भी गणना में लगभग २१ पृष्ठ लगे हैं। अन्तिम परिणाम यह निकला है कि आँख से देखे गये ग्रहण के समय और गणना द्वारा प्राप्त समय में पौने दो घंटे से अधिक का अन्तर पड़ता है। विज्ञान भाष्य में श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव ने उदाहरण स्वरूप काशी के लिए संवत् १९८२ के माघ कृष्ण अमावस्या के सूर्य-ग्रहण की गणना सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार की है। इस गणना में लगभग ४ पृष्ठ लगे हैं। अन्तिम परिणाम यह निकला है कि स्पर्श का

परिमाण लगभग २६ कला है अर्थात् सूर्य के व्यास का तीन-चौथाई से अधिक भाग छिप जाना चाहिए और सूर्य-ग्रहण ६ घड़ी ४४ पल (दो घंटे से अधिक समय तक) लगा रहना चाहिए। परन्तु वास्तव में यह ग्रहण लगा नहीं। काशी के जो लोग इस ग्रहण को देखने की चेष्टा में थे उन्हें भी ग्रहण नहीं दिखायी पड़ा और आधुनिक गणना से भी सिद्ध हुआ कि ग्रहण नहीं दिखायी पड़ना चाहिए।

परिलेखाधिकार

सूर्य-सिद्धांत के छठवें अध्याय का नाम परिलेखाधिकार है। किसी-किसी प्रति में इसे छेदकाधिकार भी कहा गया है। दोनों का अर्थ एक है। इस अध्याय में क्या है यह पहले श्लोक में बताया गया है

"छेदक" परिलेख या चित्र के बिना सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणों के भेद का ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता कि बिंब की किस दशा से ग्रहण का आरंभ होगा और किस दिशा से मोक्ष तथा ग्रास कितना होगा। इसलिए छेदक बनाने का उत्तम ज्ञान मैं कहता हूँ।

इस अध्याय में २४ श्लोक हैं। तेईसवें श्लोक में कोई गणित नहीं है। वह यों है

अर्धादूने सधूम्रं स्यात्कृष्णमर्धाधिकं भवेत्।
विमुंचतः कृष्णताम्रं कपिलं सकलग्रहे ॥२३॥

अर्थ—जब चंद्र-बिंब का आधे से कम भाग ग्रस्त होता है तब ग्रस्त भाग का रंग धुएँ की तरह होता है। आधे से अधिक ग्रस्त होने पर ग्रस्त भाग काला देख पड़ता है। जब चन्द्र-बिंब का बहुत-सा भाग ग्रस्त हो जाता है और थोड़ा ही-सा बचा रहता है तब ग्रस्त भाग का रंग साँवले ताँबे के रंग का होता है। परन्तु सर्वग्रास ग्रहण का रंग कत्थई (अथवा लोबान के रंग का) होता है। [सूर्यग्रहण में सूर्य के ग्रस्त भाग का रंग सदैव काला होता है।]

अंतिम श्लोक रोचक है

रहस्यमेतद्देवानां न देयं यस्य कस्यचित्।
सुपरीक्षितशिष्याय देयं वत्सरवासिने ॥२४॥

अर्थ—परिलेख खींचने की विद्या देवताओं की गोप्य वस्तु है। यह विद्या ऐसे-वैसे आदमी को न बतानी चाहिए। अच्छी तरह परीक्षा किये हुए शिष्य को जो एक वर्ष तक साथ रह चुका हो यह विद्या बतानी चाहिए।

इसी से मैं भी पाठक को परिलेख खींचने की विद्या नहीं बता रहा हूँ।

ग्रहयुत्यधिकार और नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार

सूर्य-सिद्धांत का सातवाँ अध्याय ग्रहयुत्यधिकार है। इसमें बताया गया है कि ग्रह एक दूसरे के निकट कब और कहाँ देख पड़ते हैं और इनका शुभाशुभ फल क्या होता है। यह भी बताया गया है कि जब ग्रह सूर्य के पास आ जाता है तब कहा जाता है कि वह ग्रह अस्त हो गया है।

नक्षत्र ग्रहयुत्यधिकार नामक आठवें अध्याय के नाम का अर्थ है वह अध्याय जिसमें नक्षत्रों और ग्रहों की युति (अर्थात् एक साथ होने) पर विचार किया गया है। परन्तु नक्षत्रों और ग्रहों की युति पर इस अध्याय में केवल दो श्लोक (१४-१५) हैं और वहाँ इतना ही कहा गया है कि पूर्वगामी अध्याय की रीति से यहाँ भी गणना करो। इस अध्याय का महत्त्व इसमें है कि नक्षत्रों और कुछ विशेष तारों की स्थितियाँ इसमें दी गयी हैं। इसका उद्देश्य यह था कि नक्षत्रों और ग्रहों की युतियों की ठीक गणना हो सके परन्तु हमारे लिए महत्त्व यह है कि इनसे हम सूर्य-सिद्धांत के काल के विषय में महत्त्वपूर्ण परिणाम निकाल सकते हैं।

तारों के निर्देशांक

तारों के निर्देशांक (अर्थात् वे अंक जिनसे तारों की स्थितियाँ बतायी जा सकती हैं) आधुनिक ज्योतिष में दो प्रकार के ही अधिक उपयुक्त होते हैं। वे हैं (१) विषुवांश और क्रांति तथा (२) भोगांश और शर। मान लें साथ के चित्र में क वसंत विषुव है कल विषुवत है और रेखा तब बिंदु त से विषुवत पर गिराया गया लंब है। तो कब को विषुवांश कहते हैं और तब को क्रांति।

अब मान लो कर रविमार्ग है और रेखा तद बिंदु त से कर पर गिराया गया लंब। तो कद भोगांश है और तद शर।

परन्तु सूर्य-सिद्धांत में ध्रुवक और विक्षेप का प्रयोग किया गया है जिनकी परिभाषाएँ यों हैं

मान लो रेखा तब रविमार्ग कर को बिंदु भ में काटता है और क अश्विनी नक्षत्र का आदि बिंदु है। तो कभ ध्रुवक है और तभ विक्षेप।
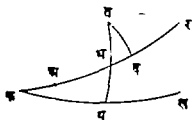
यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि ध्रुवक और विक्षेप को सूक्ष्मता से नापने की कोई रीति ज्ञात नहीं है। वस्तुतः भोगांश और शर भी नहीं नापे जाते। आधुनिक ज्योतिष में विषुवांश और क्रांति ये दोनों ही नापे जाते हैं और तब यदि आवश्यकता हुई तो उनसे भोगांश और शर की गणना की जाती है। कारण यह है कि विषुवांश और क्रांति विषुवत के सापेक्ष नापे जाते हैं जो आकाश में स्थिर रहता है इसलिए नाप सरल है और बहुत सूक्ष्मता से की जा सकती है परन्तु भोगांश शर, ध्रुवक आदि रविमार्ग के सापेक्ष नापे जाते हैं और रविमार्ग आकाश में स्थिर नहीं रहता। चीन के प्राचीन ज्योतिषी भी विषुवांश और क्रांति ही नापते थे यद्यपि उस काल में समय नापने के लिए जल-घटी से कोई अधिक अच्छा प्रबंध नहीं था और विषुवांश नापने में समय की सच्ची नाप की आवश्यकता पड़ती है।

ध्रुवक और विक्षेप की नाप

सूर्य-सिद्धान्त तथा अन्य भारतीय ग्रंथों में रविमार्ग को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। जैसा ऊपर की परिभाषाओं से स्पष्ट है भोगांश और शर, अथवा ध्रुवक और विक्षेप ये दोनों पद्धतियाँ रविमार्ग से सम्बन्धित हैं। पता नहीं कि सिद्धान्तकार इन्हें नापते थे अथवा वे विषुवांश और क्रांति नापकर ध्रुवक और विक्षेप गणना से निकालते थे। हम केवल अनुमान कर सकते हैं कि यदि वे इसे नापते थे तो बाँस की पोली या तार से बने गोले का वे प्रयोग करते रहे होंगे। इस पर रविमार्ग तार या धागे से अंकित रहता रहा होगा और वेध करने के पहले वे केंद्र पर आँख जमा कर चमकीले तारों को देखकर खगोल की दिशा को ठीक करते रहे होंगे। इसी यंत्र से अज्ञात तारों के निर्देशांक वे नापते रहे होंगे। बारहवें श्लोक के उत्तरार्ध से इसका संकेत भी मिलता है, जो यों है

> गोलं बध्वा परीक्षेत विक्षेपं ध्रुवकं स्फुटं ॥१२॥

अर्थ—गोल नामक यंत्र बनाकर इन स्फुट (संशोधित) विक्षेपों और ध्रुवकों की परीक्षा करनी चाहिए।

गोल यंत्र के बनाने की रीति तेरहवें अध्याय में दी गयी है। परंतु वस्तुतः वह ऐसा यंत्र नहीं है जिससे इस प्रकार तक तारों का स्थान नापा जा सके। कोई और रीति रही होगी संभवतः गणना।

योग तारे

सूर्य-सिद्धान्त में तारों की स्थितियाँ बताने के लिए केवल संख्याएँ दी गयी हैं और उनके सम्बन्ध में निम्न आदेश दिया गया है

प्रोच्यंते लिप्तिका भानां स्वभोगोऽथ दशाहृतः ।
भवन्त्यतीतधिष्ण्यानां भोगलिप्तायुता ध्रुवाः ॥१॥

अर्थ—(अश्विनी आदि) तारों के जो भोग आगे बताये गये हैं उनको दस से गुणा करके गुणनफल को गत नक्षत्रों की भोग-कलाओं में जोड़ने से जो आता है वही उन तारों के ध्रुवक[*] हैं।

यहाँ कला के लिए 'लिप्तिका' शब्द का प्रयोग किया गया है जो प्राचीन संस्कृत शब्द नहीं है ग्रीक $\lambda\epsilon\pi\tau o\upsilon$ (लेप्टन) से लिया गया जान पड़ता है।

ऊपर के श्लोक को समझने के लिए ध्यान देना चाहिए कि रविमार्ग को सत्ताइस बराबर भागों में बाँटा जाता था और प्रत्येक को एक नक्षत्र कहा जाता था। प्रत्येक भाग का नाम भी था और वही नाम उस तारका-पुंज (तारों के छोटे समूह) का भी था जो उस भाग में पड़ता था। प्रत्येक तारका-पुंज में से कोई एक प्रमुख तारा चुन लिया जाता था जो उस नक्षत्र का योग-तारा कहलाता था। अवश्य ही योग-तारा नक्षत्र (रविमार्ग के सत्ताइसवें भाग) के ठीक आरम्भ पर नहीं पड़ता था। सूर्य-सिद्धांत में यह बताया गया है कि योग-तारा नक्षत्र के आदि बिंदु से कितनी दूरी पर है। दूरी को कलाओं में बताने के बदले दस कलाओं की इकाई लेकर बताया गया है जिसमें बड़ी संख्याओं का प्रयोग न करना पड़े। इन संख्याओं से योग-तारों के ध्रुवक ज्ञात होते हैं आगे चलकर उनके विक्षेप भी बताये गये हैं। फिर कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण तारों के भी ध्रुवक और विक्षेप बताये गये हैं।

सूर्य-सिद्धांत का काल

एक बात सूर्य-सिद्धांत से पता नहीं चलता कि सूर्य-सिद्धांत के समय इन योग तारों के सापेक्ष वसंत विषुव कहाँ था। परंतु इन योग-तारों की स्थितियों से अश्विनी नक्षत्र के आदि बिंदु का पता लग जाता है। प्रत्येक तारे से अलग-अलग गणना करने पर परिणाम भिन्न-भिन्न मिलते हैं परंतु उनका औसत लिया जा सकता है और औसत मान को अच्छा समझा जा सकता है। अब यदि हम यह कल्पना करें कि अश्विनी का आदि बिंदु सूर्य-सिद्धांत के समय ठीक वसंत विषुव पर था तो हम सूर्य-सिद्धांत का समय ज्ञात कर सकते हैं क्योंकि वसंत विषुव की वर्तमान स्थिति ज्ञात है और उसकी वार्षिक गति भी ज्ञात है।

[*] ध्रुवक को ध्रुव भी कहते थे श्लोक में ध्रुव ही है; परंतु भ्रम से बचने के लिए सदा ध्रुवक शब्द का प्रयोग ही अधिक अच्छा है।

डाक्टर मेघनाथ साहा[1] ने अपने आचार्य श्री प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त की तरह योग-तारों को उनके सूर्य-सिद्धांत वाले और वर्तमान भोगांशों के अंतर के न्यूनाधिक होने के अनुसार तीन समूहों में बाँटा है और उनका विश्वास है कि एक समूह के योग-तारों की मापें उस समय की हैं जब सूर्य-सिद्धांत प्रथम बार रचा गया, दूसरे समूह के योग-तारा की मापें उस समय की हैं जब प्रथम बार उसमें संशोधन किया गया और तीसरे समूह की मापें उस समय की हैं जब उसमें अंतिम बार संशोधन किया गया। परंतु सूर्य-सिद्धांत वाले और वर्तमान भोगांशों के अंतर अपने औसत से निम्न प्रकार विभिन्न हैं[1]

+२ १६	+ १७	— ११
+२ १२	+ २५	—१ १
+१ ४	+ २१	—१ १
+१ ११	+ १६	—१ २
+१ २	+ ९	—१ २०
+१ १८	+ ६	—१ ४१
+ ५८	+	—२ ०
+ ५६	— ५	—२ २
+० १८	— ३१	—२ १२

इन त्रुटियों के देखने से ऐसा नहीं जान पड़ता कि बिना कृत्रिमता लाये इनको तीन समूहों में पृथक् किया जा सकता है। त्रुटियों को मान के क्रम में रखने पर वे लगातार (धीरे-धीरे) बढ़ती हैं। सम्भवतः सूर्य-सिद्धांत के रचयिता के नापने की रीति इतनी स्थूल थी कि ये त्रुटियाँ अपने-आप हो गयीं।

साथ की सारणी में सूर्य-सिद्धांत के अनुसार योग-तारों के निर्देशांक दिये गये हैं और उनकी तुलना आधुनिक मानों से की गयी है[1]।

इन आँकड़ों से सूर्य-सिद्धांत का औसत काल लगभग ५   ६ आता है।

[1] देखें रिपोर्ट ऑव दि कैलेंडर रिफ़ॉर्म कमिटी, भारत सरकार (प्रकाशक, काउंसिल ऑव साइंटिफ़िक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च, ओल्ड मिल रोड, नयी दिल्ली) १९५५, पृष्ठ २६१।

इसमें चार योग-तारों को सम्मिलित नहीं किया गया है, क्योंकि उनकी पहचान ठीक से नहीं हो पायी है और अंतर बहुत है। अन्य तारों के लिए अंतर नक्षत्रों के क्रम में नहीं, मान के क्रम में यहाँ दिखाये गये हैं।

[1] देखें पूर्वोक्त रिपोर्ट पृष्ठ २६४।

अन्य अध्याय

सूर्य-सिद्धांत के नवें अध्याय का नाम है उदयास्ताधिकार। इसमें बताया गया है कि सूर्य के निकट आने के कारण ग्रह कब अस्त और कब उदित होते हैं और इसकी गणना कैसे की जाय। यह भी बताया गया है कि अभिजित ब्रह्महृदय स्वाती श्रविष्ठा और उत्तरभाद्रपद कभी अस्त नहीं होते क्योंकि वे बहुत उत्तर में हैं। चंद्रमा का उदय और अस्त आगामी अध्याय में बताया गया है जिसका नाम है शृंगोन्नत्यधिकार। उसमें बताया गया है कि जब चंद्रमा सूर्य से १२ अंश से कम दूरी पर रहता है तो अदृश्य रहता है। यह भी बताया गया है कि चंद्रमा के शृंगों (नोकों) की स्थितियों की गणना किस प्रकार की जा सकती है। ग्यारहवें अध्याय का नाम पाताधिकार है। पात शब्द प्राय विपत्ति के अर्थ में प्रयोग किया गया है। जब सूर्य और चंद्रमा की क्रांतियाँ बराबर होती हैं तब विशेष विपत्ति की आशंका समझ कर उसे व्यतीपात (बड़ी विपत्ति) कहा गया है। यह भी बताया गया है कि ऐसे अवसरों की गणना कैसे करनी चाहिए, और इस अध्याय के विषयों में से इतना ही गणित ज्योतिष से संबंध रखता है।

आगामी अध्याय भूगोलाध्याय है। आरंभ के श्लोकों में वे प्रश्न हैं जिनका उत्तर पुस्तक के अंत अध्यायों में है। इन श्लोकों का अर्थ नीचे दिया जाता है। एक बात विचित्र है कि इस अध्याय को अन्य अध्यायों की तरह 'अधिकार' न कह कर अध्याय' ही कहा गया है और आगामी दो अध्यायों को भी अध्याय कहा गया है

(१) इसके उपरांत मयासुर ने सूर्य के अंश से उत्पन्न हुए पुरुष को हाथ जोड़ कर प्रणाम करके और बड़ी भक्ति से पूजा करके यह पूछा (२) हे भगवान इस पृथ्वी का परिमाण क्या है? इसका आकार कैसा है और यह किसके आधार पर है? इसके कितने विभाग हैं और इसमें सात पातालों की भूमि कैसे स्थित है? (३) सूर्य अहोरात्र की व्यवस्था कैसे करते हैं और भुवनों को प्रकाशित करते हुए पृथ्वी के चारों ओर कैसे घूमते हैं? (४) देवताओं और असुरों के दिन रात एक दूसरे के विपरीत क्यों होते हैं और सूर्य का एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर यह कैसे होता है? (५) पितरों का दिन-रात एक मास का और मनुष्यों का ६ घड़ियों का क्यों होता है? सब जगह एक ही प्रकार से दिन-रात क्यों नहीं होते? (६) दिन वर्ष मास और होरा (घंटा) के स्वामी समान क्यों नहीं होते? ग्रहों के साथ नक्षत्र-मंडल कैसे घूमता है और इसका आधार क्या है? (७) ग्रहों और नक्षत्रों की कक्षाएँ पृथ्वी से ऊपर कितनी-कितनी ऊँचाई पर तथा परस्पर कितने अन्तर

पर है? इनके मान क्या है और ये किस क्रम से स्थित है? (८) ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें बहुत तीव्र क्यों होती है और हेमन्त ऋतु में वैसी क्यों नहीं होती? ये किरणें कितनी दूर तक जाती है और योजन आदि मान कितने है और इनसे क्या प्रयोजन निकलता है? (९) हे भूतभावन भगवान मेरी इन शंकाओं को दूर कीजिए क्योंकि आप सर्वज्ञ है इसलिए आप के सिवा दूसरा मनुष्य मेरी शंकाओं को नहीं दूर कर सकता। (१०) भक्ति से कहे हुए मयासुर के इन वचनों को सुनकर सूर्यांश पुरुष ने उससे फिर पहले के रहस्य स्वरूप दूसरा अध्याय कहा। (११) एकाग्रचित्त होकर यह अध्यात्म नामक तत्त्व सुनो जिसे मैं कहता हूँ क्योंकि भक्तों के लिए मैं कोई वस्तु अदेय नहीं समझता।

इन प्रश्नों का उत्तर तो दिया ही गया है ऊपर से पहले सृष्टि की कथा भी बतायी गयी है। यह कथा "वेदान्त सांख्य श्रीमद्भागवत आदि में बताये गये सृष्टि-क्रम का मिश्रण है"[1]। मयासुर के प्रश्नों का जो उत्तर दिया गया है वह स्पष्ट और शुद्ध है। उसका समझना विशेष कठिन भी नहीं है परन्तु स्थानाभाव से यहाँ नहीं दिया जा सकता। केवल एक-दो श्लोक यहाँ उदाहरण-स्वरूप दे देना पर्याप्त होगा

अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम्।
भद्राश्वकेतुमालस्था लंकासिद्धपुराश्रिताः ॥५२॥
सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितम्।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्व वाप्यधः ॥५३॥

अर्थ—वे भी जो एक ही व्यास पर रहते हैं एक दूसरे के बारे में सोचते हैं कि दूसरा हमारे नीचे है जैसे भद्राश्व के लोग केतुमाल वालों को और लंका के लोग सिद्धपुर वालों को और इस भूगोल पर सब जगह लोग अपने ही स्थान को ऊपर स्थित मानते हैं परन्तु पृथ्वी तो अंतरिक्ष में एक गोला है इसलिए उसका ऊपर कहाँ है और नीचे कहाँ है?

ज्योतिषोपनिषदध्याय

सूर्य-सिद्धान्त के तेरहवें अध्याय का नाम ज्योतिषोपनिषदध्याय है। इसमें बताया गया है कि ज्योतिष यन्त्रों को कैसे बनाना चाहिए। इन यन्त्रों के बारे में इतना कम ब्योरा है कि ठीक पता नहीं चलता कि रचयिता के काल में भी ऐसे यन्त्र बन पाये

[1] विज्ञान-भाष्य पृष्ठ १४१।

थे या नहीं। चूँकि विषय महत्त्वपूर्ण और साथ ही रोचक है इसलिए कुछ चुने हुए श्लोकों का अर्थ नीचे दिया जाता है :

"लकड़ी का अभीष्टनाप का एक गोला बनाकर इसमें छेद करके एक डंडा डाल देना चाहिए जो उस काठ के गोले के केन्द्र से होकर जाय और दोनों ओर निकला रहे और धुरी का काम करे। इसी डंडे में दो आधार-वृत्त बाँधो जिनके बीच में विषुवत्-वृत्त हो। इन तीनों वृत्तों में से प्रत्येक को १६ भागों में बाँट दो।

इसके बाद अनेक वृत्त बाँधने का आदेश है। इन वृत्तों से ज्योतिष की बातें समझने में सहायता मिल सकती है वेध में नहीं। वस्तुतः ऊपर बताये गये यंत्र से वेध किया ही नहीं जा सकता क्योंकि बीच में काठ के गोले के कारण (जो पृथ्वी को निरूपित करता है) वहाँ न तो आँख लगायी जा सकती है और न किसी व्यास के अंत में आँख लगा कर व्यास की सीध में कोई आकाशीय पिंड देखा जा सकता है। फिर इतने वृत्त इस यंत्र में बाँधने के लिए बताये गये हैं कि पूर्णतया सच्चा यंत्र कभी बन ही न पाता रहा होगा। वृत्त किस पदार्थ का बने यह यहाँ नहीं बताया गया है परन्तु अन्य पुस्तकों में बाँस की तीली के प्रयोग के लिए आदेश है।
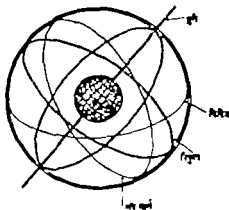
गोल बाँधने की रीति।

"काठ के गोले पर अपने स्थान को सबसे ऊँचा करो फिर खगोल के मध्य में क्षितिज वृत्त बाँधो नीचे वाले आधे को ढक्कन से ढक दो (परन्तु यह ढक्कन खगोल को छूने न पाये) फिर जल-प्रवाह द्वारा ऐसा प्रबंध करो कि (यंत्र समान वेग से बराबर घूमता रहे और) नाक्षत्र समय सूचित करे। अथवा इस यंत्र को पारे के संयोग से ऐसा बनाओ कि यह अपने-आप घूमे। इसको गुप्त रखना चाहिए स्पष्ट बता देने से सबको भेद ज्ञात हो जायगा।

केवल बाहरी ढाँचे को घुमाना चाहिए, भीतरी काठ के गोले को नहीं।

आरंभ की पंक्तियाँ शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद नहीं हैं; लेखक का अभिप्राय क्या रहा होगा यह यहाँ बताया गया है।

इसे पढ़ने से सदेह होने लगता है कि यत्र का बनाना सिद्धातकार स्वयं नही जानता था। यदि यत्र पारे से चल सकता तो पारे से चलने वाली घड़ियाँ भी बन सकती परन्तु समय नापने के लिए सरल नाडिका यत्र का ही वर्णन किया गया है जो आगे दिया गया है।

"शकु यष्टि धनु और चक्र नामक अनेक प्रकार के छाया-यत्रो के द्वारा चतुर और परिश्रमी मनुष्य गुरु के उपदेश से काल का ज्ञान प्राप्त करते है। कपाल आदि जल यत्रो से और मयूर, नर तथा वानर यत्रो से जिनके पेट में बालू रहती है और जिनमें सूत्र (तागा) रहता है समय का ठीक ज्ञान किया जा सकता है। पारे की चक्की पानी तागा रस्सी तेल और पानी तथा पारा और बालू का इनमें प्रयोग होता है परतु यह भी कठिन है।

'ताँबे का कटोरा जिसके पेंदे म छेद हो और जो निर्मल जल के कुड में रखने से दिन-रात म ६ बार डूबे शुद्ध कपाल यत्र होता है।

अतिम श्लोक यह है

> ग्रहनक्षत्रचरितं ज्ञात्वा गोलं च तत्वत ।
>
> ग्रहलोकमवाप्नोति पर्यायेणात्मवान् नर ॥ २५ ॥

अर्थ—ग्रह और नक्षत्रो की चाल तथा गोल गणित के तत्त्व को जानने वाला मनुष्य ग्रह लोक को प्राप्त होता है और जन्मातर में आत्मज्ञानी होता है।

अतिम अध्याय

सूर्य-सिद्धात के अतिम अध्याय का नाम है मानाध्याय। इसमें समय की विविध एकाइयो और विविध प्रकार के समयो की (उदाहरणत सौर, सावन चाद्र और नक्षत्र समयो की) चर्चा है। अयन सक्राति उत्तरायण दक्षिणायन ऋतु, तिथि पक्ष महीनो के नाम आदि का भी विवेचन है। बताया गया है कि सावन दिन सूर्य के एक उदय से दूसरे उदय तक के समय को कहते है।

अतिम दो श्लोको म बताया गया है कि किस प्रकार ऋषियो ने मय से ज्योतिष विद्या सीखी।

रचना-काल

सूर्य-सिद्धात मे ठीक ५ श्लोक है और पाठ वह है जिसे रगनाथ ने स्थिर किया और जिसपर उन्होने भाष्य किया। कई स्थानो में नवीन पक्तियाँ जोडे जाने के

सिद्ध है और संभव है कि कहीं-कहीं कुछ पंक्तियाँ छोड़ भी दी गयी हों। किसी को इसमें संदेह नहीं है कि प्रचलित सूर्य-सिद्धांत प्राचीनतम सूर्य-सिद्धांत से कुछ भिन्न है। पंचसिद्धांतिका और वर्तमान सूर्य-सिद्धांत के स्थिरांकों की तुलना ही इसके लिए पर्याप्त है। रंगनाथ का समय १६०३ ई० है और उसके बाद सूर्य-सिद्धांत में क्षेपक मिलाना असंभव हो गया। प्रोफेसर प्रबोधचंद्र सेनगुप्त[1] का मत है कि सूर्य-सिद्धांत में कई विभिन्न समयों की रचनाएँ मिली हुई हैं। प्राचीनतम लगभग ४०० ई० की है और नूतनतम संभवतः ग्यारहवीं शताब्दी के अंत की। उनका कहना है कि निम्न तीन अवस्थाएँ स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती हैं:

(१) वराहमिहिर के पहले की पुस्तक

(२) वराहमिहिर का संस्करण जिसमें मंद-परिधि का सिद्धांत भी है

(३) वराहमिहिर के बाद वाले परिवर्तन और क्षेपक।

उनके अनुसार इन अवस्थाओं के प्रमाण के लिए स्थिरांकों की तुलना पर्याप्त है। वराहमिहिर के बताये सूर्य-सिद्धांत के स्थिरांक वे ही हैं जो ब्रह्मगुप्त के खंडखाद्यक में हैं, परंतु आधुनिक सूर्य-सिद्धांत में महायुगीय भगणों में निम्नलिखित परिवर्तन कर दिये गये हैं:

मंगल +८ भगण, शनि +४ भगण, चंद्र उच्च −११ भगण, शुक्र −१२ भगण, बुध +६ भगण, चंद्र पात +१२ भगण।

इससे स्पष्ट है कि वराहमिहिर के बाद सूर्य-सिद्धांत में परिवर्तन हुए। आधुनिक सूर्य-सिद्धांत में उच्चों के भोगांश भी ब्रह्मगुप्त के ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत के अधिक निकट हैं यद्यपि प्राचीन सूर्य-सिद्धांत में ये स्थिरांक खंडखाद्यक से ठीक-ठीक मिलते हैं। इसलिए सेनगुप्त का विचार है कि (१) वराहमिहिर के पहले एक सूर्य-सिद्धांत था जिसको वराह ने बदल कर खंडखाद्यक के अनुसार कर दिया और (२) वराह के भगणों को बदल कर पीछे किसी ने ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत के अनुसार कर दिया। (३) स्थिरांक ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत के स्थिरांकों के निकट अवश्य हैं परंतु ठीक-ठीक वही नहीं हैं, इसलिए किसी ने उनमें फिर सूक्ष्म संशोधन कर दिया। बेंटली का कहना है कि सूर्य-सिद्धांत के ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत वाले स्थिरांकों में सोलहवीं शताब्दी ई० में संशोधन (बीज-संस्कार) किया गया क्योंकि आधुनिक सूर्य-सिद्धांत और आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिष के अनुसार गणना करने पर चंद्रमा, मंगल आदि की स्थितियों की त्रुटियाँ

[1] सूर्य-सिद्धांत के बर्जेस कृत अनुवाद में प्रबोधचंद्र सेनगुप्त की भूमिका (कलकत्ता विश्वविद्यालय) १९५३।

लगभग १५४ में न्यूनतम निकलती हैं। दीक्षित का मत है कि ये संस्कार भास्कर आचार्य के रचयिता द्वारा किये गये होंगे[1]।

बरजेस का मत

बरजेस और सेनगुप्त दोनों का मत है कि सूर्य-सिद्धांत के द्वितीय अध्याय के आरम्भिक श्लोक, जो यह बताते हैं कि रविमार्ग में शीघ्रोच्च, मंदोच्च और पातों पर अदृश्य प्राणियाँ हैं जो ग्रहों के सम वेग को विचलित कर देते हैं, पुस्तक के प्राचीनतम संस्करण के अवशेष हैं। पीछे के सिद्धांत में तो यह था कि ग्रह मंद-परिधि में चलता है और इस मंद-परिधि का केंद्र प्रधान वृत्त पर चलता है। यद्यपि यह तर्क बहुत दृढ़ नहीं है क्योंकि द्वितीय सिद्धांत तो केवल गणना की सुगमता के लिए कल्पना-मात्र है और उसका प्रथम सिद्धांत के प्रतिकूल माना जाना आवश्यक नहीं है, तो भी बात ठीक हो सकती है।

सेनगुप्त ने दिखाया है कि आधुनिक सूर्य-सिद्धांत की कई एक रीतियाँ प्रथम आर्यभट या ब्रह्मगुप्त की रीतियों से मिलती हैं। इसलिए उनकी धारणा है कि सूर्य-सिद्धांत में परिवर्तन ब्रह्मगुप्त के बाद तक होते रहे। चूँकि उन्होंने यह सिद्ध करने की चेष्टा ही नहीं की है कि सूर्य-सिद्धांत में इन रीतियों का पहले से रहना और दूसरों का उनकी नकल करना असम्भव है, उनकी बात विशेष जँचती नहीं।

फिर, सूर्य-सिद्धांत के अध्याय ८ में दिये गये योग-तारों के भोगांशों की तुलना आधुनिक मानों से तथा ब्रह्मगुप्त के मानों से करके सेनगुप्त ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि अयन के आधार पर कहा जा सकता है कि कुछ तारों के भोगांश लगभग ४ ई के नपे हैं। जो यह भोगांश ब्रह्मगुप्त के मानों से बहुत मिलते-जुलते हैं सेनगुप्त का कहना है कि वे खण्डखाद्य-सिद्धांत में दिये गये होंगे जिसका समय ६२८ ई० है और शेष तारों के भोगांश जो बाद के हैं वे लगभग ७२ ई० के होंगे। इस प्रकार सेनगुप्त इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सूर्य-सिद्धांत का मूल पाठ लगभग सन् ४ ई में लिखा गया और उसमें ११ ई तक परिवर्तन होते रहे।

सेनगुप्त का कहना है कि सूर्य-सिद्धांत ४ ई के बहुत पहले न लिखा गया होगा क्योंकि की रचना अर्थशास्त्र (लगभग ३ ई पू) सूर्य प्रज्ञप्ति (लगभग २ ई पू) और पितामह सिद्धांत (जिसका वर्णन पंचसिद्धांतिका में है और जिसकी गणना का आरम्भ वर्ष ८ ई है) इन सबमें बहुत स्थूल ज्योतिष है।

[1] दीक्षित भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ १८४।

इस प्रकार केवल १ ई से ४ ई का समय बच रहता है और इसी में बाबुल और यूनान (ग्रीस) से अधिक सूक्ष्म ज्योतिष का ज्ञान जो कुछ भी आया हो आया होगा।

जैसा हम देख चुके ह (पृष्ठ १४१) सूर्य-सिद्धांत में अयन की चर्चा है परंतु आर्यभटीय में और ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत (६२८ ई) म भी इसकी चर्चा नहीं है। सूर्य सिद्धांत और आर्यभटीय में इतनी समानता है कि मुनीश्वर (१६४६ ई) का मत था कि प्रथम आर्यभट ही सूर्य-सिद्धांत के भी रचयिता थे। परंतु कुछ ऐसी विभिन्नताएँ भी हैं कि इसे ठीक मानना उचित नहीं जान पड़ता।

अलबीरूनी का मत

सूर्य-सिद्धांत के बनने के कई सौ वर्ष बाद अलबीरूनी ने भारतवर्ष पर अपनी पुस्तक में लिखा था[1] कि सूर्य-सिद्धांत के रचयिता लाटदेव थे परंतु यह बात विश्वसनीय नहीं जान पड़ती। वराहमिहिर के अनुसार रोमक और पौलिश सिद्धांतो के रचयिता लाटदेव थे। वे प्रथम आर्यभट के शिष्य थे। यदि वराहमिहिर के समय में लोग यह जानते होते कि लाटदेव ने ही सूर्य-सिद्धांत भी लिखा है तो निस्सदेह वराहमिहिर इसे पचसिद्धांतिका में लिखते। फिर, अधिक सभावना नहीं थी कि लाटदेव गणना के आरंभिक वर्ष के लिए अपने ही समय के आस-पास का कोई वर्ष चुनते। इसके अतिरिक्त लाटदेव यवनपुर के सूर्यास्त से अहर्गण की गणना आरम करते थे और आर्यभट अर्धरात्रि अथवा मध्याह्न से (उन्होंने दोनो पद्धतियो के अनुसार गणना बनायी है)। सूर्य-सिद्धांत में उज्जयनी की अर्धरात्रि से अहर्गण की गणना का आरंभ होता है। यद्यपि इन सब बातों के होते हुए भी यह सभव है कि लाटदेव ही ने सूर्य-सिद्धांत को एक गुमनामी पुस्तक के रूप में अतुल पुण्य अर्जन करने के लिए लिखी हो तो भी इसकी सभावना कम ही दिखायी पड़ती है।

मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि आरंभ से ही सूर्य-सिद्धांत ऐसा उत्तम ग्रथ था कि उसी का उपयोग अधिक होने लगा। जैसे-जैसे वेध से पता चला कि ग्रहो में कैसी त्रुटियाँ और गणना में अतर पड़ता है वैसे-वैसे ज्योतिषियो न उसके अको को थोड़ा-बहुत बदल कर उसे अधिक उपयोगी और शुद्ध बना लिया परंतु पुस्तक का परित्याग कभी नहीं किया। आर्यभटीय ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत आदि ग्रथ व्यक्ति

[1] अलबीरूनी का भारतवर्ष साची अनुवादित, १।१५३।

विदेश द्वारा विरचित ग्रंथ के नामों से ही यह बात टपकती थी। सूर्य-सिद्धान्त भगवान सूर्य की कही पुस्तक मानी जाती थी संभव है इसका भी कुछ प्रभाव पड़ा हो।

आगामी अध्याय में इस पर विचार किया जायगा कि कहाँ तक ज्योतिष का ज्ञान ग्रीस से भारतवर्ष में आया।

अध्याय १२

भारतीय और यवन ज्योतिष

बरजेस का मत

कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि भारत में ज्योतिष का सब ज्ञान विदेश से आया। अनेक भारतीयों का विश्वास है कि ज्योतिष का ज्ञान यहीं से विदेश गया। प्राचीन भारत ज्योतिष में दूसरों का कहाँ तक ऋणी था इस विवादग्रस्त विषय पर स्वयं विचार न करके भी एबेनेज़र बरजेस के विवेचन को पाठकों के सम्मुख रखना मैं अधिक उत्तम समझता हूँ। ये विचार १८६० में उन्होंने सूर्य-सिद्धांत के अपने अँग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित किये थे। उनके विचार अब भी वैसे ही ठीक जान पड़ते हैं जैसे वे उस समय थे। उनका कहना है कि

"प्रोफेसर ह्विट्नी की ऐसी सम्मति जान पड़ती है कि हिंदुओं ने गणित और फलित ज्योतिष का ज्ञान प्रायः कुल का कुल यवनों से प्राप्त किया—और जो कुछ उन्होंने यवनों से नहीं पाया उन्होंने दूसरों से पाया जैसे अरब खाल्दी और चीनी लोगों से। परन्तु मैं समझता हूँ कि हिंदुओं को वे उतना यश नहीं दे रहे हैं जितना उनका अधिकार है और यवनों को वे उचित से अधिक यश दे रहे हैं। इस विचार के उपस्थित करने के साथ-साथ मैं यह अवश्य मानता हूँ कि यवन लोगों ने पीछे ज्योतिष विज्ञान की उन्नति अधिक सफलता से की। हिंदू सिद्धांतों में कुछ भी ऐसी वस्तु नहीं है जो टाल्मी की महान कृति सिन्टैक्सिस के टक्कर की हो। तो भी जितना प्रमाण मुझे अब मिला है उससे मुझे यह मानना आवश्यक है कि ज्योतिष की मूल बातों और सिद्धांतों में जैसा हिंदुओं की पुस्तकों में मिलता है हिंदू मौलिक थे और इस विज्ञान की उन्नति में भी वे अधिकतर मौलिक ही रहे और यवनों ने उनसे ज्ञान प्राप्त किया या किसी ऐसे सम्बन्ध द्वारा उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया जिसका यह ज्ञान भारत से भिन्न था। यदि इस विचार में परिवर्तन करना पड़े तो मैं यहाँ तक मान सकता हूँ कि यवन और हिंदुओं ने एक दूसरे से ज्ञान सम्बन्ध न लिया हो और किसी

एक ही स्थान से दोनों ने ज्ञान प्राप्त किया हो। परन्तु वर्तमान ज्ञान के आधार पर मैं इससे सहमत नहीं हो सकता कि हिंदू लोग कुछ भी अधिक मात्रा में अपने ज्योतिष के लिए यवनों के ऋणी हैं अथवा यवन लोग ज्योतिष-विज्ञान के उन सरस तथ्यों और सिद्धांतों की मौलिकता के लिए सम्मान पाने के सच्चे अधिकारी हैं जो अन्य प्राचीन पद्धतियों में भी पाये जाते हैं और जो इस प्रकार के हैं कि जान पड़ते हैं कि एक ही मूल से उत्पन्न हुए हैं और एक स्थान से दूसरे को गये हैं।

समानताएँ

'स्पष्टता के लिए, अच्छा होगा यदि मैं पूर्वोक्त सौति के महत्त्वपूर्ण तथ्यों और सिद्धांतों में से कुछ को अधिक विस्तार रूप से बता दूँ। वे इस प्रकार हैं

१ चन्द्रमा की गति के लिए रविमार्ग का सत्ताइस या अट्ठाइस नक्षत्रों में बाँटा जाना। थोड़ा हेर-फेर से ऐसा विभाजन हिंदुओं की अरब वालों की और चीन वालों की पद्धतियों में है।

२ रवि की गति के लिए रविमार्ग का बारह राशियों में बाँटा जाना और प्रत्येक का नाम। इन नामों का अर्थ हिंदू और यवन दोनों पद्धतियों में एक है। इन में ऐसी अभिन्नता है कि विभाजन-सिद्धांत और नामकरण एक ही मूल से उत्पन्न होने की कल्पना निस्संदेह ठीक है।

"३ हिंदू यवन और अरब की फलित ज्योतिष पद्धतियों में समानता और कहीं-कहीं पूर्ण अभिन्नता से प्रबल धारणा होती है कि प्रारम्भिक और सारभूत बातों में ये पद्धतियाँ एक ही मूल से उत्पन्न हुई हैं।

"४ प्राचीन लोगों को जो पाँच ग्रह ज्ञात थे उनके नाम और उनपर सप्ताह के दिनों का नाम एक होना।

"इन बातों के बारे में मुझे यह कहना है

'पहली बात तो यह है कि पूर्वोक्त में से किसी भी विषय के लिए मौलिक आविष्कारक कहाने का अधिकार हिंदुओं की अपेक्षा अन्य किसी देश के लोगों का अधिक युक्त नहीं है।

"दूसरी बात यह है कि पूर्वोक्त में से अधिकांश विषयों के लिए मौलिकता का साक्ष्य मेरी सम्मति में स्पष्ट रूप से हिंदुओं के पक्ष में है और कुछ के लिए, जो अधिक महत्त्वपूर्ण हैं मेरी तो साक्ष्य प्रायः या पूर्णतया अकाट्य जान पड़ता है।

हिंदू मूल से उत्पन्न

"यहाँ ब्योरे के लिए स्थान नहीं है और न किसी विषय पर ब्योरा देना मेरा उद्देश्य है। परन्तु स्पष्टता के लिए, ऊपर के प्रत्येक विषय पर संक्षिप्त टिप्पणी देना आवश्यक जान पड़ता है।

१ चन्द्रमा की गति के लिए नक्षत्रमार्ग का सत्ताइस या अट्ठाइस भागों में विभाजन। हिंदुओं में इस विभाजन की असंदिग्ध प्राचीनता अपने पूर्ण विकसित रूप में भी और साथ ही अन्य देश के लोगों में इस प्रकार के साक्ष्य का अभाव निश्चित रूप से मुझे इस सम्मति के लिए प्रेरित करते हैं कि यह विभाजन विशुद्ध हिंदू मूल से उत्पन्न हुआ है। बी यायो और दूसरे विद्वानों की सम्मति इसके विरुद्ध होते हुए भी मेरी यही सम्मति है।

"२ सूर्य की गति के लिए रविमार्ग का बारह भागों में विभाजन और उन भागों के नाम। यह सिद्ध किया जा सकता है कि इस विभाजन का प्रयोग और राशियों के वर्तमान नाम भारत में उतने ही प्राचीन काल से प्रचलित हैं जितने से वे किसी अन्य देश में; और इसके अतिरिक्त इस का भी साक्ष्य है—यह सच है कि यह साक्ष्य कम स्पष्ट और कम सन्तोषजनक है, तो भी इस प्रकार का है कि बहुत अधिक संभावना हो जाती है—कि अन्य देशों में इस विभाजन का लेश-मात्र भी जब नहीं पाया जाता, उसके शताब्दियों पहले यह भारतवर्ष में हिंदुओं को ज्ञात था।

अपने विचारों के प्रबल समर्थन में और इस विचार के बलपूर्वक समर्थन में कि यदि पूर्वोक्त विभाजन भारत में नहीं उत्पन्न हुआ तो कम-से-कम कहीं पूरब में उत्पन्न हुआ, मैं इडेलर और लेप्सियस की सम्मति को उद्धृत करना चाहता हूँ जैसा यह हंबोल्ट की पुस्तक में दिया गया है (कॉसमॉस, हारपर का संस्करण ३।१२ टिप्पणी)। 'इडेलर का विश्वास है कि पूरबी लोगों ने ही बारह राशियों का नाम रक्खा।' हंबोल्ट की सम्मति है कि यवनों को रविमार्ग के बारह विभाजन और उनके नाम काल्डियों से मिले। मेरी सम्मति है कि अधिक साक्ष्य इस बात का है कि इनकी उत्पत्ति यदि हिंदुओं में न हुई तो कम-से-कम पूरब में हुई।

"३ ग्रह-परिधियों का सिद्धान्त। इस सिद्धान्त के विषय में यवन और हिंदू पद्धतियों में जो अन्तर है उससे इस कल्पना के लिए कि इन दो जातियों में से किसी एक को दूसरे से इस विषय में संकेत मात्र से कुछ अधिक मिला, कोई स्थान नहीं रह जाता। और जहाँ तक इस विषय का संबंध है यवनों ने हिंदुओं से ये

बातें दीखती इसे सत्य मानने के लिए भी उतना ही कारण है जितना उलटी बात मानने के लिए परन्तु कुछ और कारण हैं जो इस धारणा के अनुकूल हैं कि इस सिद्धांत के मूल आविष्कारक हिंदू थे।

फलित ज्योतिष

"*४ फलित ज्योतिष के बारे में मेरी समझ में इसके आविष्कार और अनुशीलन में अधिक सम्मान नहीं है। हिंदू और यवन पद्धतियों में जो अभिमताएँ पायी जाती हैं वे इतनी अपूर्व हैं कि उनकी पृथक्-पृथक् उत्पत्ति की कल्पना असंभव है। परन्तु मौलिक आविष्कार का सम्मान यदि इसमें कोई सम्मान है भी तो हिंदुओं और खाल्दियों में से किसी एक को मिलना चाहिए। आविष्कार और अनुशीलन की प्रथमता का साक्ष्य कुल मिला कर, हिंदुओं के पक्ष में जान पड़ता है। तीन चार अरबी या यवन शब्द जो हिंदू पद्धति में आ गये हैं उनका निराकरण इस कल्पना से हो जाता है कि वे अपेक्षाकृत बहुत बाद में लिये गये। परन्तु होरा शब्द के संबंध में जो यवन शब्द ωpa है यवन हेरोडोटस का साक्ष्य यहाँ देना अनुचित न होगा (२।१) 'सूर्य-घड़ी और शंकु तथा दिन का बारह भागों में विभाजन यवनों ने बाबुल लोगों से पाया'। इस बात के लिए बहुत-सा साक्ष्य है कि अहोरात्र का चौबीस घंटों में विभाजन यदि भारत में नहीं तो यूरप में यवन देश में प्रचलित होने के पहले ही से प्रचलित था। फिर, हिंदू ज्योतिष ग्रंथों में पाये जाने वाले उन शब्दों को जिन्हें यवन बताया जाता है मैं यह कहना चाहता हूँ कि पूर्ण औचित्य के साथ हम उस बहुसंख्यक शब्दों के वर्ग में रख सकते हैं जो यवन और संस्कृत भाषाओं में

* श्री बर्जेस की यह बात मुझे ठीक नहीं जँचती। वराहमिहिर ने बारह राशियों के जो नाम अपने बृहज्जातक में दिये हैं वे मेष वृष मिथुन आदि के बदले क्रिय, तावुरि, जितुम आदि हैं जो यवन शब्दों के अपभ्रंश रूप जान पड़ते हैं। उनका प्रचार न हो सका; उनके बदले मेष वृष आदि नाम चले जो यवन शब्दों के अनुवाद हैं। नीचे यवन और वराहमिहिर द्वारा प्रयुक्त बारहों राशिनाम दिये जा रहे हैं जिसमें पाठक स्वयं उनकी तुलना कर सकें। यद्यपि वराहमिहिर वाले शब्द संस्कृत-से जान पड़ते हैं तो भी स्मरण रखना चाहिए कि उनका प्रयोग उसके पहले के किसी भी ग्रंथ में नहीं हुआ। दूसरी ओर इसका प्रमाण है कि यवन वालों ने बाबुल लोगों के राशिनामों का अनुवाद कर लिया और उनके देश में इन नामों का प्रचलन ५१२ ई० पूर्व से आरंभ हुआ (भारत सरकार की पंचांग-संशोधन समिति की रिपोर्ट पृष्ठ १९१

समसमिष्ट हैं और जो या तो एक ही मूल से दोनों भाषाओं में पहुँचे या अति प्राचीन काल में संस्कृत से यवन भाषा में पहुँचे क्योंकि जहाँ तक मैं जानता हूँ कोई यह नहीं कहता कि यवन भाषा संस्कृत की जन्मदात्री है यद्यपि बहुत-से शब्दों में और व्याकरण के प्रयोगों में दोनों भाषाओं में समानता है।

ग्रह

"५. ग्रहों के संबंध में मुझे यह कहना है कि हिंदू और यवन पद्धतियों में उनकी अभिन्नता सिद्ध नहीं हो पाती है। चाहे जो हो मेरा विचार है कि यवन ज्योतिष के वर्तमान नामों की उत्पत्ति कम-से-कम खाल्दी तक पूरब तो अवश्य हुई। हेरोडोटस ने लिखा है (२।५२) "देवताओं के नाम यवन में मिस्र देश से आये। ग्रहों के नाम देवताओं के नाम हैं। इन नामों की उत्पत्ति के बारे में यवनों का विश्वास हेरोडोटस के कथन से स्पष्ट है। अन्य कारणों से उनकी उत्पत्ति निस्संदेह रूप से खाल्दी या उससे भी अधिक पूरब देश में हुई दिखायी पड़ती है।

"सप्ताह के दिनों के साथ ग्रहों के नाम जुटने के संबंध में यह निश्चय करना असंभव है कि उस प्रथा की उत्पत्ति कहाँ हुई। इस बारे में प्रोफेसर एच. एच. विल्सन की राय है—और मैं उनसे पूर्णतया सहमत हूँ—कि 'इस प्रथा की उत्पत्ति ठीक से निश्चित नहीं हो पाती है कारण कि यवनों को यह प्रथा अज्ञात थी और रोम-निवासी भी इसे बहुत पीछे अपनाये। साधारणतः लोग इसे मिस्र और खाल्दी लोगों की देन बताते हैं, परन्तु इसके लिए पर्याप्त प्रमाण नहीं है और इस आविष्कार के श्रेय के अधिकारी हिंदू भी कम-से-कम उतने ही हैं जितने अन्य कहीं के लोग।' (जरनल रॉयल एशियाटिक सोसायटी ९।८४)।

अरब में ज्योतिष

"ज्योतिष विज्ञान में भी कुछ आविष्कार के श्रेय के अधिकारी अरबवाले नहीं हैं इस पर भी दो शब्द कहना आवश्यक है। वे तो स्वयं स्वीकार करते हैं कि

पर आवश्यक उद्धरण मिलेंगे)। इसलिए इसकी संभावना बहुत कम हो जाती है कि भारत से ये नाम ग्रीस में गये।

राशियों के यवन नाम और वराहमिहिर में आये नाम यों हैं : क्रियोस—क्रिय; टॉरस—तावुरि; डिडमाय—जितुम; कार्किनोस—कुलीर; लियोन—लेय; पार्थेनोस—पाथोन; जुगस—जूक; स्कॉर्पियस—कौर्प्य; टोक्सोटस—तौक्षिक; ऐगोकेरस—आकोकेर; हुड्रोकोस—हृद्रोग; इक्थुएस—इत्थुसी।

उन्हें यह विद्या भारत और ग्रीस से मिली। आरंभ में ही दो या तीन भारतीय ज्योतिष ग्रंथ उन्होंने प्राप्त कर लिये।" द्वितीय अब्बासिद खलीफा अलमनसुर (७७३ ई०) के राज्यकाल में जैसा कि बिन-अल-अदमी की ज्योतिष सारणियों की भूमिका में लिखा है जो ९२ ई० में प्रकाशित हुई थी एक भारतीय ज्योतिषी जो अपने विषय का पारंगत विद्वान था खलीफा के दरबार में आया। वह अपने साथ ग्रहों की सारणियाँ भी लाया था और चाप तथा सौर ग्रहणों के वेध और राशियों के निर्देशांक भी जो जैसा उसने बताया एक भारतीय राजकुमार के परिकलित सारणियों से लिये गये थे जिसका नाम उस अरबी लेखक के लिखने के अनुसार, फिगर था" (कोलब्रुक हिंदू अलजेबरा पृष्ठ ६४)। यह बात कि यवन ज्योतिष से परिचित होने से पहले वे हिंदू ज्योतिष के ज्ञान से परिपूरित थे टाल्मी द्वारा सिनटैक्सिस के अरबी अनुवाद से प्रत्यक्ष है। यह सभी जानते हैं कि इस यवन ज्योतिषी की महान कृति की जानकारी यूरोप में अरबी अनुवाद से ही हुई। इस अनुवाद के लैटिन अनुवाद में आरोही पात को शिर वाला पात और अवरोही पात को पुच्छवाला पात कहा गया है और ये शब्द हिंदू राहु और केतु के विशुद्ध अनुवाद हैं। यह बात और अन्य साक्ष्य स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि अरब वालों पर हिंदू ज्योतिष की गहरी छाप पड़ी थी। वस्तुतः जान पड़ता है कि अरब वालों ने ज्योतिष में कुछ इतना ही किया कि वे अपने पूरबी और पश्चिमी पड़ोसियों से प्राप्त सामग्री को परिष्कृत कर सके।

"एक दूसरी बात की भी चर्चा करने की आवश्यकता यहाँ जान पड़ती है जिससे स्वयं अरब वालों का विश्वास प्रकट होता है कि विज्ञान के विषय में हिंदुओं के वे ऋणी थे। वे अंकों के आविष्कार को हिंदुओं का बताते हैं (जिसको साधारणतः सभी यूरोप वाले अरब का आविष्कार समझते हैं)।

"ऊपर के तथ्यों और तर्कों का जो दिखाते हैं कि गणितीय तथा ज्योतिष विज्ञानों में अरब वाले हिंदुओं के कितने ऋणी थे स्पष्टतया इस प्रश्न से भी महत्वपूर्ण संबंध है कि चंद्रमा की गति के लिए एक्लिप्टिक (क्रान्तिवृत्त) को अट्ठाइस नक्षत्रों में विभाजित करने का आविष्कार किसने पहले किया कम-से-कम जहाँ तक अरब वालों का इससे संपर्क है। सब बातों को ध्यान में रख कर यह मानना असंभव है कि अरब के लोगों ने इसका आविष्कार किया।

समाप्ति

"इस लेख को मैं प्रसिद्ध प्राचीनज्ञ एच० टी० कोलब्रुक से लिये गये एक अवतरण से समाप्त करता हूँ। अपने बहुमूल्य लेख में जिसका शीर्षक है 'हिंदुओं के अयन

और ग्रहों की गतियों पर हिंदू ज्योतिषियों के विचार" पहले हिंदू पद्धतियों के अधिक महत्वपूर्ण विशेषताओं में से कुछ को ब्योरेवार बता कर, और उसी प्रकार उनकी और यवनों की पद्धतियों में पायी जाने वाली समताओं को भी बता कर, और इन दोनों लोगों में उस समय में आवागमन के साक्ष्य को भी दिखा कर, वे कहते हैं कि 'यदि इन परिस्थितियों से और इनके अतिरिक्त ऐसी समानता से जिसे आकस्मिक मानना कठिन है और जो मद-परिधि और उत्केन्द्र वृत्तों के उपकरण से सुसज्जित हिंदू ज्योतिष और यवन ज्योतिष में कई बातों में पायी जाती है कोई समझे कि ऐसा विश्वास करना उचित होगा कि हिंदुओं को यवनों से वह ज्ञान मिला जिससे वे ज्योतिष के अपने भ्रमित ज्ञान को शुद्ध और परिष्कृत कर सके तो उनसे मतभेद के लिए मुझे कोई इच्छा न होगी" (एशियाटिक रिसर्चेज) ।

"इतने विद्वान और इतने सतर्क लेखक होते हुए भी भी कोलब्रुक इस मत के पक्ष में कि हिंदुओं ने अपना ज्योतिष का ज्ञान यवनों से पाया है कुल इतना ही कह सके जितना ऊपर लिखा है । इससे अधिक मैं भी कुछ नहीं कह सकता । रविमार्ग के बारह भागों में बँट जाने पर और उनके नाम पड़ जाने पर, मैं समझता हूँ कि केवल कुछ संकेत ही एक देश से दूसरे को पहुँच सका होगा और वह भी बहुत प्रारम्भिक काल में क्योंकि यदि यह माना जाय कि पीछे के समय में हिंदुओं ने यवनों से ज्ञान प्राप्त किया तो यह दिखाना पड़ता ही कठिन हो जाता है कि आखिर उन्होंने किस बात का ज्ञान प्राप्त किया क्योंकि किसी बात में न तो स्थिरांक ठीक-ठीक मिलते हैं और न परिणाम । और फिर, इन स्थिरांको और परिणामों में से महत्वपूर्ण बातों में—उदाहरणतः विषुव के वार्षिक अयन के मान में पृथ्वी के सापेक्ष सूर्य और चन्द्रमा की नापों में सूर्य के महत्तम केन्द्र-समीकार में—यवनों की अपेक्षा हिंदू ही अधिक शुद्ध थे और ग्रहों के भगण-कालों में वे प्रायः उतने ही शुद्ध थे जितने यवन । ग्रहों के नाक्षत्र भगण कालों की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि चार भगण-काल हिंदुओं के अधिक शुद्ध थे और टॉल्मी के छः । प्रत्यक्ष है कि हिंदुओं और यवनों के बीच ज्योतिष ज्ञान का आदान प्रदान बहुत कम ही हुआ है । और उन विषयों के बारे में जहाँ सिद्ध है कि एक देश के लोगों ने दूसरे से कुछ लिया हो मुझे इस समय जहाँ तक ज्ञान है मेरी तो यही सम्मति हो रही है कि ज्ञान-प्राप्ति की धारा कोलब्रुक की धारणा से उलटी ही रही है—पश्चिम से पूर्व के बदले पूर्व से पश्चिम को और ज्योतिष में भी मैं अपना मत उसी मात्रा में प्रकट करना चाहूँगा जितने इस प्रकार विद्वान ने विचार शील दर्शन और धार्मिक व्यवस्थाओं की विशेष कर पुनर्जन्म-सिद्धान्त की कुछ समानताओं के बारे में जो यवन और हिंदू पद्धतियों में पायी जाती हैं, अपनी सम्मति

दी है "मुझे इसी परिणाम पर पहुँचना उचित जान पड़ता है कि इस बात में भारतीय शिक्षक थे न कि शिष्य" (ट्रैंजैक्शन्स रॉयल एशियाटिक सोसायटी १।५७९)। यह सम्मति भाष्य दर्शन पर कोलब्रुक की लेखनी से निकले अंतिम निबंध में व्यक्त की गयी है।

अध्याय १३

लाटदेव से भास्कराचार्य तक

लाटदेव, पांडुरंग, निःशंकु, श्रीषेण, आदि

वराहमिहिर ने पंचसिद्धांतिका में जिन ग्रंथों का संग्रह किया है उनके नाम ये हैं—पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर और पैतामह सिद्धांत[1]। इनमें से पहले दो ग्रंथों के व्याख्याता[2] लाटदेव बताये गये हैं, जिससे सिद्ध होता है कि लाटदेव सूर्य-सिद्धांत के बनाने वाले नहीं थे जैसा अलबरूनी ने कई सौ वर्ष पीछे विक्रम की ११वीं शताब्दी में लिखा है। यदि ऐसा होता तो वराहमिहिर अवश्य स्वीकार करते। भास्कर प्रथम के रचे महाभास्करीय से तो प्रकट होता है कि लाटदेव, पाण्डुरंग स्वामी, निःशंकु आदि आर्यभट के शिष्य थे। रोमक सिद्धांत निस्संदेह यवन (यूनानी) ज्योतिष के आधार पर बनाया गया था क्योंकि इसमें यवनपुर के सूर्यास्तकाल[3] से अहर्गण बनाने की रीति बतायी गयी है। यह यवनपुर वर्तमान युक्तप्रान्त का जवनपुर नहीं है, वरन् सैमवन एलेक्जैंड्रिया है जो यूनानी ज्योतिष का केंद्र था। अस्त होते हुए सूर्य से अहर्गण निकालने की बात भी यही प्रकट करती है क्योंकि मुसलमानी महीने अब भी सूरज के चन्द्रदर्शन के समय से अर्थात् जब सूर्यास्त होता है तब से आरम्भ होते हैं। ब्रह्मगुप्त ने भी रोमक-सिद्धांत को स्मृतिबाह्य[4] माना है। इससे यह बात

[1] इस अध्याय की सारी बातें मेरे द्वारा संपादित सरल विज्ञान-सागर नामक ग्रंथ में छपे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के एक लेख से ली गयी हैं।

पंचसिद्धांतिका, १।३।

[2] प्रबोधचंद्र सेनगुप्त के खण्डखाद्यक की भूमिका, पृष्ठ १९।

पं सि १।८।

बा सि १।११।

और भी स्पष्ट हो जाती है। पाकरगस्वामी और निचकु के बनाये ग्रंथ नहीं मिले हैं। ब्रह्मगुप्त ने श्रीषेण विष्णुचन्द्र और विजयनन्दि की कई स्थानों पर विशेषकर तन्त्र परीक्षाध्याय में की है जिससे प्रकट हो कि इन्होंने कोई स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं लिखा था वरन् पुराने ग्रंथों का संग्रह अथवा संशोधन मात्र किया था। ऊपर के लिखे चार ज्योतिषियों समय वराहमिहिर के उपरान्त और ब्रह्मगुप्त के पहले अर्थात् शक ४ से ६६५ के बीच में है। ब्रह्मगुप्त कहते हैं कि श्रीषेण ने लाट, व विजयनन्दि और आर्यभट के मूलांको को लेकर रोमक नामक ग्रं तैयार की है और इन सबके आधार पर विष्णुचन्द्र ने वासिष्ठ नामक रचा है।

भास्कर प्रथम

महाभास्करीय और लघुभास्करीय नामक दो ग्रंथों की हस्तलिखित प्र भारत के कई पुस्तकालयों में हैं जैसे मद्रास सरकार का हस्तलिपियों । पुस्तकालय त्रिवेंद्रम की पैलेस लाइब्रेरी तथा क्यूरेटर्स ऑफिस लायब्रेरी त्रिवें। इन दोनों ग्रंथों में आर्यभट के ज्योतिष का समावेश है और इनके रच भास्कर नाम के एक ज्योतिषी थे जो लीलावती के लेखक प्रसिद्ध भास्करा से भिन्न थे। इसलिए इनका नाम प्रथम भास्कर लिखना उपयुक्त है लखनऊ विश्वविद्यालय के डाक्टर कृपाशंकर शुक्ल ने अपनी डाक्टर की डिग्री लिए भास्कर प्रथम पर विशेष अनुसंधान किया है। उनके अनुसार भास्कर । ने एक तीसरा ग्रंथ भी लिखा है जो आर्यभटीय की टीका है, और जिसका ग्रंथकार ने आर्यभटतन्त्र-भाष्य रक्खा है। इस टीका में लेखक ने दिनांक प्राप्त किया है जिसके अनुसार यह टीका शक ५२९ ई में लिखी गयी थी। टीका की एक प्रति त्रिवेंद्रम में है और एक इंडिया ऑफिस लायब्रेरी लन्दन टीका बहुत विस्तृत और विशद है। भास्कराचार्य प्रथम आर्यभट प्रथम की शि परंपरा में थे और इनका जन्म-स्थान अश्मक में था जो नर्मदा और गोदावर बीच में था। इनके दोनों प्रधान ग्रंथों (महाभास्करीय और लघुभास्करीय) प्रयोग लगभग पंद्रहवीं शताब्दी ई के अंत तक दक्षिण भारत में होता रहा। दोनों ग्रंथों में गणना कलियुग के आरंभ से की गयी है।

भा ज्यो सि ११।४८-५१।

कल्याण वर्मा

पं. सुधाकर द्विवेदी के अनुसार[1] इनका समय शक ५०० के लगभग है। इन्होंने 'सारावली' नामक जातक शास्त्र की रचना वराहमिहिर बृहज्जातक से बड़े आकार में की है और स्पष्ट लिखा है कि वराहमिहिर, यवन और नरेन्द्र रचित होराशास्त्र के सार को लेकर सारावली नामक ग्रन्थ की रचना की गयी है। इसमें ४२ अध्याय हैं। इस पुस्तक की चर्चा भटोत्पल ने की है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित के मत से इनका समय ८२१ शक के लगभग है।

ब्रह्मगुप्त

ब्रह्मगुप्त गणित-ज्योतिष के बहुत बड़े आचार्य हो गये हैं। प्रसिद्ध भास्कराचार्य ने इनको गणकचक्रचूडामणि कहा है और इनके मूलांकों को[2] अपने सिद्धान्त शिरोमणि का आधार माना है। इनके ग्रन्थों का अनुवाद अरबी भाषा में भी कराया गया था जिन्हें अरबी में अस् सिन्द हिन्द और अल् अर्कन्द कहते हैं। पहली पुस्तक ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त का अनुवाद है और दूसरी खण्डखाद्यक का। इनका जन्म शक ५२० (६५५ वि.) में हुआ था और इन्होंने शक ५५० (६८५ वि.) में ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त की रचना की थी। इन्होंने स्थान-स्थान पर लिखा है कि आर्यभट, श्रीषेण, विष्णुचन्द्र आदि की गणना से ग्रहों का स्पष्ट स्थान शुद्ध नहीं आता, इसलिए वे त्याज्य हैं और ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में दृग्गणितैक्य[3] होता है, इसलिए यही मानना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त ने ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त की रचना ग्रहों का प्रत्यक्ष वेध करके की थी और वे इस बात की आवश्यकता समझते थे कि जब कभी गणना और वेध में अन्तर पड़ने लगे तो वेध के द्वारा गणना शुद्ध कर लेनी चाहिए। यह पहले आचार्य थे जिन्होंने गणित ज्योतिष की रचना विशेष क्रम से की और ज्योतिष और गणित के विषयों को अलग-अलग अध्यायों में बाँटा।

[1] गणक तरंगिणी पृष्ठ १६।

[2] भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृ. ४८६।

[3] सिद्धान्त-शिरोमणि मध्यमाध्याय।

तन्त्राध्याय ७, ८।

तस्मात् प्रतिदिनमेवं विज्ञाय धीमता यत्नः। कार्यस्तस्मिन् यस्मिन् दृग्गणितैक्यं सदा भवति ॥६॥ तन्त्रपरीक्षाध्याय।

ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत

ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत के अध्यायों का ब्योरा नीचे दिया जाता है

१—मध्यमाधिकार में ग्रहों की मध्यम गति की गणना है। २—स्पष्टाधिकार में स्पष्ट गति जानने की रीति बतायी गयी है। इसी अध्याय में ज्या निकालने की रीति भी बतायी गयी है जिसमें त्रिज्या का मान ३२७ कला माना गया है यद्यपि आर्यभट ने ३४३८ कला माना था और उसी को सूर्यसिद्धांत में भी माना था और पीछे सिद्धांत-शिरोमणि आदि ग्रंथों में भी स्वीकार किया गया।

३—त्रिप्रश्नाधिकार में ज्योतिष के तीन मुख्य विषयों (दिशा देश और काल) के जानने की रीति है।

४—चंद्रग्रहणाधिकार में चंद्रग्रहण की गणना करने की रीति है।

५—सूर्यग्रहणाधिकार में सूर्यग्रहण की गणना करने की रीति है।

६—उदयास्ताधिकार में बताया गया है कि चंद्रमा मंगल बुध गुरु शुक्र और शनि ये सूर्य के कितने पास आने पर अस्त हो जाते हैं अर्थात् अदृश्य हो जाते हैं और कितनी दूर होने से उदय होते हैं अर्थात् दिखायी पड़ने लगते हैं।

७—चंद्रशृङ्गोन्नत्यधिकार में बताया गया है कि शुक्लपक्ष की दूइज के दिन जब चंद्रमा सन्ध्या में पहले-पहल दिखायी पड़ता है तब उसकी कौन-सी नोक उठी रहती है।

८—चंद्रच्छायाधिकार में उदय और अस्त होते हुए चंद्रमा के वेध से छाया आदि का ज्ञान करने की रीति है। अन्य ग्रंथों में इसके लिए कोई अलग अध्याय नहीं है।

९—ग्रहयुत्यधिकार में बताया गया है कि ग्रह एक दूसरे के पास कब आ जाते हैं और उनकी युति की गणना कैसे की जाती है।

१०—भग्रहयुत्यधिकार में बताया गया है कि नक्षत्रों या तारों के साथ ग्रहों की युति कब होती है और उसकी गणना कैसे की जाती है। इसी अध्याय में नक्षत्रों के ध्रुवीय भोगांश और शर[1] भी दिये गये हैं और नक्षत्रों की पूरी सूची है। ज्योतिष गणित संबंधी ये दस अध्याय मुख्य हैं।

११—तंत्रपरीक्षाध्याय में ब्रह्मगुप्त ने पहले के आर्यभट, श्रीषेण विष्णुचंद्र आदि, की पुस्तकों का खंडन बड़े कड़े शब्दों में किया है, जो एक प्रकार से ज्योतिषियों

[1] अर्थात् ध्रुवक और विक्षेप; पृष्ठ १५ देखें।

की परिपाटी-सी है परंतु इससे यह बात सिद्ध होती है कि उस प्राचीन काल में भी ज्योतिषी वेध-सिद्ध शुद्ध गणना के पक्ष में थे। वे पुरानी लकीर के फकीर नहीं रहना चाहते थे।

१२—गणिताध्याय शुद्ध गणित के संबंध में है। इसमें जोड़ना घटाना गुणा भाग वर्ग वर्गमूल घन घनमूल भिन्नों का जोड़ना घटाना आदि त्रैराशिक व्यस्त त्रैराशिक भाण्ड प्रति भाण्ड (बदले के प्रश्न) मिश्रक व्यवहार, आदि अंक गणित या पाटीगणित के विषय है। श्रेढ़ी व्यवहार (समांतर श्रेढ़ी) क्षेत्र व्यवहार (त्रिभुज चतुर्भुज आदि के क्षेत्रफल जानने की रीति) वृत्त-क्षेत्र गणित खात व्यवहार (खाइ आदि का घनफल जानने की रीति) चिति व्यवहार (ढाल धाई का घनफल जानने की रीति) क्राकचिक व्यवहार (आरा चलाने वाले के काम का गणित) राशि व्यवहार (अन्न के ढेर का परिमाण जानने की रीति) छाया व्यवहार (दीप स्तम्भ और उसकी छाया के संबंध के अनेक प्रश्न करने की रीति) आदि २८ प्रकार के कर्म इसी अध्याय के अन्तर्गत हैं। इसके आगे प्रश्नोत्तर के रूप में पीछे के अध्यायों में बतायी हुई बातों का अभ्यास करने के लिए कई अध्याय हैं।

१३—मध्यगति उत्तराध्याय में ग्रहों की मध्यगति संबंधी प्रश्न और उत्तर हैं।

१४—स्फुटगति उत्तराध्याय में ग्रहों की स्पष्टगति संबंधी प्रश्न और उत्तर हैं।

१५—त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में त्रिप्रश्नाध्याय संबंधी प्रश्नोत्तर हैं।

१६—ग्रहणोत्तराध्याय में सूर्य-चन्द्रमा के ग्रहण संबंधी प्रश्नोत्तर हैं।

१७—शृङ्गोन्नत्युत्तराध्याय में चन्द्रमा की शृङ्गोन्नति संबंधी प्रश्नोत्तर हैं।

१८—कुट्टकाध्याय में कुट्टक की विधि से प्रश्नों का उत्तर जानने की रीति है। इस अध्याय में ब्रह्मगुप्त ने प्रत्येक प्रकार के कुट्टक की रीति बतायी है और दिखाया है कि इससे ग्रहों के भगण आदि के भाग कैसे जाने जा सकते हैं। इस अध्याय का अंग्रेजी अनुवाद कोलब्रुक ने किया है। इस अध्याय के अन्तर्गत कई खंड हैं। एक खंड में धन ऋण और शून्य का जोड़ बाकी गुणा भाग करणी[1] का जोड़ बाकी गुणा भाग आदि करने की रीति है। दूसरे खंड में एकवर्ण समीकरण वर्ग समीकरण अनेक वर्ग समीकरण आदि बीजगणित के प्रश्न हैं। तीसरा खंड बीजगणित संबंधी भावित बीज नामक है। चौथा खंड वर्गप्रकृति नामक है। पाँचवें खंड में अनेक उदाहरण दिये गये हैं। इस प्रकार यह अध्याय १०३ श्लोकों में पूर्ण होता है।

[1] $\sqrt{२}$, $\sqrt{१५}$, — अर्थात् ऐसी राशियाँ जिनमें वर्गमूल घनमूल आदि निरवयव नहीं आते करणी अथवा करणीगत संख्याएँ कहलाती हैं।

१९—शंकुच्छायादि ज्ञानाध्याय में छाया से समय या किसी वस्तु की ऊँचाई आदि जानने की रीति बतायी गयी है। यह त्रिकोणमिति से संबंध रखता है।

२ —छन्दश्चित्युत्तराध्याय में १९ श्लोक हैं जिनका अर्थ इतना दुरूह है कि समझ में नहीं आता।

२१—गोलाध्याय में भूगोल और खगोल संबंधी कुछ मसला है। इसमें भी कई खंड हैं—ज्या प्रकरण स्फुटगतिवासना ग्रहणवासना गोलबन्धाधिकार। इसमें भूगोल तथा खगोल संबंधी परिभाषाएँ और ग्रहों के बिम्बों के व्यास आदि जानने की रीति है।

२२—यन्त्राध्याय में ५७ श्लोक हैं इसमें अनेक प्रकार के यन्त्रों का वर्णन किया गया है जिनसे समय का ज्ञान होता है और ग्रहों के उन्नतांश नतांश आदि जाने जाते हैं। स्वयं वह यन्त्र की भी चर्चा है जो पारे की सहायता से अपने-आप चलता कहा गया है।

२३—मानाध्याय नामक छोटे से अध्याय में सौर, चान्द्र सावन आदि नव मानों की चर्चा है।

२४—संज्ञाध्याय में कई महत्त्व की बातें बतायी गयी हैं। पहले बताया गया है कि सूर्य सोम पुलिश रोमक वासिष्ठ और यवन सिद्धान्तों में एक ही सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। यदि कुछ भेद है तो वैसे ही जैसे सूर्य की सम्पाति स्थान भेद के कारण भिन्न-भिन्न कालों में कही जाती है। इससे पता चलता है कि ब्रह्मगुप्त के समय उपर्युक्त सिद्धान्त प्रचलित हो गये थे और सब में प्रायः एक ही-सी बात थी। फिर, ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त के २४ अध्यायों की सूची दी गयी है। इसके बाद बताया गया है कि चापवंश-तिलक व्याघ्रमुख नामक राजा के समय में ५५ शक में जिष्णुसुत ब्रह्मगुप्त ने १२ वर्ष की अवस्था में गणितज्ञों और गोलज्ञों की प्रसन्नता के लिए यह ग्रन्थ रचा। एक श्लोक में बताया है कि ७२ आर्या छन्दों का ध्यानग्रहोपदेशाध्याय ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त में जिसके २४ अध्यायों में कुल १ ८ आर्या छन्द हैं नहीं जोड़ा गया है। यह भी याद रखना चाहिए कि प्रत्येक अध्याय के अंत में यह बताया गया है कि उसमें कितने छन्द हैं।

ध्यानग्रहोपदेशाध्याय में तिथि नक्षत्र आदि की गणना करने की सरल रीति बतायी गयी है।

इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मगुप्त न ज्योतिष संबंधी बातों के सिवा बीजगणित अंकगणित क्षेत्रमिति आदि पर भी पर्याप्त ऊँची बातें आज से १३ वर्ष पहले लिखी थीं और यह उसी गणना को ठीक मानते थे जो वेध से भी ठीक उतरती थी।

खण्डखाद्यक

शक ५८७ में जब ब्रह्मगुप्त ६९ वर्ष के हो गये थे तब खण्डखाद्यक नामक करण ग्रंथ भी उन्होंने रचा था जिससे तिथि नक्षत्र और ग्रहों की गणना सुगम रीति से की जा सके। आश्चर्य की बात तो यह है कि ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में जिस आर्यभट की निन्दा अनेक स्थानों में की गयी थी उसी के अनुसार इस खण्डखाद्यक[1] की रचना की गयी है। इससे प्रकट होता है कि वृद्धावस्था में इनको भी आर्यभट का महत्त्व समझ पड़ा। परन्तु इस ग्रंथ में भी ब्रह्मगुप्त ने नवीन बातें बतायी हैं और कुछ संशोधन भी किये हैं। इस ग्रंथ में कुल १० अध्याय हैं जिनमें तिथि नक्षत्रादि की गणना, पंच ताराग्रहों की मध्य और स्पष्ट गणना, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, उदयास्ताधिकार, चन्द्रशृङ्गोन्नत्यधिकार, ग्रहयुत्यधिकार नामक आठ अध्याय पूर्व खण्डखाद्यक में हैं। उत्तर खण्डखाद्यक में दो अध्याय हैं जिसके पहले अध्याय में ब्रह्मगुप्त ने अपने संशोधनों की चर्चा की है और नयी बातें बतायी हैं और दूसरे अध्याय में ताराग्रहों और नक्षत्रों की युति के संबंध में विचार किया है और नक्षत्रों के योग-तारा का ध्रुवक और विक्षेप बताया है।

इन सब बातों का विचार करने से सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त एक महान आचार्य थे। इन्होंने जो पद्धति चलायी उसी का अनुसरण पीछे के प्रायः सभी आचार्यों ने किया। इनके दोनों ग्रंथों की कई टीकाएँ केवल संस्कृत में ही नहीं निकलीं वरन् अरबी में भी बनीं जिससे इनका नाम अरब और तुर्किस्तान में भी फैल गया था।

लल्ल

लल्ल के समय के संबंध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी गणक तरंगिणी में इनका समय ४२१ शक लिखते हैं क्योंकि आर्यभटीय के अनुसार आए हुए ग्रहों में बीज-संस्कार इन के लिए ४२० शक बताकर[1]

[1] वक्ष्यामि खण्डखाद्यकमाचार्यार्यभटतुल्यफलम् ॥१॥
प्रायेणार्यभटेन व्यवहारः प्रतिदिनं यतोऽशक्यः।
उद्वाहजातकादिषु तत्समफललघुतरोक्तिरतः ॥२॥

प्रथम अध्याय

शाके नखाब्धिरहिते—ऽभ्रशराक्षिभक्ते ॥ शिष्यधीवृद्धिद अध्याय १
५९-६, अध्याय १३ १८ १९ ।

यह स्पष्ट करने के लिए इन्होंने कहा है। परन्तु इसी श्लोक में बताये गये नियम के अनुसार प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त अपनी खण्डखाद्यक की टीका की भूमिका[1] में बताते हैं कि लल्ल का समय इससे २५ वर्ष पश्चात शक ६७ है क्योंकि २५ से भाग देने की बात से प्रकट होता है कि यह बीज-संस्कार लल्ल ने ४२ शक से २५ वर्ष पीछे निश्चित किए थे। यह बात सेनगुप्त जी ने दूसरी तरह से भी सिद्ध की है। वे कहते हैं कि लल्ल ने नक्षत्रों के योगतारों के जो ध्रुवक दिये हैं वे ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत के ६ तारों के ध्रुवक से लगभग २ अंश अधिक हैं और दो तारों के ध्रुवक से लगभग १ १ अधिक हैं इसलिए इनका समय ब्रह्मगुप्त के समय से कम से कम ८५ वर्ष और अधिक से अधिक १४ वर्ष पश्चात होता है ब्रह्मगुप्त के पश्चात लल्ल के होने की बात भी बबुआ मिश्र की संपादित खण्डखाद्यक की टीका से भी सिद्ध होती है। सुधाकर द्विवेदी का मत तो इस बात से भी ठीक नहीं समझ पड़ता कि यदि लल्ल इतने पुराने होते तो ब्रह्मगुप्त जिन्होंने आर्यभट श्रीषेण आदि अपने पहले के ग्रंथकारों की चर्चा कई जगह की है इनकी चर्चा भी अवश्य करते। शंकर बालकृष्ण दीक्षित इनका समय ५६ शक के लगभग बताते हैं जिससे यह ब्रह्मगुप्त के समकालीन सिद्ध होते हैं। परन्तु यह बात भी ठीक नहीं समझ पड़ती क्योंकि तब बीज-संस्कार के लिए २५ से भाग देने की बात समझ में नहीं आती। प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त का ही अनुमान ठीक समझ पड़ता है।

शिष्यधीवृद्धिद तन्त्र

शिष्यधीवृद्धिद तन्त्र लल्ल का बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसे आर्यभटीय के आधार पर लिखा गया है और बीज-संस्कार देकर उसे शुद्ध करने की बात भी लिखी गयी है। इस ग्रन्थ के रचने का कारण[2] यह बताया जाता है कि आर्यभट या इनके शिष्यों के लिखे ग्रंथों से विद्यार्थियों के समझने में सुविधा नहीं होती थी इसलिए विस्तार के साथ उदाहरण देकर (कर्मक्रम से) यह ग्रंथ लिखा गया है। इसमें गणित या

पृष्ठ ५७।

विज्ञाय शास्त्रमलमार्यभटप्रणीतं।
तन्त्राणि यद्यपि कृतानि तदीयशिष्यैः॥
कर्मक्रमो न खलु सम्यगुदीरितस्तैः।
कर्म ब्रवीम्यहमतः क्रमशस्तदुक्तं ॥२॥

मध्यमाधिकार

बीजगणित संबंधी अध्याय नहीं हैं केवल ज्योतिष संबंधी अध्याय विस्तार के साथ लिये गये हैं और कुल श्लोकों की संख्या १ ० हैं। इस ग्रंथ के गणिताध्याय में मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, पर्वसम्भवाधिकार, ग्रहोदयास्ताधिकार, छायाधिकार, चन्द्रशृंगोन्नत्यधिकार ग्रहयुत्यधिकार, भग्रहयुत्यधिकार, महापाताधिकार और उत्तराधिकार नामक १३ अध्याय हैं। गोलाध्याय में छेद्यकाधिकार, गोलबन्धाधिकार, मध्यगतिवासना भूगोलाध्याय ग्रहभ्रम-संस्थाध्याय भुवनकोष मिथ्याज्ञानाध्याय यन्त्राध्याय और प्रश्नाध्याय हैं। इन अध्यायों के नाम से भी प्रकट होता है कि यह पुस्तक ब्राह्मस्फुट सिद्धांत के पश्चात लिखी गयी है और ज्योतिष संबंधी जिन बातों की कमी ब्राह्मस्फुट सिद्धांत में थी वह यहाँ पूरी की गयी है। शुद्ध गणित अंकगणित या बीजगणित संबंधी कोई अध्याय इसमें नहीं है जिससे प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्त के बाद जब ज्योतिष और गणित संबंधी विकास बहुत बढ़ गया तब इन दोनों शाखाओं को अलग-अलग विस्तार के साथ लिखने की परिपाटी चली किसी ने शुद्ध गणित पर विस्तार के साथ लिखना आरंभ किया जैसे श्रीधर और महावीर ने और किसी ने केवल ज्योतिष पर, जैसे लल्ल, पृथूदक स्वामी भटोत्पल आदि। यह आश्चर्य जनक है कि आर्यभट के सिवा किसी अन्य प्राचीन आचार्य का नाम शिष्यधीवृद्धिद में नहीं आया है।

रत्नकोष

शंकर बालकृष्ण दीक्षित[1] लिखते हैं कि रत्नकोष नाम का एक मुहूर्त ग्रंथ लल्ल का रचा हुआ है। इसका अनुमान प सुधाकर द्विवेदी अपनी गणक तरंगिणी म भी करते हैं क्योंकि मुहूर्त चिंतामणि की पीयूषधारा टीका में लल्ल के मत की चर्चा है परन्तु यह पुस्तक सुधाकर द्विवेदी के देखने में नहीं आयी थी न आधुनिक समय म और न ही किसी के देखने में आयी है।

पाटीगणित (अंकगणित) और बीजगणित की कोई पुस्तक भी लल्ल की बनायी हुई थी ऐसा सुधाकर द्विवेदी अनुमान करते हैं परन्तु यह पुस्तक भी अब उपलब्ध नहीं है। इन बातों का विचार करने से प्रकट होता है कि लल्ल एक विद्वान ज्योतिषी थ और आकाश के निरीक्षण के द्वारा ग्रहों को स्पष्ट करने की आवश्यकता समझते थे।

[1] भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ २१७ ।

पद्मनाभ

पद्मनाभ बीजगणित के आचार्य थे जिनके ग्रंथ का उल्लेख भास्कराचार्य ने अपने बीजगणित में किया है परन्तु इनके समय का पता किसी ने नहीं दिया है। दत्त और सिंह लिखते हैं कि इनका बीजगणित कहीं नहीं मिलता। शंकर बालकृष्ण दीक्षित लिखते हैं कि कोलब्रुक के मतानुसार इनका काल श्रीधर से पहले का है इसलिए ७ शक के लगभग ठहरता है।

सुधाकर द्विवेदी गणक तरंगिणी में व्यवहारप्रदीप नामक ज्योतिष ग्रंथ के कर्ता पद्मनाभ मिश्र का वर्णन करते हैं परन्तु वे इनसे भिन्न हैं। सुधाकर द्विवेदी ने निश्चय पूर्वक नहीं कहा है कि दोनों एक ही हैं या भिन्न।

श्रीधर

श्रीधर भी बीजगणित के आचार्य थे जिनका उल्लेख भास्कराचार्य ने बीजगणित में कई जगह किया है। डाक्टर दत्त और सिंह के मत से इनका समय ७५ ई के लगभग है जो ६७२ शक के लगभग ठहरता है। इनकी पुस्तक का नाम त्रिशतिका है जिसकी एक प्रति गणक-तरंगिणी के अनुसार काशी के राजकीय पुस्तकालय में और एक प्रति सुधाकर द्विवेदी के मित्र रामाजी ज्योतिर्विद के पास थी। इसमें ३ श्लोक हैं जिसके एक श्लोक से विदित होता है कि यह श्रीधर के किसी बड़े ग्रंथ का सार है। यह प्रधानतः पाटीगणित की पुस्तक है जिसमें श्रेढी व्यवहार, क्षेत्र व्यवहार, खात व्यवहार, चिति व्यवहार राशि व्यवहार, छाया व्यवहार आदि पर विचार किया गया है। सुधाकर द्विवेदी का मत है कि न्यायकन्दली नामक ग्रंथ के रचयिता भी यही श्रीधर हैं। उस ग्रंथ की रचना ९१३ शक में की गयी थी इसलिए श्रीधर का समय भी यही है। परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि इस मत का समर्थन न तो दीक्षित करते हैं और न डा दत्त और सिंह। दीक्षित कहते हैं कि महावीर के गणितसारसंग्रह नामक ग्रंथ में श्रीधर के मिश्रकव्यवहार के कुछ वाक्य आये हैं जिनसे प्रकट होता है कि श्रीधर महावीर के पहले हुए हैं और महावीर का समय भी सिद्ध

हिस्ट्री आव हिन्दू मैथिमैटिक्स भाग २ पृ १२ की पाद टिप्पणी।
भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ २२९।
गणक-तरंगिणी पृष्ठ २२।
भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ २१ ।

के मत[1] से ७७५ शक तथा डा० दत्त और सिंह के मत[2] से ८५० ई० या ७७२ शक होता है।

महावीर

महावीर बीजगणित और पाटीगणित के प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं जिनके ग्रंथ गणितसारसंग्रह के अनेक अवतरण डा० दत्त और सिंह ने अपने हिन्दूगणित के इतिहास में दिये हैं। इनका समय ८५० ई० अथवा ७७२ शक कहा जाता है। यह जैनधर्मी थे और जैनधर्मी राजा अमोघवर्ष के आश्रय में रहते थे। राष्ट्रकूट वंश के राजा अमोघवर्ष ७७५ शक के लगभग थे इसलिए यही इनका समय समझना चाहिए। दीक्षित के अनुसार गणितसारसंग्रह भास्कराचार्य की लीलावती के सदृश है परन्तु विस्तार में उससे बड़ा है। गणक-तरंगिणी में इनकी कहीं चर्चा नहीं है।

आर्यभट द्वितीय

आर्यभट द्वितीय गणित और ज्योतिष दोनों विषयों के अच्छे आचार्य थे। इनका बनाया हुआ महासिद्धान्त ग्रंथ ज्योतिष सिद्धान्त का अच्छा ग्रंथ है। इन्होंने भी अपना समय कहीं नहीं लिखा है। डा० दत्त और सिंह का मत[3] है कि ये ९५० ई० के लगभग थे जो शककाल ८७२ होता है। दीक्षित भी इनका समय लगभग ८७५ शक बताते हैं इसलिए यही समय ठीक समझना चाहिए। गणक-तरंगिणी में इनकी चर्चा तक नहीं है यद्यपि सुधाकर द्विवेदी ने इनके महासिद्धान्त का स्वयं सम्पादन किया है। सुधाकर द्विवेदी इसकी भूमिका में केवल इतना लिखते हैं कि भास्कराचार्य ने दृक्कर्मोदय के लिए जिन आर्यभट की चर्चा की है वह आर्यभट प्रथम नहीं हो सकते क्योंकि उनके ग्रंथ आर्यभटीय में दृक्कर्मोदय की गणना नहीं है परन्तु महासिद्धान्त में है इसलिए महासिद्धान्त के रचयिता आर्यभट दूसरे हैं जो भास्कराचार्य से पहले के हैं। यही बात दीक्षित भी लिखते हैं। परन्तु यह ब्रह्मगुप्त के पीछे हुए हैं क्या ये ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की जिन बातों का खण्डन किया है वे आर्यभटीय से मिलती हैं महासिद्धान्त से नहीं। महासिद्धान्त से तो प्रगट होता है कि ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की जिन-जिन बातों का खण्डन किया है वे इसमें सुधार दी गयी

[1] भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ २३१।
[2] हिस्ट्री आव हिन्दू मैथिमैटिक्स, भाग १ पृष्ठ १०।
[3] हिस्ट्री आव हिन्दू मैथिमैटिक्स भाग १, पृष्ठ ८९।

है। कुट्टक की विधि में भी आर्यभट प्रथम भास्कर प्रथम तथा ब्रह्मगुप्त की विधियों से कुछ उन्नति दिखायी पड़ती है इसलिए इसमें संदेह नहीं है कि आर्यभट द्वितीय ब्रह्मगुप्त के बाद हुए हैं।

ब्रह्मगुप्त और लल्ल ने अयन-चलन के संबंध में कोई चर्चा नहीं की है परंतु आर्यभट द्वितीय ने इस पर बहुत विचार किया है। मध्यमाध्याय के श्लोक ११ १२ में इन्होंने अयनबिन्दु को ग्रह मानकर इसके कल्पभगण की संख्या ५७८१५९ लिखी है जिससे अयनबिन्दु की वार्षिक गति १७३ विकला होती है जो बहुत ही अशुद्ध है। स्पष्टाधिकार में स्पष्ट अयनांश जानने के लिए जो रीति बतायी गयी है उससे प्रकट होता है कि इसके अनुसार अयनांश २४ अंश से अधिक नहीं हो सकता और अयन की वार्षिक गति भी सदा एक-सी नहीं रहती कभी घटते-घटते शून्य हो जाती है और कभी बढ़ते-बढ़ते १७३ विकला हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि आर्यभट द्वितीय का समय वह था जब अयनगति के संबंध में हमारे सिद्धांतों में कोई निश्चय नहीं हुआ था। मुंजाल के लघुमानस में अयन-चलन के संबंध में स्पष्ट उल्लेख है जिसके अनुसार एक कल्प में अयनभगण १९९६६९ होता है जो वर्ष में ५९.९ विकला होता है। मुंजाल का समय ८५४ शक है इसलिए आर्यभट द्वितीय का समय इससे भी कुछ पहले होना चाहिए। महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के मत से इनका समय ८ शक के लगभग होना चाहिए।

इन्होंने लिखा है कि इनका सिद्धांत और पराशर का सिद्धांत दोनों एक साथ कलियुग के आरम्भ से कुछ वर्षों के बाद लिखे गये थे और इनकी ग्रह-गणना ऐसी है कि वेध से भी शुद्ध उतरती है। परंतु यह कोरी कल्पना है क्योंकि वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त लल्ल आदि किसी आचार्य ने इनकी पुस्तक की कोई चर्चा नहीं की है। इन्होंने सप्तर्षि की चाल के संबंध में भी वैसा ही लिखा है जैसा वराहमिहिर लिखते हैं जिससे जान पड़ता है कि सप्तर्षि १ वर्ष में एक नक्षत्र चलते हैं। परंतु यह भी कोरी कल्पना है। सप्तर्षि में ऐसी कोई गति नहीं है।

संख्या लिखने की नवीन पद्धति

इनकी पुस्तक में संख्या लिखने के लिए एक नवीन पद्धति बतायी गयी है जो आर्यभट प्रथम की पद्धति से भिन्न है। इसे 'कटपयादि' पद्धति कहते हैं क्योंकि

[1] एतत्सिद्धान्तद्वयमीषद्याते कलौयुगे जातम्।
स्वस्थानेदृक्तुल्या अनेन खेटाः स्फुटाः कार्याः ॥२॥
पराशरमताध्याय

१ के लिए क, ट, प, य अक्षर प्रयुक्त होते हैं २ के लिए ख ठ, फ, र, आदि। शून्य के लिए केवल ञ और न प्रयुक्त होते हैं।[1] संख्या लिखने के लिए अक्षरों को बायें से क्रमानुसार लिखते हैं ठीक वैसे ही जैसे अंकों से संख्याएँ लिखी जाती हैं। स्वर या उसकी मात्राओं का इस पद्धति में कोई मूल्य नहीं है। मात्राओं के जोड़ने से भी अक्षरों का वही अर्थ होता है जो बिना मात्रा के। ये केवल उच्चारण की सुविधा के लिए जोड़ दी जाती हैं। इस प्रकार क, का कि, कू आदि से १ अंक का ही बोध होता है। यह रीति आर्यभट प्रथम की रीति से सुगम है क्योंकि याद रखने का काम बहुत कम है। संक्षेप में यह रीति नीचे दी जाती है

क ट प य — १
ख ठ, फ, र — २
ग ड ब ल — ३
घ ढ भ व — ४
ङ, ण म श — ५
च त ष — ६
छ, थ स — ७
ज द ह — ८
झ, ध — ९
ञ न — ०

इस पद्धति के अनुसार आर्यभट प्रथम के उदाहरण में दिये गये एक कल्प में सूर्य और चन्द्रमा के भगण इस प्रकार लिखे जायेंगे

१ कल्प में सूर्य के भगण — भवडोरानेननुमीना

— ४३२

और १ कल्प में चन्द्रमा के भगण — मयवमगगलमननुना

— ५७७५३३३४ ।

इस प्रकार यह प्रकट होता है कि यह पद्धति लिखने और याद रखने के लिए सुगम है।

कगरुद् कटपयपूर्वा वर्णा वर्णक्रमाद्भवन्त्यङ्काः ।
ञनौ शून्यं प्रथमार्थे आ छेदे ऐ तृतीयार्थे ॥२॥

मध्यमाध्याय

[1] ति ११

इस ग्रन्थ में १८ अधिकार हैं और लगभग ६२५ आर्या छन्द हैं। पहले १३ अध्यायों के नाम वे ही हैं जो पूर्व सिद्धांत या ब्राह्मस्फुट सिद्धांत के ज्योतिष संबंधी अध्यायों के हैं केवल दूसरे अध्याय का नाम है पराशरमताध्याय। १४वें अध्याय का नाम गोलाध्याय है जिसमें ११ श्लोकों तक पाटीगणित या अंकगणित के प्रश्न हैं। इसके आगे के तीन श्लोकों में भूगोल के प्रश्न हैं और शेष ४१ श्लोकों में अहर्गण और ग्रहों की मध्यम गति के संबंध में प्रश्न हैं। १५वें अध्याय में १२ आर्या छन्द हैं जिनमें पाटीगणित क्षेत्रफल घनफल आदि विषय हैं। १६वें अध्याय का नाम भुवनकोश-प्रश्नोत्तर है जिसमें खगोल स्वर्गादि लोक भूगोल आदि का वर्णन है। १७वाँ प्रश्नोत्तराध्याय है जिसमें ग्रहों की मध्यगति संबंधी प्रश्न है। १८वें अध्याय का नाम कुट्टकाध्याय है जिसमें कुट्टक संबंधी प्रश्नों पर ब्राह्मस्फुट सिद्धांत की अपेक्षा कहीं अधिक विचार किया गया है। इससे भी प्रकट होता है कि आर्य भट द्वितीय ब्रह्मगुप्त के पश्चात हुए हैं।

मुंजाल या मंजुल

मुंजाल का समय प. सुधाकर द्विवेदी ने गणक-तरंगिणी पृष्ठ १९,२ में कौलब्रुक के मतानुसार भ्रमवश ५८४ शक लिख दिया है जो होना चाहिए ८५४ क्योंकि इन्होंने अयन लघुमानस नामक ग्रन्थ में ग्रहों का ध्रुवकाल ८५४ शक बताया है जिसको द्विवेदी जी भी उद्धृत करते हैं 'कृतेष्विभमिते शाके ८५४ मध्याह्ने रविवासरे चैत्रादौ मुंजकान् वक्ष्ये रविचन्द्रेन्दुतुङ्गकान्। इस समय की पुष्टि है इनके अयन-चलन संबंधी बातों से भी सिद्ध होती है। भास्कराचार्य द्वितीय ने[1] मुंजाल की बताई अयन गति लिखी है। मुनीश्वर ने अपनी मरीचि नामक टीका में मुंजाल के वचन[2] उद्धृत किये हैं जिनसे सिद्ध होता है कि मुंजाल के अनुसार एक कल्प में अयन के १९९६६९ चक्र होते हैं इससे अयन की वार्षिक गति १ कला के लगभग आती है जो प्रायः ठीक है। अल्बीरुनी के अनुसार इस पुस्तक में यह भी लिखा था कि उस समय अयनांश ६ ५ था। इसलिए यह निश्चित है कि मुंजाल का समय ८५४ शक या ९३२ ई॰ है।

[1] गोलबन्धाधिकार, १८।

[2] तद्भगणाः कल्पे स्युर्गोरसरसगोंकचन्द्र १९९६६९ मिताः॥ भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृ ३३३।

मुंजाल एक अच्छे ज्योतिषी थे इसमें कोई सन्देह नहीं। तारों का निरीक्षण करके नयी बातें निकालने का श्रेय इनको मिलना चाहिए। इनके पहले अयन-गति के सम्बन्ध में किसी पौरुष सिद्धान्त-ग्रन्थ में कोई चर्चा नहीं है। दूसरी महत्त्व की बात इनकी चन्द्र सम्बन्धी है। इनके पहले किसी भारतीय ज्योतिषी ने नहीं लिखा था कि चन्द्रमा में मन्दफल संस्कार के सिवा और कोई संस्कार भी करना चाहिए। परन्तु इन्होंने यह स्पष्ट लिखा है[1] इसकी चर्चा सुधाकर द्विवेदी[2] ने भी की है।

लघुमानस मुंजाल का लिखा ग्रन्थ है जिसमें ज्योतिष सम्बन्धी आठ अधिकार हैं। यह बृहन्मानस नामक ग्रंथ का संक्षिप्त रूप है जैसा अल्बेरूनी लिखते हैं। बृहन्मानस के कर्ता कोई मनु हैं इस ग्रन्थ की टीका उत्पल ने लिखी है इसलिए इसका समय ८   शक के लगभग है।

उत्पल

उत्पल या भट्टोत्पल ज्योतिष ग्रन्थों के बड़े भारी टीकाकार थे। बृहज्जातक की टीका में इन्होंने लिखा है कि ८८८ शक (९६६ ई०) के चैत्र शुक्ल ५ गुरुवार को इसकी टीका लिखी गयी और बृहत्संहिता की टीका में लिखा गया है कि ८८८ शक की फाल्गुन कृष्ण द्वितीया गुरुवार को यह विवृति लिखी गयी। दीक्षित ने इस पर शंका प्रकट की है कि ये संवत गत नहीं हैं वर्तमान हैं परन्तु उनकी यह शंका निर्मूल जान पड़ती है। ये दोनों गत शक संवत हैं। दूसरी तिथि अमान्त फाल्गुन मास की है जिसे उत्तर भारत की परिपाटी के अनुसार चैत्र कृष्ण कहा जा सकता है। खण्डखाद्यक की टीका इससे भी पहले लिखी गयी थी क्योंकि बृहत्संहिता की टीका में इसकी चर्चा है। लघुजातक पर भी इनकी टीका है।

बृहत्संहिता की टीका से पता चलता है कि इन्होंने प्राचीन ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन किया था। वराहमिहिर ने भिन्न-भिन्न प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर बृहत्संहिता की रचना की थी उन सब ग्रन्थों के अवतरण देकर इन्होंने अपनी टीका की रचना

[1] चन्द्रोच्चकर्म्मान्तरेण रविचन्द्रान्तरेण च स्पष्टचन्द्रे तृतीयमपरं चान्द्रसंस्कारञ्च पूर्वाचार्यप्रणीतसंस्कारतो विलक्षणं प्रतिपादितं। अयं संस्कारश्च इदानीम् ईवेक्शन् नामकसंस्कारवत् प्रतिभाति। [गणकतरंगिणी पृ० २]

[2] भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृ० २३४।

[3] वही, पृष्ठ २३४।

की है[1]। इससे यह भी पता चलता है कि वराहमिहिर के पहले संहिता पर ८, १ आचार्यों ने ग्रंथ लिखे थे। इस टीका में सूर्य-सिद्धांत के जो वचन उद्धृत किये गये हैं वे इस समय के सूर्य-सिद्धांत में नहीं मिलते। वराहमिहिर के पुत्र की लिखी षट्पंचाशिका की भी इन्होंने टीका लिखी है, जिसमें शुभाशुभ प्रश्न पर विचार किया गया है।

पृथूदक स्वामी

पृथूदक स्वामी ने ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत पर एक टीका लिखी है। भास्कराचार्य द्वितीय ने अपने ग्रंथों में इनकी चर्चा कई स्थानों पर की है। दीक्षित के मत से यह भटोत्पल के समकालीन हैं। परन्तु बबुआ मिश्र की सम्पादित खण्डखाद्यक की आमराज की टीका में लिखा है[2] कि शक ८ में इन्होंने अयनांश ६३ अंश देखा था। इस प्रकार इनका समय मुंजाल से भी पहले का सिद्ध होता है। परन्तु भास्कराचार्य आदि ने इसका उल्लेख कहीं नहीं किया है। इन्होंने खण्डखाद्यक की टीका भी की है जिसकी चर्चा प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त अपनी टीका में करते हैं।[3]

श्रीपति

श्रीपति ज्योतिष की तीनों धाराओं के अद्वितीय पंडित थे। इनके लिखे ग्रंथ हैं सिद्धांतशेखर, श्रीकोटिकरण रत्नमाला (मुहूर्त ग्रंथ) और जातक-पद्धति (जातक ग्रन्थ)। श्रीकोटिकरण में गणित का जो उदाहरण दिया गया है उसमें ९६१ शक[4] की चर्चा है इसलिए श्रीपति का समय इसी के लगभग सन् १०३९ ई० हो सकता है। प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त[5] के अनुसार श्रीपति के पहले किसी भारतीय ज्योतिषी ने काल-समीकरण के उस भाग का पता नहीं लगा पाया था जो रविमार्ग की तिर्यकता के कारण उत्पन्न होता है।

वही, पृष्ठ २१५।

चतुर्वेदपृथूदकस्वामिना त्वेतत्तद् बलमित्यभिहितम्। एतस्मिन् शकाब्दे सम्पाते सार्द्धाः षड्भागा इति। कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित और बबुआ मिश्र की सम्पादित खण्डखाद्यक की टीका पृ १८।

भूमिका २१ १४।

[illegible] गणक-तरंगिणी, पृष्ठ ३ ।

खण्डखाद्यक की अंग्रेजी टीका, पृष्ठ ९१।

भोजराज

राजमृगाङ्क नामक करणग्रन्थ के बनाने वाले राजा भोज कहे गये हैं। यह ग्रन्थ ब्रह्मसिद्धान्त के ग्रहों में बीज-संस्कार देकर बनाया गया है। इसका आरम्भ काल शक ९६४ है[1] और इसी समय के ग्रहों का क्षेपक[2] दिया गया है। यह नहीं कहा जा सकता कि इसके रचने वाले स्वयं राजा भोज हैं अथवा उनका आश्रित कोई ज्योतिषी। इस पुस्तक का आदर चार पाँच सौ वर्ष रहा। इसमें मध्यमाधिकार और स्पष्टाधिकार के केवल ९९ श्लोक हैं। अयनांश जानने का नियम भी दिया गया है।

महादेव

महादेव का लिखा करणप्रकाश नामक एक करणग्रन्थ है। इसका आरम्भ १ १४ शक (१ ९२ ई) में किया गया था और इसका आधार आर्यभटीय है। यहाँ भी गणना के लिए आर्यभट के मुखाङ्कों में लल्ल के बीज-संस्कार देकर काम लिया गया है। क्षेपक चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार शाके १ १४ का है। इसमें ९ अधिकार हैं जिनमें ज्योतिष संबंधी सभी बातें आ गयी हैं। इस ग्रंथ में ४४५ शक को शून्य अयनांश का समय माना गया है और अयनांश की वार्षिक गति एक विकला मानी गयी है। यह ग्रन्थ आर्य पक्ष का है इसलिए दक्षिण के माध्व सम्प्रदाय के वैष्णव इसी के अनुसार एकादशी व्रत का निर्णय करते आ रहे हैं।

शतानन्द

भास्वतीकरण नामक करणग्रंथ वराहमिहिर के सूर्य-सिद्धान्त के आधार पर बनाया गया है। इसके लेखक शतानन्द हैं जिन्होंने ग्रंथ का आरम्भ १ २१ शक (१ ९९ ई) में किया था। यह ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध था। मलिक मोहम्मद जायसी

भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृ॰ २३८।

किसी पुस्तक की ग्रहगणना के आरंभ काल में सूर्य चंद्र आदि ग्रहों की जो स्थिति होती है उसे क्षेपक कहते हैं। इसको आगे होने वाली ग्रह की गति में जोड़ देने से उस समय की ग्रह-स्थिति ज्ञात हो जाती है।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृ॰ २३९।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृ॰ २३४।

ने अपनी पचांगत में इसकी चर्चा की है। इसकी कई टीकाएँ संस्कृत में है। इस ग्रंथ की कुछ विशेषताएँ नीचे दी जाती है

ग्रहो का क्षेपक शक १ २१ की स्पष्ट मेष संक्रान्ति काल (गुरुवार) का है। दूसरी विशेषता यह है कि इसमें अहर्गण की गणना से ग्रहों को स्पष्ट करने की रीति नहीं है वरन् ग्रहो की वार्षिक गति के अनुसार है जिससे गणना करने म बडी सुविधा होती है गुणा भाग नही करना पडता केवल जोडने से काम चल जाता है। तीसरी विशेषता यह है कि इन्होने शताश पद्धति से काम किया ह अर्थात राशि अश कला विकला आदि लिखने की जगह राशि के सवें भागो में अथवा नक्षत्र के सवें भागों में ग्रह-स्थिति बतायी है। उदाहरणत चन्द्रमा की एक वर्ष की गति ९९५२ नक्षत्र (शताशो में) बतायी गयी है जिसका अर्थ है[1]

$$\frac{९९५२}{१} \text{ नक्षत्र} = \frac{९९५२}{१} \times ८ \quad \text{कला}$$

$$= ७९९१३ \text{ कला}$$

$$= ४ \text{ राशि } १२ \text{ अश } ४१ \text{ कला } ४ \text{ विकला।}$$

शनि का क्षेपक ५९४ शताश राशि है जिसका अर्थ दशमलव भिन्न में हुआ ५ ९४ राशि। इस प्रकार प्रकट है कि शतानन्द ने दशमलव भिन्न का व्यावहारिक प्रयोग किया था। शायद शताश पद्धति के पक्षपाती होने के कारण उन्होंने अपना नाम भी शतानन्द रक्खा था।

भास्वती में तिथिधुवाधिकार, ग्रहधुवाधिकार, स्फुट तिथ्यधिकार, ग्रहस्फुटा धिकार, त्रिप्रश्न चन्द्रग्रहण सूर्य-ग्रहण परिलेख नामक आठ अधिकार है। इसमें शक ४५ शून्य अयनाश का वर्ष माना गया है और अयनाश की वार्षिक गति १ कला मानी गयी है।

भास्वती की कई टीकाएँ हुई है। एक टीका हिंदी भाषा में सवत १४८५ वि (शक १३५ १४२८ ई) म वनमाली पडित ने की थी जिसकी एक खडित प्रति काशी के सरस्वती भवन में है।

इस समय के आस-पास और कई ज्योतिषी हो गये है जिन्होने करणग्रथो की रचना की है परन्तु इनका नाम म गिनाकर अब हम प्रसिद्ध भास्कराचार्य का वर्णन करते जिनकी कीर्ति सात सौ वर्ष तक फैली रही और जिनकी बनायी पुस्तकें

भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृ २४७
गणक-तरगिणी पृ ३३

सिद्धान्तशिरोमणि और लीलावती अब तक भारतीय ज्योतिष के विद्यार्थियों को पढ़ाई जाती हैं। इसी नाम के एक ज्योतिषी आर्यभट प्रथम की शिष्य-परंपरा में भी थे इसलिए इनका नाम भास्कराचार्य द्वितीय रखा जायगा।

भास्कराचार्य द्वितीय

भास्कराचार्य द्वितीय ने अपना जन्म-स्थान सह्याद्रि पर्वत के निकट विज्जडविड ग्राम लिखा है परन्तु पता नहीं इसका वर्तमान नाम क्या है। इन्होंने अपना जन्मकाल तथा ग्रन्थनिर्माण-काल स्पष्ट भाषा में लिखा है[1]। इनका जन्म शक १०३६ (१११४ ई०) में हुआ था और ३६ वर्ष की आयु में इन्होंने सिद्धान्त-शिरोमणि की रचना की। करण-कुतूहल ग्रन्थ का आरम्भ ११०५ शक में हुआ था इसलिए यही इसका रचनाकाल है जो ११८३ ई० होता है। इससे प्रकट होता है कि करण-कुतूहल की रचना ६९ वर्ष की अवस्था में की गयी थी। इनके बनाये चार ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं १—सिद्धान्त-शिरोमणि दो भागों में जिनके नाम गणिताध्याय और गोलाध्याय हैं २—लीलावती ३—बीजगणित और ४—करण-कुतूहल। सिद्धान्तशिरोमणि पर इन्होंने स्वयं वासना भाष्य टीका लिखी है जो सिद्धान्त-शिरोमणि का अंग समझी जाती है और साथ ही छपती है।

लीलावती और बीजगणित भी यथार्थ में सिद्धान्त-शिरोमणि के ही अंग माने गए हैं (और इनके अन्त में यह लिख भी दिया गया है) क्योंकि सिद्धान्त-ज्योतिष का पूरा ज्ञान तभी हो सकता है जब विद्यार्थियों को पाटीगणित का जिसमें क्षेत्रफल घनफल आदि विषयों का भी समावेश है तथा बीजगणित का आवश्यक ज्ञान हो।

लीलावती

लीलावती नामक ग्रंथ में लीलावती नामक लड़की को संबोधन करके प्रश्नोत्तर के रूप में पाटीगणित क्षेत्रमिति आदि के प्रश्न बहुत रोचक ढंग से बताये गये हैं। इसमें वे सब नियम आ गये हैं जिनकी चर्चा ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त के शुद्ध गणित भाग

[1] रसगुणपूर्णमहीसमशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः।
रसगुणवर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः ॥५८॥
गोलाध्याय का प्रश्नाध्याय

में की गयी है। अंत में गणितपाश (क्रमचय¹) नामक एक अध्याय और है। इसकी भाषा बड़ी कठिन है। इसकी संस्कृत और हिंदी टीकाएँ बनी हैं जो बम्बई और लखनऊ से प्रकाशित होकर ज्योतिष के विद्यार्थियों के काम में आती हैं। इसकी कई प्राचीन टीकाएँ भी हैं जैसे गंगाधर की गणितामृत सागरी (१३४२ शक) ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ की बुद्धिविलासिनी (१४६७ शक) धनेश्वर दैवज्ञ की लीलावतीभूषण मुनीश्वर की लीलावतीविवृति (१५४७ शक) महीधर की लीलावती-विवरण रामकृष्ण की गणितामृतलहरी नारायण की पाटीगणित-कौमुदी रामकृष्ण देव की मनोरंजना रामचंद्र कृत लीलावती-भूषण विश्वरूप की निसृष्टदूती सूर्यदास की गणितामृतकूपिका इत्यादि। वर्तमान काल में पं० बापूदेव शास्त्री की टिप्पणी और पं० सुधाकर द्विवेदी की उपपत्ति सहित टीकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं।

अन्य ग्रंथ

भास्कराचार्य के बीजगणित पर कृष्ण दैवज्ञ की बीजनवांकुर (शक १५२४) और सूर्यदास की टीका प्रसिद्ध है। उपपत्ति के साथ इसकी टीका पं० सुधाकर द्विवेदी ने भी की है। इनके अतिरिक्त और भी कई टीकाएँ हैं।

सिद्धांत-शिरोमणि (गणिताध्याय और गोलाध्याय) ज्योतिष सिद्धांत का एक उत्तम और प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें ज्योतिष सिद्धांत की सभी बातें विस्तार और उपपत्ति के साथ बतायी गयी हैं जिनका वर्णन ब्राह्मस्फुट सिद्धांत अथवा महासिद्धांत में है। इसकी अनेक टीकाएँ हैं। ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ की एक टीका है। नृसिंह ने वासनाकल्पलता अथवा वासनावार्तिका नामक टीका १५४३ शक में लिखी थी मुनीश्वर या विश्वरूप की मरीचि नामक टीका बहुत उत्तम और विस्तार के साथ १५५७ शक में लिखी गयी थी। आर्यभटीय के टीकाकार परमादीश्वर ने सिद्धांत-दीपिका नामक टीका की थी। रंगनाथ की मितभाषिणी नामक टीका शक १५८ के लगभग लिखी गयी थी। इस ग्रंथ का ब्योरेवार विवरण आगामी अध्याय में दिया जायगा।

¹ क्रमचय वह संख्या है जो बताती है कि दिये हुए समूह में से किसी में की हुई संख्या के बराबर वस्तुएँ निकाल कर कुल कितने विभिन्न क्रमों में रक्खी जा सकती हैं।

अध्याय १४

सिद्धांतशिरोमणि और करण-कुतूहल

गोलप्रशंसा

सिद्धांतशिरोमणि के गोलाध्याय में पन्द्रह अध्याय हैं जिनमें से पहले का नाम गोलप्रशंसा है। मंगलाचरण के बाद इस अध्याय में बताया गया है कि ज्योतिषी को क्या-क्या जानना चाहिए। इस पर बल दिया गया है कि शुभाशुभ बताने के लिए भी गणित और फलित-ज्योतिष जानना आवश्यक है। अंतिम श्लोक में भास्कराचार्य ने अपनी पुस्तक की प्रशंसा इन शब्दों में की है

> गोलं श्रोतुं यदि मतिर्भास्करीयं शृणु त्वं
> नो संक्षिप्तो न च बहुवृथाविस्तरः शास्त्रतत्त्वम्।
> लीलागम्यः सुललितपदः प्रश्नरम्यः स यस्मात्
> विद्वन्! विद्वत्सदसि पठतां पण्डितोक्तिं व्यनक्ति ॥१॥

अर्थ—हे पंडित! यदि तुम्हारी इच्छा गणित-ज्योतिष सुनने की है तो भास्कराचार्य कृत पुस्तक को सुनो। यह न तो संक्षिप्त है और न व्यर्थ विस्तृत ही है। उसमें शास्त्र का तत्त्व है। उसमें सुन्दर पद हैं और मनोरम प्रश्न हैं। यह सुगमता से समझी जा सकती है और उसे पंडितों की सभा में सुनाने से पंडिताई प्रकट होती है[1]।

गोलस्वरूप प्रश्नाध्याय

दूसरा अध्याय गोलस्वरूप प्रश्नाध्याय है। इसमें दस श्लोक हैं और सभी में पाठक ग्रंथ के रचयिता से प्रश्न पूछता है। उदाहरणतः प्रथम श्लोक का यह अर्थ है

[1] पंडित गिरजाप्रसाद द्विवेदी का सटीक संस्करण (नवलकिशोर प्रेस लखनऊ); यहाँ अर्थ अधिकतर इसी पुस्तक से लिये गये हैं।

यह पृथ्वी ग्रह-नक्षत्रों से वेष्टित भ्रमण करते हुए राशिचक्र के भीतर, आकाश में कैसे ठहरी है जिससे नीचे नहीं गिर सकती ? इसका स्वरूप और मान क्या है ?

ऐसे प्रश्न भी हैं जैसे यह कि है गोचर ! रविमार्ग के बराबर-बराबर बारह भाग जो बारह राशियाँ हैं बराबर समयों में क्यों नहीं उदित होते ? और वे सब देशों में एक समय में क्यों नहीं उदित होते ?

भुवनकोश

भुवनकोश नामक तीसरे अध्याय में विश्व का रूप बताया गया है। कहा गया है कि पृथ्वी क्रमानुसार चन्द्र बुध शुक्र, रवि मंगल बृहस्पति और नक्षत्रों की कक्षाओं से घिरी हुई है। इसका कोई आधार नहीं है केवल अपनी शक्ति से स्थिर है। इसके पृष्ठ पर सदा असुर, मनुष्य देव और दैत्य आदि के सहित दुनिया स्थित है। कदम्ब के फूल की गाँठ जैसे चारों ओर केसरों से घिरी रहती है वैसे ही पृथ्वी भी चारों ओर पर्वत उद्यान ग्राम मन्दिर आदि से घिरी है।

उनके मत का जोरदार शब्दों में खंडन किया गया है जो कहते थे कि पृथ्वी किसी आधार पर टिकी है। लिखा है कि 'यदि भूमि किसी साकार वस्तु के आधार पर स्थित है तो उस आधार का भी कोई आधार होना चाहिए। जो प्रत्येक वस्तु के लिए किसी दूसरे आधार की कल्पना करते चलें तो अनवस्था हो जायगी। यदि अंत में निजी शक्ति की कल्पना की जाय तो यह पहले ही से क्यों न की जाय ?

पृथ्वी में आकर्षण-शक्ति है उससे यह आकाश में फेंकी गयी भारी वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है और यह भारी वस्तु गिरती हुई दिखायी पड़ती है परन्तु पृथ्वी कहीं नहीं गिर सकती क्योंकि आकाश सब ओर समान है ।

बौद्धों के कथन का कि पृथ्वी गिरती है और जैनों के कथन का कि दो सूर्य हैं दो चन्द्र हैं जिनका एकान्तर से उदय होता है बहुत कल्पपूर्वक खंडन किया गया है। उनके मत का भी खंडन किया गया है जो कहते हैं कि पृथ्वी समतल (सपाट) है और मेरु पर्वत के पीछे सूर्य के छिप जाने से रात्रि होती है। बताया है कि जैसे वृत्त की परिधि का छोटा-सा भाग सीधा जान पड़ता है वैसे ही "इस बड़ी भारी भूमि की

न्याय में एक प्रकार का दोष यह उस समय होता है जब तर्क करते-करते कुछ परिणाम न निकले और तर्क भी समाप्त न हो जैसे कारण का कारण और फिर उसका कारण, फिर उसका भी कारण—इति-अलम सागर।

है कि उनमें स्वगति भी होती है। जैसे कुम्हार के चाक पर चींटी विलोम दिशा में चलने पर भी चाक के घूमने के कारण कुछ विलोकर आगे ही बढ़ती है, इसी प्रकार सूर्य आदि भी।

फिर, श्लोक ८ से अध्याय के अंत तक (श्लोक २५ तक) सौर वर्ष, चांद्र मास और अधिमास की परिभाषाएँ तथा उनके मान, कितने-कितने दिनों पर अधिमास लगते हैं, अधिमास संबंधी कुछ अन्य प्रश्न और उनके उत्तर, तथा कुछ अन्य बातें बतायी गयी हैं। सौर वर्ष आदि बताने की वह रीति नहीं अपनायी गयी है जो सूर्य-सिद्धांत में है। यहाँ बताया गया है कि सौर वर्ष ३६५ दिन १५ घड़ी १ पल और २२/१ विपल का होता है, सूर्य-सिद्धांत में युग में वर्षों की संख्या बतायी गयी थी।

ज्योत्पत्ति और छेद्यकाधिकार

पाँचवाँ अध्याय ज्योत्पत्ति है। इसमें त्रिकोणमिति के कुछ सूत्र दिये गये हैं और कुल ९ श्लोक हैं। आगामी अध्याय छेद्यकाधिकार है। इसमें वे नियम दिये गये हैं जिनसे सूर्य, चंद्रमा और ग्रहों की स्फुट स्थितियाँ अर्थात वे स्थितियाँ जिनमें ये पिंड वस्तुतः दिखायी पड़ते हैं, जानी जा सकती हैं। इस अध्याय में दोनों सिद्धांत दिये गये हैं, एक तो वह जो सूर्य-सिद्धांत के संबंध में बताया गया है, अर्थात सूर्य या चंद्रमा एक छोटे वृत्त में चलता है जिसका केंद्र एक बड़े वृत्त में चलता है और दूसरा यह कि सूर्य आदि ग्रह वृत्त में चलते हैं परंतु पृथ्वी केंद्र पर नहीं, उससे हट कर है। भास्कराचार्य के मत से भूमि ब्रह्मांड के मध्य में अवश्य है परंतु सूर्य, चंद्र, ग्रहादि जिन वृत्तों में चलते हैं उनके केंद्र पृथ्वी से भिन्न हैं।

भास्कराचार्य ने छेद्यक उस चित्र को कहा है जिसमें सूर्य आदि किसी पिंड की कक्षा दिखायी जाय। छेद्यक बनाने की रीति विस्तार से बतायी गयी है। यह भी बताया है कि सूर्य और चंद्रमा का आभासी व्यास घटा-बढ़ा क्यों करता है। "अपने उच्च में स्थित रहने पर पिंड पृथ्वी से बहुत दूर रहता है और नीच में समीप रहता है। इसलिए पिंड का बिंब क्रमानुसार छोटा और बड़ा दिखायी पड़ता है। इसके बाद कुछ प्राचीन आचार्यों के मत का खंडन किया गया है।

गोल्यंत्राधिकार और त्रिप्रश्नवासना

सातवाँ अध्याय गोल्यंत्राधिकार है। इसमें बताया गया है कि कैसे बीच में काठ के गोले से पृथ्वी और उसके चारों ओर बाँस की छड़ी पर वृत्त बाँधकर चंद्र, ग्रह आदि की बातें प्रदर्शित की जा सकती हैं और ज्योतिष अध्ययन में काम आने वाली सामग्री-

र, क्षितिज आदि अनेक वृत्त कैसे दिखाए जा सकते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रकार
ा गोल केवल शिष्य को ज्योतिष समझाने के लिए है ग्रहों और नक्षत्रों की
स्थितियाँ जानने के लिए नहीं। यहाँ के वर्णन के अनुसार भी गोल वैसा ही बनेगा
ैसा सूर्य-सिद्धांत के संबंध में पहले बताया जा चुका है।

इसी अध्याय में अयनांश क्रांति शर आदि कई उपयोगी ज्योतिष परिमाण
ात करने के भी नियम दिए गए हैं।

आगामी अध्याय त्रिप्रश्नवासना है। उसमें सूर्योदय का समय जानने की रीति
तायी गयी है। वर्णन किया गया है कि कहाँ कब कितना दिन-मान होता है।
ताया गया है कि भूमध्यरेखा पर दिन-रात क्यों बराबर होते हैं। यह भी बताया
या है कि उत्तर ध्रुव वृत्त के भीतर (अर्थात् वृत्त के भीतर जिसका अक्षांश लगभग ६६
ंश होता है) दिन-रात की व्यवस्था कैसी होती है किस प्रकार वहाँ बहुत समय
क दिन ही बना रहता है पृथ्वी के ठीक उत्तर ध्रुव या दक्षिण ध्रुव पर क्या दिखायी
ेगा है और चंद्रमा पर दिन और रात किस प्रकार होते हैं। कहा गया है
े "पितर लोग चंद्रमा के पृष्ठ पर निवास करते हैं और इसलिए चंद्रमा को अपने
िर के नीचे मानते हैं। वे हमारी अमावस्या पर सूर्य को अपने सिर पर देखते हैं।
सलिए उस दिन उनका मध्याह्न होता है। चंद्रमा जब ६ राशि चल लेता है और
मारी पूर्णिमा होती है तब सूर्य चंद्रमा के नीचे चला जाता है और पितरों की अर्ध-
ात्रि होती है।

कोई राशि क्यों शीघ्र उदित होती है कोई क्यों देर में इसका यह उत्तर दिया
या है "रविमार्ग का जो भाग तिरछा है वह थोड़े काल में और जो सीधा है वह
धिक काल में उदित होता है फिर बताया है कि कौन-सी राशियाँ अधिक तिरछी
ैं कौन-सी प्राय सीधी। यह भी बताया गया है कि कौन-से देश में कर्क और
मिथुन राशियाँ सदोदित रहेंगी अर्थात् क्षितिज के नीचे कभी जायँगी ही नहीं और
सी प्रकार के कई अन्य प्रश्नों का भी उत्तर दिया गया है। इस संबंध में लल्ला
ार्य का एक वचन असंगत बताया गया है।

अक्षांश जानने की रीति यों बतायी गयी है ध्रुव का वेध द्वारा जो उन्नतांश
और नतांश प्राप्त हो वे ही अक्षांश और लंबांश[1] हैं फिर विषुव के दिन के मध्याह्न
में जो सूर्य का नतांश और उन्नतांश हो वे क्रमानुसार अक्षांश और लंबांश
होते हैं।

[1] ९० में से अक्षांश को घटाने पर प्राप्त शेष को लंबांश कहा गया है।

इस अध्याय में कई एक परिभाषाओं की गणना की रीति बतायी गयी है और कहा गया है कि "इसी प्रकार विद्वान लोग अन्य हजारों भेदों की कल्पना करके शिष्यों को बतावें।

ग्रहणवासना छेद्यकर्मवासना और शृङ्गोन्नतिवासना

आगामी दो अध्यायों में ग्रहण की गणना बतायी गयी है। उसके बाद वाले अध्याय में बताया गया है कि चन्द्रमा के शृंग (नोक) किस दिशा में हैं यह कैसे जाना जाय। इन विषयों के कठिन होने के कारण अधिकांश बातों को यहाँ छोड़ दिया जा रहा है केवल एक दो अत्यंत सरल बातें चुन कर यहाँ रक्खी जाती हैं। प्रथम श्लोक में बताया गया है कि सूर्य-ग्रहण क्यों कहीं से दिखायी पड़ता है कहीं से नहीं "जिस प्रकार मेघ सूर्य को ढँक लेता है वैसे ही चन्द्रमा सूर्य से नीचे चल कर सूर्य-बिंब को अपने काले बिंब से ढक लेता है। इसलिए सूर्य-ग्रहण में पश्चिम दिशा में स्पर्श और पूर्व दिशा में मोक्ष होता है। चन्द्रमा और सूर्य की दूरियों में भेद रहने से सूर्य किसी देश में ढँका हुआ दिखायी पड़ता है और किसी में नहीं। चन्द्रग्रहण में छादक (ढँकने वाला) बड़ा होता है। इसलिए ग्रहण के समय दिखायी पड़ने वाले चन्द्रमा के दोनों शृंग मन्द (मोटे) होते हैं और ग्रहण की अवधि बड़ी होती है। परन्तु सूर्य-ग्रहण में छादक के छोटा होने से सूर्य के शृंग तीखे होते हैं और ग्रहण की अवधि छोटी होती है।

ग्रहण के ब्योरों को जानने के लिए चित्र खींचने की रीति विस्तार से बतायी गयी है।

शृङ्गोन्नतिवासना में यह भी बताया गया है कि चन्द्रमा में क्यों कलाएँ दिखायी पड़ती हैं।

यन्त्राध्याय

इस अध्याय का उद्देश्य प्रथम श्लोक में बताया गया है "काल के सूक्ष्म अवयवों का ज्ञान बिना यन्त्र के असम्भव है। इसलिए संक्षेप में कुछ यन्त्रों का वर्णन करता हूँ। उन यन्त्रों के नाम ये हैं गोल, नाडी-वलय, यष्टि, शंकु, घटी, चक्र, चाप, तुर्य, फलक और धी। परन्तु इन सब यन्त्रों में एक धी-यन्त्र सब से उत्तम है।

इनमें से गोल-यन्त्र तो वही है जो गोलबन्धाधिकार में बताया गया है।

नाडीवलय-यन्त्र के लिए लिखा है कि काठ का चक्र बना कर उसकी परिधि को घटी आदि में अंकित करे। बीच में कील चक्र के समतल से ध्रुव दिशा में गड़े, तो यन्त्र तैयार हो जायगा। कील की छाया देख कर इससे समय ज्ञात किया जाता

है। चक्र के धरातल को इच्छानुसार चाहे क्षैतिज समतल में अथवा विषुवत के समतल मे स्थिर किया जा सकता है।

यष्टि का अर्थ है छड़ी लकड़ी या स्तंभ। नाम से ही यंत्र का ज्ञान हो जाता है। बनाने के लिए कोई ब्योरा नही दिया गया है। शंकु के लिए सिद्धांत शिरोमणि में बहुत कम ब्योरा है परंतु शंकु क्या होता था वह अन्य ग्रंथों से ज्ञात है (पृष्ठ १४२ देखें)। शंकु को हाथीदांत का बनाना चाहिए केवल यही विशेष बात बतायी गयी है।

आधे घड़े के आकार का तांबे का घटी-यंत्र बनता था। पेंदी में एक छेद रहता था। पानी में इसके डूबने के समय से समय का ज्ञान होता था।

"किसी काष्ठ या धातु का वृत्ताकार चक्र-यंत्र बना कर उसकी परिधि को ६० भागों में अंकित करे और डोरी की जंजीर से लटका दे। केंद्र में एक कील रहनी चाहिए'। इस प्रकार चक्र-यंत्र ऊर्ध्वाधर धूप-घड़ी का काम देता था। इससे सूर्य का उन्नतांश नापा जाता था।

"वृत्त का आधा चाप-यंत्र और चाप का आधा तुर्य-यंत्र कहा जाता है।"

फलक-यंत्र और धी-यंत्र

फलक-यंत्र के वर्णन में भास्कराचार्य ने बहुत भूमिका बांधी है। एक श्लोक में यंत्र की प्रशंसा की गयी है। दूसरे में सूर्य-वंदना और यंत्र की पुन प्रशंसा। फिर इसे बनाने के लिए निम्न आदेश है

"फलक-यंत्र को आयताकार, ९ अंगुल चौड़ा और १८ अंगुल लंबा बनाना चाहिए। लंबाई के बीच में डोरी जंजीर लगाकर इसे लटका दे जिससे यह घूम सके (और सदा ऊर्ध्वाधर रहे)। फिर इस पर विविध रेखाओं आदि के अंकित करने के लिए आदेश है। बीच में कील रहेगी और इसी कील के सहारे ९ अंगुल लंबी अंगुल भर
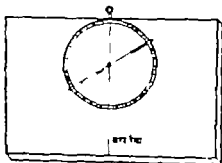
फलक-यंत्र।
यह चित्र भास्कराचार्य के वर्णन के अनुसार बनाया गया है।

चौड़ी आधा अंगुल मोटी पट्टी घूमा करेगी। इसमें छेद करके इसे कील पर इस प्रकार पिरोना चाहिए कि पट्टी घूम सके और घुमाने पर इसका एक किनारा केंद्रीय खड़ी रेखा पर पड़ सके।

यंत्र की उपयोग-विधि यों बतायी गयी है : "इस फलक यंत्र को इस प्रकार रखना चाहिए जिसमें इस यंत्र के दोनों ओर सूर्य की रश्मियाँ पड़ें" अर्थात यंत्र का समतल ऐसी दिशा में हो जाय कि सूर्य उसी समतल में रहे। फिर तो सूर्य का नत ताश कील की छाया से जाना जा सकता है। मध्य की पट्टी के किनारे को किसी तारे या ग्रह की दिशा में करके उसका भी नतांश नापा जा सकता है। वस्तुत यह यंत्र अरब लोगों के अस्तरलाबर (यंत्रराज) का पूर्वज जान पड़ता है (चित्र देखो)।

कुछ पाश्चात्यों की राय है कि भास्कराचार्य यंत्रों के उपयोग को बहुत आवश्यक नहीं समझते थे और इसलिए उन्होंने ज्योतिष की उन्नति क्रियात्मक रूप से नहीं की, केवल अच्छी गणना बतायी। यह विश्वास भास्कराचार्य के निम्न श्लोक पर आश्रित है

> अथ किमु पृथुतन्त्रैर्धीमतो भूरियंत्रैः
> स्वकरकलितयष्टेर्दत्तमूलाग्रदृष्टे ।
> न तदविदितमानं वस्तु यद्दृश्यमानं
> दिवि भुवि च जलस्थं प्रोच्यतेऽथ स्थलस्थम् ॥४॥

अर्थ—बुद्धिमानों को बड़े तन्त्र और बहुत-से यंत्रों से क्या प्रयोजन है? हाथ में लकड़ी लेकर, उसके मूल में आँख लगाकर, वेध करने से आकाश भूमि और जल में दिखायी पड़ने वाली सब वस्तुओं का मान ज्ञात हो सकता है।

यही धी-यंत्र है (धी—बुद्धि)। इसके उपयोग की विधि यों बतायी गयी है 'जो हाथ में यष्टि लेकर आँख

धी-यंत्र।
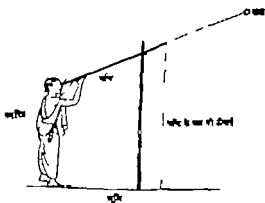
यष्टि के अग्र तथा आँख की ऊँचाइयाँ और दोनों के बीच की क्षितिज दूरी जान कर आकाशीय पिंडों का उन्नतांश इस यंत्र से नापा जाता था।

का मूल और अग्र बेध कर अपना और बांस का अंतर और ऊँचाई जान लेता है, कहो वह यंत्र-विशारद क्या नहीं जानता ?"

यद्यपि इस अध्याय के प्रथम श्लोक में धी-यंत्र की बड़ी प्रशंसा की गयी है तो भी इसमें संदेह नहीं कि यह यंत्र बहुत ही स्थूल है। भास्कराचार्य ने धी-यंत्र पर कई एक उदाहरण दिये हैं जिनमें गणित के दाँव-पेंच बहुत सुन्दर हैं, परंतु स्वयं यंत्र कितनी सूक्ष्मता से नाप सकेगा इसकी उपेक्षा की गयी है। कुछ प्रश्न तो विशुद्ध त्रिकोणमिति के हैं। उदाहरणतः एक प्रश्न यह है : "हे मित्र ! एक सम भूमि में ऊँचे नीच बाँस का मूल किसी घर आदि से छिपा हुआ है, केवल उसका अग्र दिखायी देता है। यदि तुम यहीं बैठकर उसकी ऊँचाई और यहाँ से दूरी बताओ तो हम धीयंत्र-विशारदों में तुम को श्रेष्ठ मानें।" इसका उत्तर भास्कराचार्य ने स्वयं दिया है जिसमें दो स्थानों से बाँस के अग्र के उन्नतांशों को नाप कर त्रिकोणमिति से बाँस की दूरी और ऊँचाई की गणना की रीति बतायी गयी है।

स्वयंवह यंत्र

इसके बाद ऐसे यंत्र का वर्णन है जो स्वयं चले। आधुनिक विज्ञान का कहना है कि जब तक बाहर से पेट्रोल आदि से उत्पन्न हुई या अन्य प्रकार से आयी ऊर्जा (एनर्जी) खर्च न होगी तब तक कोई यंत्र स्वयं चलता न रहेगा। इसलिए स्पष्ट है कि भास्कराचार्य का बताया हुआ यंत्र कभी बन न पाया होगा। निर्माण-विधि यों बतायी गयी है : अच्छे काठ का खरादा हुआ एक चक्र बनाओ। उसकी परिधि में बराबर-बराबर दूरियों पर आरे लगाओ। ये आरे (त्रिज्या की सीध में न रह, उनसे सापेक्ष) एक ओर कुछ झुके रहें। आरे सब एक समान छिद्रवान (पोले) हों। इन आरों के छिद्रों में इतना पारा छोड़ो कि वे आधे भर जायें। इसके बाद छिद्रों के मुख को अच्छी तरह बंद कर दो। फिर इस चक्र को खराद की भाँति दो आधारों में टिकाये हुए लोहदंड के बीच में कस दो। तब (धक्का देने पर) यह चक्र स्वयं घूमता रहेगा।

इसके बाद एक नलकारी का वर्णन है जो स्वयं बराबर चलती रहेगी। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह भी बेकार है—ऐसा नल नहीं चलती रह सकती है।

जल से परिधि तक जाने वाले अंशों को आरा कहते हैं।
इति १४

भास्कराचार्य ने स्वय कहा है कि इन मतो का गोल से कोई सबध नही है केवल पूर्व आचार्यों के कथनानुसार यहाँ पर वर्णन किया गया है ।

अंतिम तीन अध्याय

तेरहवाँ अध्याय 'ऋतुवर्णन' है । इसमें पद्रह श्लोको में ऋतुओ का वर्णन रसिकतापूर्वक किया गया है । ज्योतिष से इस अध्याय का कोई सबध नहीं है । भास्कराचार्य ने स्वय लिखा है कि यहाँ ऋतुवर्णन के बहाने कवियो की प्रीति के लिए रसिको का मन हरनेवाली यह छोटी कविता दी गयी है ।

आगामी अध्याय प्रश्नाध्याय है । इसमें ज्योतिष सबधी प्रश्न और उनके उत्तर हैं । दो उदाहरण देना यहाँ पर्याप्त होगा । एक प्रश्न यह है "अहर्गण के साधन म जितने मत अधिमास और अवम हो उनका और उनके शेषो का योग जान कर जो गणक कल्पादि से और चाद्र सावन अहर्गणो को गणित से बतावे वह बीज गणितरूपी पवित्र सुश्लिष्ट-स्फुट-कुट्टक म उद्भट बालकरूपी क्षुद्र मृग को मयान में सिंह के समान विजयी होता है ॥१ ॥

'उज्जयनी से पूर्व में लम्बे अश पर कोई नगर है और वहीं से पश्चिम लम्बे अश पर कोई (दूसरा) नगर है और पूर्व में जो नगर है उससे ईशानकोण में लम्बे अश पर (तीसरा) और पश्चिम में जो नगर है उससे वायुकोण म लम्बे अश पर (चौथा) नगर है । हे गोलक्षेत्रचतुर ! कुछ देर अपने चित्त में इन प्रश्नो पर भली भाँति विचार कर, उक्त नगरो के अक्षाश बताओ । भास्कराचार्य के उत्तर में इन नगरो का अक्षाश ४५ और १ निकला है ।

अंतिम अध्याय का नाम ज्योत्पत्ति है । इसमें कोणो की ज्याओ की गणना करने की रीति बतायी गयी है और कुछ अन्य त्रिकोणमितीय प्रश्नो पर भी विचार किया गया है ।

अन्य ग्रंथ

करण-कुतूहल नामक ग्रथ म ग्रहो की गणना के लिए सुगम रीति बतायी गयी है जिस पर कई टीकाएँ लिखी गयी हैं । इसके अनुसार पचाग बनाने का काम सरलता से किया जा सकता है ।

अन्य भाषाओ मे भी भास्कर के ग्रथो का अनुवाद किया गया है । अकबर बादशाह के नवरत्न फ़ैजी न फ़ारसी में लीलावती का अनुवाद सन १५८७ ई में किया था । शाहजहाँ बादशाह के समय में अताउल्लाह रशीदी ने १६३४ ई में बीजगणित का अनुवाद किया । कोलब्रुक ने १८१७ ई में लीलावती और बीजगणित का

अनुवाद अंग्रेजी में किया। टेलर ने १८१६ ई० में लीलावती का अनुवाद तथा ई० स्ट्रेची ने बीजगणित का अनुवाद १८१३ ई० में अंग्रेजी में किया। महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री ने गोलाध्याय का अंग्रेजी अनुवाद १८६१ ई० में किया। पंडित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी ने गोलाध्याय और गणिताध्याय दोनों पर संस्कृत और हिंदी में एक अच्छी टीका लिखी है जो नवलकिशोर प्रेस से १९११ और १९२६ ई० में प्रकाशित हुई है।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि भास्कराचार्य ने गणित ज्योतिष का विस्तार किया और उपपत्ति संबंधी बातों पर पूरा ध्यान दिया परंतु आकाश के प्रत्यक्ष वेध से बहुत कम काम लिया। वेधों के लिए इन्होंने ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त को आधार माना।

किसी-किसी ग्रंथ में भास्कराचार्य रचित मुहूर्त ग्रंथ तथा विवाह पटल नामक ग्रंथ का भी वर्णन है परंतु ये उतने प्रसिद्ध नहीं हुए।

अध्याय १५

भास्कराचार्य के बाद

उन्नति बंद हुई

भास्कराचार्य के बाद कई ज्योतिषी हुए, परन्तु उनमें भास्कर के समान कोई विख्यात न हो सका। ज्योतिष में विशेष उन्नति भी भास्कर के बाद न हो पायी जैसा नीचे के विवरण से पता चलेगा। नवीन ज्योतिषी साधारणतः भाष्य लिख कर या किसी प्राचीन सिद्धान्त को सत्य मान उससे करण-ग्रंथ बनाकर या फलित ज्योतिष पर ग्रंथ लिख कर ही संतोष करने लगे। फिर एक समय ऐसा भी आ गया कि उन्नति करना ही पाप समझा जाने लगा।

माविलाल कोचन्ना

तैलङ्ग प्रान्त के माविलाल कोचन्ना ज्योतिषी ने एक करण ग्रंथ शक १२२ में लिखा था जिसमें फाल्गुन कृष्ण १ गुरुवार शक १२१ का क्षेपक* दिया है। यह पुस्तक वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त के आधार पर लिखी गयी थी। इस पुस्तक में कोई बीज-संस्कार नहीं दिया है जैसा मकरन्द में है। मद्रास में वारन नामक अंग्रेज विद्वान ने कालसंकलित नामक एक ज्योतिष की पुस्तक १८२५ ई० में लिखी है जिसमें इस पुस्तक से बहुत कुछ सामग्री ली गयी है। इससे जान पड़ता है कि मद्रास प्रान्त में इस पुस्तक से उस समय तक पञ्चाङ्ग बनाये जाते थे।

इस अध्याय के पृष्ठ २१६ तक की सारी बातें मेरे द्वारा संपादित सरल विज्ञान-सागर नामक ग्रन्थ में छपे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के एक लेख से ली गयी हैं।

* क्षेपक की परिभाषा के लिए पृष्ठ १८९ पर पाद टिप्पणी देखो।

वल्लालसेन

मिथिलाधिपति श्री लक्ष्मणसेन के पुत्र महाराजाधिराज बल्लालसेन ने शक १ ९ (११९८ ई) में अद्भुतसागर नामक संहिता का एक बृहत ग्रंथ रचा जो वराहमिहिर की बृहत्संहिता के ढंग का ग्रंथ है। उसमें गर्ग वृद्धगर्ग पराशर, कश्यप वराहसंहिता विष्णु धर्मोत्तर, देवल वसन्तराज बटकणिक महाभारत वाल्मीकि रामायण मत्स्यपुराण भागवत मयूरचित्र ऋषिपुत्र राजपुत्र चक्र-मिश्रातिका ब्रह्मगुप्त भट्ट बलभद्र पुलिशाचार्य सूर्यसिद्धान्त विष्णुचन्द्र और प्रभाकर के अनेक वचन उद्धृत है। वराहसंहिता में अध्यायो के नाम 'चार' से प्रकट किये गये है जैसे शुक्रचार, राहुचार आदि परन्तु अद्भुतसागर में अध्यायों के नाम 'आवर्त' रखे गए है जैसे अगस्त्यावर्त्त म अगस्त तारे के उदय-अस्त के विषय में है इत्यादि। बल्लाल-सेन ने कई आकाशीय घटनाओं का उल्लेख किया है जिससे जान पड़ता है कि यह केवल ग्रहचार ही नही थे वरन् तारो और नक्षत्रो का भी वेध करते थे। सूर्य-पूर्व युति और चन्द्र-सूर्य-युति का भी परिचय इनको हो गया था। अयन-बिन्दुओं के संबंध में भी इन्होने स्वयं परीक्षा करके लिखा है।

इन बातो का विचार करने से प्रकट होता है कि अद्भुतसागर वास्तव में एक बड़ा और अद्भुत ग्रंथ है।

केशवार्क

केशवार्क का बनाया हुआ विवाह वृन्दावन नामक एक मुहूर्त ग्रंथ है जिसमें विवाह संबंधी मुहूर्तों का अच्छा परिचय है। इसकी टीका भी पीछे की गयी थी। यह प्रथम दैवज्ञ के पिता केशवार्क से भिन्न थे और उनसे बहुत पहले हुए थे। गणक-तरंगिणी के अनुसार इनका समय शक ११६४ (१२४२ ई) के लगभग ठहरता है क्योंकि गणेश दैवज्ञ की टीका से प्रकट होता है कि ग्रंथनिर्माण-काल में अयन १२ अंश था।

> सकलकलनुशापिनाथश्रीमद्बल्लालसेनदेवेन।
> अयनाहयं बलावत् परीक्ष्य संलिख्यते सविगु ॥
> इदानीं वृश्चिकसंस्थानमवनं वलितं रवेः।
> मकेश्पूर्नवतीरादौ लिखवारशुसरायणम् ॥
>
> गणक-तरंगिणी पृष्ठ ४४।

महेंद्रसूरि

महेंद्रसूरि फ़ीरोज़शाह बादशाह की सभा के प्रधान पंडित थे। इन्होंने यंत्र राज नामक यंत्र भी १२९२ शक में बनाया था। इनकी बनायी यंत्रराज नामक पुस्तक की टीका इनके शिष्य मलयेन्दुसूरि ने लिखी थी जिसको उपपत्ति के साथ महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने शक १८ ४ (१८८२ ई०) में चन्द्रप्रभा प्रेस से प्रकाशित की थी। इन्होंने सूर्य की परम क्रान्ति २ ३५ पायी थी और अयनांश की वार्षिक गति ५४ विकला लिखी है। इस ग्रंथ में पाँच अध्याय हैं जिनके नाम हैं—गणिताध्याय यंत्रघटनाध्याय यंत्ररचनाध्याय यंत्रशोधनाध्याय और यंत्र विचारणाध्याय। सुधाकर द्विवेदी समझते हैं कि यह ग्रंथ शायद किसी फ़ारसी ग्रंथ का अनुवाद है।

महादेव

महादेव ने पंचांग बनाने की सुविधा के लिए कामधेनु नामक करण-ग्रंथ शक १२७९ (१३५७ ई०) में बनाया था।

पद्मनाभ

ध्रुवभ्रम यंत्र नाम का ग्रंथ पद्मनाभ ने १३१२ शक के लगभग रचा था जिसमें केवल ३११ श्लोक हैं। इसमें ध्रुवभ्रमयंत्र का वर्णन है जिससे रात को ध्रुवमत्स्य नामक नक्षत्र पुंज को वेध कर के समय का ज्ञान करने की रीति बतायी गयी है। इस ग्रंथ की टीका स्वयं ग्रंथकार ने की है। दिन में सूर्य के वेध से समय का ज्ञान करने की रीति है जिससे लग्न का ज्ञान भी हो सकता है। २८ नक्षत्रों के योगतारों के मध्यान्तिकांश भी दिये गये हैं जिससे प्रकट होता है कि यह २४ अक्षांश के स्थानों के लिये बनाया गया था।

दामोदर

दामोदर का भटतुल्य नामक आर्यभटानुसारी एक करण-ग्रंथ है जिसका आरम्भ वर्ष शक १३३९ (१४२३ ई०) है। यह पद्मनाभ के शिष्य थे और इन्होंने ध्रुवभ्रम यंत्र पर टीका लिखी थी। इसमें अयनगति ५४ विकला वार्षिक बतायी गयी है। इन्होंने नक्षत्रों के योगतारों के भोगांश और शर दिये हैं जो अन्य ग्रंथकारों के

गणक-तरंगिणी पृष्ठ ४९।

मीमांसो से कुछ भिन्न है इससे जान पड़ता है कि इन्होंने स्वयं वेध कर के यह निश्चय किया है।

गंगाधर

गंगाधर ने कलि संवत ४५३५ (शक १३५६) में प्रचलित सूर्य सिद्धांत के अनुसार एक तंत्र ग्रंथ रचा है जिसका नाम है चान्द्रमानाभिधान तंत्र। इसमें चांद्र मास के अनुसार ग्रहों की गति लेकर ग्रह स्पष्ट करने की रीति बतायी गयी है।

मकरंद

मकरंद ने शक १४ (१४७८ ई.) में सूर्य-सिद्धांत के अनुसार तिथ्यादि साधन के लिए अपने ही नाम की एक सारणी काशी में रची थी जिसके अनुसार काशी और मिथिला आदि प्रान्तों में अब भी पंचांग बनाये जाते हैं। यह सारणी दिवाकर दैवज्ञ के मकरंद-विवरण और विश्वनाथ के उदाहरण के साथ प्रकाशित हुई है और आज भी मिलती है। गोकुलनाथ ने १६८८ शक में इसकी उपपत्ति भी लिखी है। इस सारणी का अनुवाद अंग्रेजी में बेंटली ने किया था। इसी का विस्तार करके शहर मिरजापुर के पं. रघुवीरदत्त ज्योतिषी ने सिद्धांतटिका नामक एक सारणी तैयार की थी जो शाके १८ ५ (१८८१ ई.) में भारतमित्र यन्त्रालय से प्रकाशित हुई थी। इस सारणी में तिथि नक्षत्र योगों और ग्रहों की दैनिक गति दी गयी है जिससे इन विषयों की स्पष्ट गणना बहुत ही सुगमता से की जा सकती है। इसमें पंचांग बनाने की प्राय सभी बातें बतायी गयी हैं। इसमें बीज-संस्कार करने के लिए भी कहा गया है और इसका नियम बताया गया है।

केशव द्वितीय

विवाह-वृंदावन के रचयिता केशव की चर्चा पहले हो चुकी है जिन्हें गणक तरंगिणी में केशवार्क कहा गया है। दूसरे केशव उनसे भिन्न हैं। यह ग्रहलाघव के प्रसिद्ध लेखक गणेश दैवज्ञ के पिता और ज्योतिष के महान आचार्य और गणितज्ञ थे। इनका जन्म पश्चिमी समुद्र के तीर नंदिग्राम में हुआ था। इनके जन्म का समय कहीं नहीं लिखा मिलता। सूर्य चन्द्रमा और ताराग्रहों का वेध करके गणना ठीक करने के लिए इन्होंने बड़ा प्रचार किया है और भविष्य के लिए पथप्रदर्शन का काम किया है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक ग्रहकौतुक है जिसकी मिताक्षरा टीका भी इन्होंने स्वयं लिखी थी। इससे प्रकट होता है कि यह गणक और वेध में भी निपुण थे। ब्राह्म आर्यपक्षीय और सूर्यसिद्धान्त आदि के अनुसार बने हुए ग्रहों के स्थानों में बहुत

ग्रहयुति और महापात नामक १४ अधिकार हैं। विश्वनाथ और मल्लारि ने भी टीकाओं में पचांग-ग्रहणाधिकार का नाम भी लिखा है।

बृहत्तिथिचिंतामणि और लघुतिथिचिंतामणि नामक सारणियाँ भी गणेश दैवज्ञ की बनायी हुयी हैं जिनसे पचांग के लिए तिथि नक्षत्र तथा योगों का साधन बहुत सरलता से और कम समय में किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त निम्न लिखित ग्रंथ भी गणेश दैवज्ञ के लिखे हुए हैं —

सिद्धांत-शिरोमणि टीका लीलावती टीका (शक १४६७) विवाह-वृन्दावन टीका (शक १४७६) मुहूर्त तत्व टीका श्राद्धादि निर्णय छन्दोर्णव टीका सुधीरञ्जनी तर्जनी यन्त्र कृष्ण जन्माष्टमी निर्णय और होलिका निर्णय।

लक्ष्मीदास

लक्ष्मीदास शक १४२२ (१५ ई) में भास्कराचार्य के सिद्धान्त-शिरोमणि की टीका उपपत्ति और उदाहरण के साथ की थी जिसका नाम है गणिततत्त्व चिंतामणि।

ज्ञानराज

सिद्धान्त-सुन्दर नामक करण-ग्रन्थ के कर्ता ज्ञानराज थे। यह वर्तमान सूर्य सिद्धांत के अनुसार बनाया गया है। इसका क्षेपक १४२५ शक का है इसलिए यही इसका रचना काल समझना चाहिए। पहले गोलाध्याय है जिसमें सृष्टिक्रम लोकसंस्था आदि १२ अध्याय हैं और गणिताध्याय में मध्यमाधिकार आदि ८ अध्याय हैं। मध्यमाधिकार में बीज-संस्कार की बात भी कही गयी है। यह नहीं बताया है कि इनके समय में अयनांश क्या था परन्तु अयनांश की वार्षिक गति एक कला बतायी है और लिखा है कि मध्याह्न छाया से जाने हुए स्पष्ट सूर्य और गणना से लाये हुए स्पष्ट सूर्य का अंतर निकाल कर अयनांश ठीक-ठीक ज्ञात कर लेना चाहिए, जैसा सूर्यसिद्धांत में बताया गया है।

सूर्य

सूर्य ज्ञानराज के पुत्र थे। भास्कराचार्य के बीजगणित के भाष्य में इन्होंने अपना नाम सूर्यदास लिखा है और एक अन्य ग्रन्थ में अपना नाम सूर्यप्रकाश लिखा है। लीलावती की टीका गणितामृत-कूपिका इन्हीं की लिखी हुई है जो १४६१ शक में लिखी गयी थी। उस समय इनकी अवस्था ३४ वर्ष की थी। इसलिए इनका जन्म शक १४२९ में हुआ था। इनके लिखे ग्रन्थों के नाम ये हैं लीलावती टीका बीज टीका

श्रीपति पद्धति गणित बीजगणित ताजिकग्रन्थ वाग्मय और बोध-सुधाकर बेताल ग्रंथ। गोलबुक लिखते हैं कि इन्होंने सम्पूर्ण सिद्धांत-शिरोमणि टीका भी लिखी है परन्तु टीमाजनी की टीका में इन्होंने स्वयं जिन अपने आठ ग्रंथों के नाम लिखे हैं उनमें यह नाम नहीं आया है।

अनंत प्रथम

अनंत प्रथम ने शक १४४७ में पंचांग बनाने के लिए अनंत सुधारस नामक ग्रंथ लिखा था जो सुधाकर द्विवेदी के मत से एक सारणी है।

ढुंढिराज

ढुंढिराज का बनाया जातकाभरण ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है जिससे जन्मपत्री बनायी जाती है। इन्होंने अनन्तकृत सुधारस की टीका भी की है जिसका नाम सुधारसकरण चषक है और ग्रहलाघवोदाहरण ग्रहफलोपपत्ति पंचांगफल कुण्डकल्पलता ग्रंथों को भी लिखा है। इन्होंने अपना जन्मकाल कहीं नहीं लिखा है परन्तु ज्ञानराज के ये शिष्य थे इसलिए उनके पुत्र सूर्य के समकालीन अवश्य रहे होंगे।

नीलकंठ

नीलकंठ ने ताजिक नीलकंठी नामक बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा है जिसे ज्योतिषी लोग वर्षफल बनाने के लिए अब भी काम में लाते हैं। इसमें फारसी और अरबी के बहुत से शब्द आये हैं। ये अकबर बादशाह के दरबार के सभा-पंडित थे और मीमांसा तथा सांख्यशास्त्र के अच्छे विद्वान थे। नीलकंठी का निर्माण-काल शक १५ ९ (१५८७ ई०) है। इस पर विश्वनाथ ने उदाहरण के साथ एक टीका शक १५५१ में की थी। सुधाकर द्विवेदी लिखते हैं कि इन्होंने एक जातकपद्धति भी लिखी है, जो मिथिला प्रान्त में बहुत प्रसिद्ध है।

रामदैवज्ञ

रामदैवज्ञ नीलकंठ के छोटे भाई थे। इनका शक १५२२ का रचा मुहूर्त चिंतामणि ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है और ज्योतिष के विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है। इस प्रान्त में यात्रा विवाह उत्सव आदि सभी बातों के लिए इसी ग्रन्थ के आधार पर साइत निकाली जाती है। इस ग्रंथ पर पीयूषधारा नामक टीका इनके भतीजे नीलकंठ के पुत्र गोविन्द ने लिखी है जो बहुत प्रसिद्ध है।

इनका रचा रामविनोद नामक एक करण-ग्रंथ भी है जिसे अकबर बादशाह के कृपापात्र जयपुर के महाराजा रामदास की प्रसन्नता के लिए शक १५१२ में

प्रचलक थे। सिद्धांत सार्वभौम के वर्तमान ग्रहगण आदि सूर्य-सिद्धान्त से लिये गये हैं।

इनका दूसरा नाम विश्वरूप था। ये शाहजहाँ बादशाह के आश्रय में थे और उनके राज्याभिषेक का समय अपनी पुस्तक में लिखा है।

दिवाकर

दिवाकर गोलग्राम के प्रसिद्ध ज्योतिषियों के कुल में शक १५२८ में उत्पन्न हुए थे। शक १५४७ में जातक मार्गपद्म नामक जातक ग्रंथ लिखा था। केशवी जातक पद्धति पर प्रौढमनोरमा टीका भी इन्हीं की लिखी हुई है। इन्होंने शक १५४१ में मकरन्दसारिणी पर मकरन्द विवरण नामक उदाहरण सहित टीका भी लिखी थी।

कमलाकर

कमलाकर ज्योतिष के एक प्रसिद्ध आचार्य हैं। इनका जन्म शक १५१ (११ ८ ई) के लगभग हुआ था।

सिद्धान्ततत्त्वविवेक कमलाकर का प्रसिद्ध सिद्धान्त-ग्रंथ है जिसे इन्होंने काशी में शक १५८ में प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार लिखा था। इसमें बहुत-सी नवीन बातों का समावेश है परंतु इन्होंने लिखा है कि सूर्य-सिद्धान्त की गणना से यदि वेधसिद्ध गणना में अंतर दिखाई पड़े तो भी उसमें बीज-संस्कार करके गणना न करनी चाहिए। एक प्रकार से इन्होंने अमावस्या पूर्णिमा आदि की परिभाषा ही बदल दी अमावस्या वह क्षण नहीं रह गयी जब सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों का अंतर वस्तुतः शून्य हो अमावस्या वह क्षण हो गयी जब सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों का अंतर शून्य निकले। इस प्रकार यह भी संभव हो गया कि सूर्य-ग्रहण का मध्य अमावस्या से कई घंटे बाद या पहले हो। इस विषय पर इनके वचन सूर्य-सिद्धान्त के अंधभक्त बड़े जोरों से अपने समर्थन में उपस्थित करते हैं। इन्होंने भास्कराचार्य और मुनीश्वर की कई ठीक बातों का खंडन केवल इसलिए किया है कि ये सूर्य-सिद्धान्त के अनुकूल नहीं हैं। स्पष्ट है कि कमलाकर के समय में ज्योतिष का पतन इतना हो चुका था कि उन्नति करना भी पाप समझा जाने लगा।

> अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं निर्बीजार्कोक्तमेव हि।
> गणितं यदि दृष्टार्थं तद्दृष्ट्युद्भवतः सदा॥
> मध्यमाधिकार, १२६।

सिद्धान्ततत्त्वविवेक में कुछ नयी बातें भी लिखी गयी हैं जिनसे पता चलता है कि ये विदेशी ज्ञान को एक हद तक अपनाना अनुचित नहीं समझते थे। किसी भारतीय ज्योतिष ग्रंथ में ध्रुवतारा के चलने की बात नहीं लिखी है परन्तु इन्होंने लिखी है। स्वामी ने पूरब-पश्चिम अन्तर को प्राचीन ज्योतिषी रेखांश या देशान्तर कहते थे परन्तु इन्होंने इसका नाम 'तूलांश' रक्खा है, जो फारसी के 'तूल' (लंबाई) शब्द से निकला है। विषुववृत्त पर खालदात नगर को मुख्य याम्योत्तर वृत्त पर समझ कर २० नगरों के अक्षांश और तूलांश दिये गये हैं जिनके अनुसार कुछ नगरों के अक्षांश और तूलांश नीचे दिये जाते हैं —

	अक्षांश		तूलांश	
	अंश	कला	अंश	कला
उज्जयिनी	२२	१	११२	
इन्द्रप्रस्थ	२८	१३	११४	१८
सोमनाथ	२२	१५	१ ६	
काशी	२६	५५	११७	२
लखनऊ	२६	१	११४	११
कन्नौज	२६	१५	११५	
लाहौर	३१		१ ९	२
काबुल	३४	४	१ ४	
समरकन्द	३९	४	९९	

इनके समय काशी का अक्षांश २६ अंश के लगभग अशुद्ध है। तूलांशों में भी १ अंश तक न्यूनता और अधिकता है। खालदात का औसत देशान्तर यहाँ के आँकड़ों से १४° ५२ मिनिट से पश्चिम निकलता है। यहाँ भूमध्य रेखा पर कोई नगर नहीं है। निकटतम नगर जिसका नाम समझकर खालदात हो सकता है नाबास्को है जिसका देशान्तर १४° ५ पश्चिम और अक्षांश ७ दक्षिण है।

इन्होंने दूरबीन से वेध करने की रीति विस्तार के साथ लिखी है। यह भी लिखा है कि पूर्णग्रहण काल में चन्द्रमा पर रहनेवालों को पृथ्वी पर ग्रहण लगा हुआ दिखायी पड़ता है जो बिलकुल ठीक है। मेघ भूकम्प उल्कापात का कारण भी लिखा है जो कुछ-कुछ ठीक है। अंकगणित रेखागणित अंकविचार और ज्यामापन की रीतियाँ कई बातों में बिलकुल नयी हैं। अधिकांश सिद्धान्त-ग्रंथों में ३४३८ की त्रिज्या के अनुसार ज्याओं की सारणी दी गयी है परन्तु कमलाकर ने ग्रंथ में त्रिज्या

पंचांग बनाने के लिए लिखा गया था। इसमें वर्तमान अयनांश और ग्रहगति वर्तमान सूर्य-सिद्धांत के अनुसार दिये गये हैं। बीज-संस्कार भी दिया है। इसमें ११ अधिकार और २८ श्लोक हैं।

कृष्ण दैवज्ञ बादशाह जहाँगीर के प्रधान पंडित थे। भास्कराचार्य के बीजगणित की नवांकुर नामक सुन्दर टीका इनकी लिखी हुई है जिसमें कई नवीन कल्पनाएँ हैं। सूर्य-सिद्धान्त की गूढार्थप्रकाशिका टीका के लेखक रंगनाथ लिखते हैं कि कृष्ण-दैवज्ञ ने श्रीपतिपद्धति की टीका और छादक-निर्णय भी लिखा है। इन्होंने अपना समय नहीं लिखा है। सुधाकर द्विवेदी का अनुमान है कि इनका जन्मकाल शक १४८० के लगभग होगा।

गोविंद दैवज्ञ

गोविंद दैवज्ञ नीलकंठ दैवज्ञ के पुत्र और राम दैवज्ञ के भतीजे थे। इन्होंने मुहूर्त चिन्तामणि की पीयूषधारा टीका काशी में शक १५२५ (१६ ३ ई) में लिखी थी। ये ज्योतिष व्याकरण काव्य साहित्य आदि में निपुण थे और १४७१ शक के आश्विन शुक्ल ७ रविवार पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न हुए थे।

विष्णु

विदर्भ देश में पाथरी नाम का एक प्रसिद्ध गाँव है जिससे पश्चिम १ कोस पर गोदा नदी के उत्तर किनारे पर गोलग्राम एक गाँव है। इसमें एक कुल ऐसा था जिसमें बहुत-से विद्वान और ग्रंथकार हो गए हैं। विष्णु इसी कुल के थे। इनका लिखा सौरपक्षीय एक करण-ग्रंथ है जिसका आरम्भवर्ष शक १५३ है। इसकी टीका उदाहरण के साथ इनके भाई विश्वनाथ ने शक १५४५ में की थी। सिद्धांत तत्त्व-विवेक के कर्त्ता प्रसिद्ध कमलाकर इसी वंश के थे।

मल्लारि

मल्लारि उपर्युक्त विष्णु के वंश में थे। इन्होंने ग्रहलाघव पर उपपत्ति सहित एक सुन्दर टीका लिखी है जिससे जान पड़ता है कि वेध के कामों में ये बड़े निपुण थे और समझते थे कि प्राचीन ज्योतिष ग्रंथों में अवनता का जो भेद पड़ जाता है उसका कारण क्या है और बीज-संस्कार की आवश्यकता क्यों पड़ती है। इन्होंने अपना समय नहीं लिखा है परंतु सुधाकर द्विवेदी का मत है कि ये शक १४९१ में उत्पन्न हुए होंगे।

विश्वनाथ

विश्वनाथ गणेश के समान टीकाकार थे और पूर्ववर्णित गोलग्राम में उत्पन्न हुए थे। ताजिक नीलकंठी की टीका में वे लिखते हैं कि शक १५५१ (१६२९ ई) में यह टीका पूरी हुई थी। विष्णुकृत करण-ग्रन्थ की टीका १५४५ में की गयी थी। इन्होंने जो उदाहरण दिये हैं वे शक १५१८ के हैं। इनके उदाहरण मुख्यतः १५ ८ १५११ १५३२ १५४२ और १५५५ शक के हैं।

इन्होंने सूर्य-सिद्धान्त पर गहनार्थप्रकाशिका तथा सिद्धान्तशिरोमणि करण कुतूहल मकरंद, ग्रहलाघव गणेश दैवज्ञ कृत पातसारणी अनन्त सुधारस और रामविनोद करण पर टीकाएँ तथा नीलकंठी पर समातन्त्रप्रकाशिका टीका (शक १५५१ में) लिखी हैं। इन सब ग्रंथों को इन्होंने काशी में लिखा था।

नृसिंह

नृसिंह भी गोलग्राम के प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए थे और अपने चाचा विष्णु तथा मल्लारि से शिक्षा पायी थी। शक १५३३ में सूर्यसिद्धान्त पर सौरभाष्य नामक टीका उपपत्ति के साथ तथा सिद्धान्त-शिरोमणि पर वासना वार्तिक टीका १५४१ शक में लिखी थी जिनमें पर्याप्त विशदता है। इससे प्रकट होता है कि ये गणित ज्योतिष में बड़े निपुण थे।

रंगनाथ

रंगनाथ विदर्भ प्रान्त के पयोष्णी नदी के तीर पर दधिग्राम के प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने सूर्यसिद्धान्त पर गूढार्थप्रकाशिका टीका लिखी है जो शक १५२५ (१६ ३ ई) में जिस दिन इनके पुत्र मुनीश्वर का जन्म हुआ था प्रकाशित हुई थी। ये ज्योतिष सिद्धान्त के अच्छे आचार्य थे क्योंकि अपनी टीका उपपत्ति सहित लिखी है।

मुनीश्वर

मुनीश्वर रंगनाथ के पुत्र थे और शक १५२५ में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने लीलावती पर निसृष्टार्थदूती लीलावती-विवृति नामक टीका सिद्धान्त-शिरोमणि के गणिताध्याय और गोलाध्याय पर मरीचि नामक टीका और सिद्धान्त सार्वभौम नामक स्वतन्त्र सिद्धान्त ग्रन्थ शक १५६८ में रचा था। गणक-तरंगिणी के अनुसार इन्होंने पाटीसार नामक स्वतन्त्र गणित पर भी पुस्तक लिखी थी। ये प्रसिद्ध भास्कराचार्य के बड़े

प्रकाशक थे। सिद्धान्त सार्वभौम के वर्षमान भगणमान आदि सूर्य-सिद्धान्त से लिये गये हैं।

इनका दूसरा नाम विश्वरूप था। ये शाहजहाँ बादशाह के आश्रय में थे और उनके राज्याभिषेक का समय अपनी पुस्तक में लिखा है।

दिवाकर

दिवाकर गोलग्राम में प्रसिद्ध ज्योतिषियों के कुल में शक १५२८ में उत्पन्न हुए थे। शक १५४७ में जातक मार्गपद्म नामक जातक ग्रंथ लिखा था। केशवी जातक पद्धति पर प्रौढ़मनोरमा टीका भी इन्हीं की लिखी हुई है। इन्होंने शक १५४१ में मकरन्दसारिणी पर मकरन्द विवरण नामक उदाहरण सहित टीका भी लिखी थी।

कमलाकर

कमलाकर ज्योतिष के एक प्रसिद्ध आचार्य हैं। इनका जन्म शक १५१ (१६ ८ ई) के लगभग हुआ था।

सिद्धान्ततत्त्वविवेक कमलाकर का प्रसिद्ध सिद्धान्त-ग्रंथ है जिसे इन्होंने काशी में शक १५८ में प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार लिखा था। इसमें बहुत-सी नवीन बातों का समावेश है परन्तु इन्होंने लिखा है कि सूर्य-सिद्धान्त की गणना से यदि वेधसिद्ध गणना में अन्तर दिखाई पड़े तो भी उसमें बीज-संस्कार करके गणना न करनी चाहिए। एक प्रकार से इन्होंने अमावस्या पूर्णिमा आदि की परिभाषा ही बदल दी। अमावस्या वह क्षण नहीं रह गयी जब सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों का अन्तर वस्तुतः शून्य हो, अमावस्या वह क्षण हो गयी जब सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों का अन्तर शून्य निकले। इस प्रकार यह भी सम्भव हो गया कि सूर्य-ग्रहण का मध्य अमावस्या से कई घंटे बाद या पहले हो। इस विषय पर इनके वचन[1] सूर्य-सिद्धान्त के अन्धभक्त बड़े चावों से अपने समर्थन में उपस्थित करते हैं। इन्होंने भास्कराचार्य और मुनीश्वर की कई ठीक बातों का खण्डन केवल इसलिए किया है कि वे सूर्य-सिद्धान्त के अनुकूल नहीं हैं। स्पष्ट है कि कमलाकर के समय में ज्योतिष का पतन इतना हो चुका था कि उन्नति करना भी पाप समझा जाने लगा।

---

[1] अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं निर्बीजार्कोक्तमेव हि।
गणितं यदि दृष्टार्थं तद्दृष्ट्युद्भवतः सदा॥
मध्यमाधिकार, १२६।

सिद्धांततत्त्वविवेक में कुछ नयी बातें भी लिखी गयी हैं जिनसे पता चलता है कि ये विदेशी ज्ञान को एक हद तक अपनाना अनुचित नहीं समझते थे। किसी भारतीय ज्योतिष ग्रंथ में ध्रुवतारा के चलने की बात नहीं लिखी है, परन्तु इन्होंने लिखी है। स्थानों के पूरब-पच्छिम अंतर को पुराने ज्योतिषी रेखांश या देशान्तर कहते थे, परन्तु इन्होंने इसका नाम 'तूलांश' रक्खा है जो फारसी के 'तूल' (लंबाई) शब्द से निकला है। विषुवद्वृत्त पर खालदात नगर को मूल याम्योत्तर वृत्त पर समझ कर २ नगरों के अक्षांश और तूलांश दिये गये हैं जिसके अनुसार कुछ नगरों के अक्षांश और तूलांश नीचे दिये जाते हैं —

	अक्षांश		तूलांश	
	अंश	कला	अंश	कला
उज्जयिनी	२२	१	११२	
इंद्रप्रस्थ	२८	११	११४	१८
सोमनाथ	२२	१५	१ ६	
काशी	२६	५५	११७	२
लखनऊ	२६	१	११४	११
कन्नौज	२६	१५	११५	
लाहौर	३१	५	१ ९	२
काबुल	३४	४	१ ४	
समरकंद	३९	४	९९	

इनमें स्वयं काशी का अक्षांश डेढ़ अंश के लगभग अशुद्ध है। तूलांशों में भी २ अंश तक न्यूनता और अधिकता है। खालदात का औसत देशांतर यहाँ के आँकड़ों से १४° ५२ मिनिट से पश्चिम निकलता है। यहाँ भूमध्य रेखा पर कोई नगर नहीं है। निकटतम नगर जिसका नाम संभवतः खालदात हो सकता है लाबडस्को है जिसका देशांतर १८° ५ पश्चिम और अक्षांश ७ दक्षिण है।

इन्होंने तुरीययंत्र से वेध करने की रीति विस्तार के साथ लिखी है। यह भी लिखा है कि सूर्यग्रहण काल में चन्द्रमा पर रहनेवालों को पृथ्वी पर ग्रहण लगा हुआ दिखायी पड़ता है जो बिलकुल ठीक है। सम भूतल उन्नतानत का कारण भी लिखा है जो कुछ-कुछ ठीक है। अंकगणित रेखागणित क्षेत्रविचार और ज्यासाधन की रीतियाँ नई चाली में बिलकुल नयी हैं। अधिकांश सिद्धान्त-ग्रंथों में १०७८ की त्रिज्या के अनुसार ज्याओं की सारणी दी गयी है परन्तु कमलाकर के ग्रंथ में त्रिज्या

अध्याय १६

जयसिंह और उनकी वेधशालाएँ

जीवनचरित्र

महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय जयपुर के थे और उनका जन्म १६८६ ई०[1] में हुआ था। तेरह वर्ष की आयु में वे अंबर राज की गद्दी पर बैठे। उसके थोड़े ही वर्ष बाद औरंगजेब का देहांत हुआ। अपना राज स्थापित करने में उन्हें पहले तो कठिनाई हुई, परन्तु १७०८ में उन्होंने पूरे प्रांत पर अपना अधिकार कर लिया। १७१९ में मुहम्मदशाह ने उन्हें आगरा प्रांत का शासक नियुक्त किया और कुछ ही काल बाद मालवा का। उनकी मृत्यु १७४३ में हुई।

जयसिंह का काल अत्यंत अशांतमय था परन्तु उन्होंने अधिकतर चाणक्य नीति से काम लिया और सफलता पायी। उन्होंने नयी राजधानी स्थापित की जिसका नाम जयनगर अथवा जयपुर पड़ा। उनके समय में यह विद्या का केंद्र बन गया। उन्होंने बहुत-सी धर्मशालाएँ और सराय बनवायी और पाँच प्रमुख नगरों में ज्योतिष वेधशालाएँ बनवायी। उन्होंने वैज्ञानिक अध्ययन का नवीन मार्ग खोज निकाला और उसमें उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली। इस बारे में उनकी लगन आज भी अनुकरणीय है। उनकी वेधशालाएँ भारतीय इतिहास के अंधकारमय काल में परम उज्ज्वल प्रकाश-स्तंभ की तरह उत्पन्न हुई।

बाल्यकाल से ही जयसिंह को ज्योतिष से प्रेम था और, जैसा उन्होंने स्वयं लिखा है, सदा अनुशीलन करते रहकर इसके सिद्धांतों और नियमों का प्रगाढ़ ज्ञान

[1] यह वही वर्ष है जिसमें प्रसिद्ध ब्रिटिश वैज्ञानिक न्यूटन की प्रिंसिपिया नामक पुस्तक समाप्त हुई। इस पुस्तक में गति-विज्ञान के आधुनिक सिद्धांत हैं।

इस अध्याय की अधिकांश बातें के महोदय द्वारा लिखित 'ए गाइड टु दि ओल्ड ऑब्ज़र्वेटरीज़ ऐट दिल्ली, जयपुर, उज्जैन ऐंड बनारस' से ली गयी हैं।

उन्होंने प्राप्त किया। परन्तु उन्होंने देखा कि उस समय की सारणियों से गणना करने पर परिणाम वेधतुल्य नहीं निकलता अर्थात् उन्होंने देखा कि आकाशीय पिंडों की वेधप्राप्त और गणनाप्राप्त स्थितियों में अंतर रहता है। इसलिए उन्होंने स्वयं नवीन सारणियाँ बनाने का संकल्प किया। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने प्रत्यक्ष रीति से सफलता पाने की चेष्टा की। उन्होंने हिंदू, मुसलिम और यूरोपियन ग्रंथों का अध्ययन किया। कई विदेशी ग्रंथों को एकत्रित किया और उनका अनुवाद करा लिया। उन्होंने इन सब कामों के लिए कई विद्वान जमा रखे थे और उनमें से कुछ को तो उन्होंने विदेश भेजा कि वे वहाँ से ज्ञान सीख कर आवें। उन्होंने कुछ यूरोपियन तथा अन्य देश के ज्योतिषियों को अपने यहाँ आमंत्रित कर लिया। पहले उन्होंने दिल्ली में एक बड़ी-सी वेधशाला बनवायी और सात वर्षों तक सावधानी से वेध आदि करते रहे जिसका मुख्य उद्देश्य था एक नवीन तारा-सूची बनाना। पीछे उन्होंने जयपुर, उज्जैन, बनारस और मथुरा में भी वेधशालाएँ बनवायी।

ज्ञान कहाँ से प्राप्त किया

जयसिंह के ग्रंथों से तथा अन्य सामग्री से इस बात का पता चलता है कि वे निम्न ग्रंथों से परिचित थे: टालमी की ऐलमैजेस्ट, उलुगबेग की ज्यौतिष सारणियाँ, मंत्रराज (एस्ट्रोलेब) पर कुछ ग्रंथ, ला हायर की ज्यौतिष सारणियाँ, फ्लैमस्टीड की हिस्टोरिया सेलेस्टिस ब्रिटैनिका, यूक्लिड की ज्यामिति, समतल तथा गोलीय त्रिकोणमिति पर कुछ पुस्तकें और लघुगणक (लॉगरिथ्म) बनाने की रीति। अवश्य ही उन्होंने अन्य पुस्तकें भी पढ़ी होंगी परन्तु उनका पता लगना असंभव है क्योंकि उनका पुस्तकालय अब नष्ट हो गया है।

टालमी के सिन्टैक्सिस नामक ग्रंथ ने यूरोप में एक हजार वर्षों तक राज्य किया और अरब वालों में भी अनुवाद के बाद इस ग्रंथ का राज्य लगभग उतने ही काल तक बना रहा। जयसिंह इस पुस्तक से अत्यंत प्रभावित थे और उन्होंने इसका अनुवाद अरबी पाठ से कराया। अनुवादकर्ता जगन्नाथ नाम के एक पंडित थे जो जयसिंह के ज्योतिषियों के प्रधान थे। जगन्नाथ ने इस पुस्तक का नाम सम्राट-सिद्धांत रखा। जगन्नाथ ने लिखा है कि जयसिंह को नवीन यंत्र बनाने का और नवीन रीतियाँ निकालने का बड़ा शौक था और इसमें वे बहुत चतुर थे। वेधशाला के लिए नाड़ी-यंत्र, गोल-यंत्र, दिगंश-यंत्र, दक्षिणोत्तरभित्ति, वृत्त-षष्ठांशक, सम्राट यंत्र और जयप्रकाश ये यंत्र आवश्यक बताये गये हैं।

जयसिंह की सारणियाँ

जिज मुहम्मदशाही नाम का सारणी-समूह जयसिंह के आदेशानुसार बना। इसका नाम उस समय के सम्राट मुहम्मद शाह के नाम पर रखा गया था। इस ग्रंथ की एक मूल प्रति जयपुर में है, एक संपूर्ण फारसी अनुवाद ब्रिटिश म्यूज़ियम में है। यह सारणी उलुग बेग की सारणी को परिशोधित करके बनायी गयी थी। भूमिका के अनुसार "उलुग बेग की सारणी ८४१ हिजरी के लिए थी। जिज मुहम्मद शाही ११३८ के लिए है, अर्थात उलुग बेग की सारणी को बने २९७ वर्ष हो गए हैं। इतने समय में अयन ४ अंश ८ विकला हुआ। जिज मुहम्मदशाही में क्रांति आदि का मान वेध से लिया गया है। आमुख पर यह लिखा है "जयसिंह ने देखा कि तारों की स्थितियाँ प्रचलित सारणियों से, उदाहरणार्थ सईद गुरगानी और खाकानी की नवीन सारणियों से या तज़्हीलात मुल्ला चाँद अकबरशाही से या हिन्दू या यूरोपीय ग्रंथों से अशुद्ध निकलती हैं और वेधप्राप्त स्थितियों से बहुत अंतर पड़ता है। विशेष कर अमावस्या के बाद चाँद दिखायी पड़ने में गणना और आँख से देखी बात में मेल नहीं है। परन्तु इन बातों पर धर्म-कर्म और राज्य की बातें आश्रित हैं। फिर, ग्रहों के उदय-अस्त में भी वेध और गणना में अंतर रहता है और तथा चंद्र ग्रहणों में और अन्य कई बातों में भी बहुत अंतर पड़ता है। तो उन्होंने परम धर्मिमान सम्राट (मुहम्मद शाह) से इस बात की चर्चा की। उन्होंने प्रसन्न होकर उत्तर दिया कि आप ज्योतिष के सब भेद को जानते हैं, आपने इस्लाम के ज्योतिषियों और गणितज्ञों को, ब्राह्मणों और पंडितों को तथा यूरोप के ज्योतिषियों को एकत्रित किया है और वेधशाला बनवायी है, तो आप ही इस प्रश्न को हल करने का कष्ट उठायें जिसमें गणना से मिले समय और घटना के वस्तुतः होने के समय का अंतर मिट जाय।

"यद्यपि यह अत्यन्त कठिन कार्य था, तो भी उन्होंने इस आज्ञा का पालन करने के लिए कमर कसी और दिल्ली में वेधशाला के योग्य कई यंत्र बनवाये जैसे समरकंद में बने थे और जो मुसलमानी ग्रंथों के अनुसार थे, जैसे पीतल का ज़ातुल-हल्का जिसका व्यास वर्तमान गज से तीन गज था, और ज़ातुल शोबतैन और ज़ातुल-सबतैन और सुद्स-फखरी और शामला।

"परन्तु यह देखकर कि पीतल के यंत्र उतने सूक्ष्म वेध नहीं कर सकते थे जितना उन्होंने सोचा था क्योंकि ये यंत्र छोटे होते हैं, उनमें कला के अंक नहीं बन पाते और उनकी धुरी घिस जाती है और उनमें इधर उधर हो जाता है, वृत्त के केंद्र हट

राज है जिसकी रचना सब एक प्रकार की नहीं है। साधारण यन्त्र में धातु का एक वृत्त होता है जो अंकित रहता है और एक कड़ी से लटकता रहता है। उस पर एक पट्टी घूम सकती है जिसको आकाशीय पिंड की दिशा में साधा जाता है। इस प्रकार उस पिंड का उन्नतांश ज्ञात हो जाता है।

अरब वाले बहुत पहले से ही अच्छे यन्त्रराज बनाने लग गये थे। सत्रहवीं शताब्दी तक यह प्रधान यन्त्र था। साधारणतः यह पीतल का बनता था और इसका व्यास २ इंच से लेकर कई फुट तक होता था। अच्छे यन्त्रराजों में गणना की सुविधा के लिए कई पत्र रहते थे जिन पर विविध रेखाएँ खिंची रहती थीं। इनसे ज्यामितीय रीतियों से वही फल प्राप्त किया जा सकता था जो लंबी गणना से प्राप्त होती थी। संक्षेप में यन्त्रराज की रचना निम्न प्रकार की होती है

यन्त्रराज का उदर यह धातु का गोल पत्र होता है जिसकी बारी उठी हुई होती है अर्थात् यह छिछली थाली के समान होता है। यन्त्र के अन्य भाग इसी में डाले जाते हैं। इसको अरबी में उम्म (= माँ) कहते हैं।

उम्म के भीतर ठीक नाप का एक वृत्ताकार पत्र में झंझरी की तरह कटा रहता है। देखने में ऐसा जान पड़ता है कि बहुत-सी पत्तियाँ बनी हैं परन्तु ये पत्तियाँ अनियमित स्थितियों में नहीं रहतीं। प्रत्येक पत्ती की नोक सावधानी से ठीक स्थान पर बनायी जाती है और किसी तारे की स्थिति सूचित करती है। उम्म के भीतर रेखाएँ खिंची रहती हैं या उम्म के भीतर डाले जाने वाले पत्र पर रेखाएँ खिंची रहती हैं जो झंझरी के खुले भागों से दिखायी पड़ती हैं। इस प्रकार तारों के निर्देशांक पढ़े जा सकते हैं। इस झंझरी वाले पत्र को अरबी में अनकबूत (= मकड़ी) कहते हैं।

यन्त्रराज की पीठ पर धातु की एक पट्टी घूमती है। इस पट्टी के प्रत्येक सिरे पर समकोण बनाती हुई एक छोटी पट्टी होती है। इन दो छोटी पट्टियों में एक एक छेद होता है। तारे को इन्हीं छेदों में से देखा जाता है। इस प्रकार बड़ी पट्टी जिसे अरबी में अलहिदाद कहते हैं किसी भी तारे की दिशा में कर दी जा सकती है। इसे हम दर्शनी कहा करेंगे।

ऊपर बताये गये वृत्ताकार धातुपत्र और दर्शनी एक कील के बल घूमते हैं जिसे अरबी में कुत्ब कहते हैं। इस उद्देश्य से कि कील निकल न पड़े उसमें चौरोर छेद करके एक कीलक पहना कर कस दिया जाता है। इस कीलक का मुँह बहुधा घोड़े के मुँह की आकृति का बना दिया जाता था। इसी से अरब वाले इसे फरस (= घोड़ा) कहते थे।

कुल यंत्र एक खम्भे से लटका रहता है। यह खम्भा एक धुरी में पिरोया रहता है जो स्तम्भ की धारी में जड़ा रहता है।

यंत्र की पीठ पर, जिसपर दर्शनी रहती है, अंश आदि अंकित रहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य रेखाएँ या सारणियाँ रहती हैं जिनका चुनाव यंत्र बनाने वाले या बनवाने वाले की इच्छा पर निर्भर है।

यंत्र में नापने वाले भाग तो केवल पीठ पर लगी दर्शनी और पीठ पर अंकित अंश आदि ही हैं। अन्य सब भाग केवल गणना की सुविधा के लिए रहते हैं।

सम्राट-यंत्र

जयसिंह ने जिन यंत्रों को अपने ढंग का बनवाया वे थे सम्राट-यंत्र, जयप्रकाश और राम-यंत्र। प्रत्यक्ष है कि जयप्रकाश का नाम जयसिंह के नाम पर पड़ा। राम-यंत्र का नाम जयसिंह के एक पूर्वज रामसिंह के नाम पर था। इन तीनों यंत्रों में से अधिकतम महत्त्व का सम्राट-यंत्र था। नाम से भी इतना स्पष्ट हो जाता है।

इस यंत्र से प्रत्येक क्षण आकाशीय पिंड संबंधी दो कोण पढ़े जा सकते हैं, एक तो होराकोण और दूसरा वह जिसे क्रांति कहते हैं। होराकोण पढ़ने के लिए सम्राट यंत्र में बेलनाकार वक्रतल पर अंशांकन खुदे रहते हैं और क्रांति पढ़ने के लिए सीधे समतल पर। यंत्र का स्वरूप बगल के चित्र में दिखाया गया है। यंत्र मध्य समतल के हिसाब से सममित है, अर्थात् यंत्र जैसा बायीं ओर है ठीक वैसा ही दाहिनी ओर भी है। अब यदि हम एक ओर के भाग पर, मान लें बायीं ओर वाले भाग पर, विचार करें तो हम देखते हैं कि खड़ी भीत (दीवार)

सम्राट-यंत्र।
इस यंत्र से तारों के विषुवांश और क्रांतियाँ नापी जाती हैं।

की एक कोर क ख पृथ्वी के अक्ष के ठीक समानान्तर है। च छ ज झ एक वक्राकार

जब आकाशीय पिंड याम्योत्तर के पश्चिम रहता है तब दाहिनी ओर के बेलनाकार अब का प्रयोग किया जाता है और कोर म घ के अंशाकों को पढ़ा जाता है।

कोर क ख और ग घ के अंशाकों को पढ़ सकने के लिए क ख और ग घ के बीच सीढ़ी लगी रहती है। इसी प्रकार च छ ज झ इत्यादि की बगल में भी कोई प्रबंध रहता है कि वहाँ तक द्रष्टा सुगमता से पहुँच सके। दिल्ली के सम्राटयंत्र का उत्तर दक्षिण विस्तार १२ फुट है पूरब-पश्चिम विस्तार १२५ फुट और ऊँचाई ६८ फुट।

इस यंत्र से धूप-घड़ी का काम भी निकल सकता है परंतु यदि पाठक कभी अपनी घड़ी को ऐसे यंत्र से मिलाना चाहे तो उसे स्मरण रखना चाहिए कि धूप-घड़ी और साधारण घड़ी के समयों में अंतर रहता है। यह अंतर घटा-बढ़ा करता है और घड़ी के समय से धूप-घड़ी का समय कभी आगे रहता है कभी पीछे। महत्तम अंतर १६½ मिनट तक पड़ सकता है।

जयप्रकाश

जयप्रकाश यंत्र वस्तुतः एक गोले का आधा भाग होता है जिसके भीतरी पृष्ठ पर रेखाएँ बनी रहती हैं और अंशांकन भी रहते हैं। गोले के केंद्र को निर्धारित करने के लिए दो तार तने रहते हैं जिनका मिलन-बिंदु गोले के ठीक केंद्र पर रहता है। इस बिंदु की परछाईं देखकर बताया जा सकता है कि सूर्य के निर्देशांक (जैसे होराकोण और क्रांति) क्या है। यदि परछाईं कटे हुए भागों में कहीं पड़ रही हो तो ठीक उसी प्रकार के सहयोगी यंत्र को देखा जाता है जिसमें ठीक वे भाग बन रहते हैं जो पहले यंत्र में कट रहते हैं।

ग्रहों और तारों का वेध कर सकने के लिए गोले के पृष्ठ से कुछ भाग काट कर निकाले रहते हैं। इस प्रकार वेधकर्त्ता उचित स्थान पर आँख लगा कर देख सकता है कि जब आँख केंद्र और तारा तीनों एक ही सीध में रहते हैं, तब आँख किन अंशांकों पर रहती है।

रामयंत्र

राम-यंत्र में एक बेलनाकार ऊर्ध्वाधर भीत होती है और उस पर अंशांकन रहते हैं। बीच में एक ऊर्ध्वाधर स्तंभ रहता है जिसकी परछाईं देखी जाती है। ऐसा भी हो सकता है कि सूर्य का उन्नतांश इतना बढ़ जाय कि परछाईं भीत पर न

पत्थर यंत्र के फर्श पर पड़े। इसलिए फर्श पर भी अंशांकन रहते हैं। चारों ओर भी वेध संभव हो सके इस उद्देश्य से भीत और फर्श दोनों थोड़ी-थोड़ी दूर पर कटे रहते हैं। फर्श भूमि से लगभग कमर की ऊँचाई पर बना रहता है। इस प्रकार उचित स्थान पर आँख लगायी जा सकती है। इस यंत्र से आकाशीय पिंडों के उन्नतांश (ऊँचाई) और दिगंश (दिशा) ये दोनों निर्देशांक सुगमता से जाने जा सकते हैं। जयप्रकाश यंत्र की तरह इस यंत्र में भी एक जोड़ी यंत्रों की आवश्यकता पड़ती है जिनमें से एक में ठीक वे ही भाग कटे रहते हैं जो दूसरे में नहीं कटे रहते।

दिगंश-यंत्र

दिगंश-यंत्र में दो बेलनाकार ऊर्ध्वाधर भीतें एक के भीतर एक रहती हैं और उनके केंद्र में खड़ा स्तंभ रहता है। स्तंभ लगभग ४ फुट ऊँचा होता है। भीतरी भीत ठीक उतनी ही ऊँची होती है और बाहरी उसकी दुगुनी ऊँचाई की। दोनों भीतों
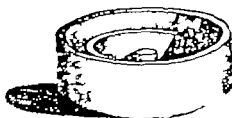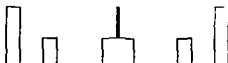
दिगंश-यंत्र काशी।
इससे दिगंश मापा जाता है।

दिगंश-यंत्र काशी।
इसमें पूर्वोक्त यंत्र की काट दिखायी गयी है।

के सिरे अंशांकित रहते हैं। भीतरी दीवार के सिरे पर आँख लगा कर देखा जाता है। केंद्रीय स्तंभ में लोहे की सीधी छड़ खड़ी रहती है जिसका ऊपरी सिरा ठीक उतनी ही ऊँचाई पर रहता है जितनी बाहरी भीत की ऊँचाई होती है। इस यंत्र से दिगंश (दिशा) नापी जाती थी।

नाडीवलय-यंत्र

नाडीवलय-यंत्र वृत्ताकार पत्थर होता है जिसके दोनों पृष्ठ समानांतर और ठीक आकाशीय विषुवत के समतल में रहते हैं। इससे तुरंत पता चल जाता है कि सूर्य (या अन्य पिंड) विषुवत के उत्तर है या दक्षिण। दिन में बीच की कील की छाया देखकर समय भी जाना जा सकता है।

दक्षिणोवृत्ति-यंत्र

याम्योत्तर में खड़ी भीत पर कील लगी रहती है और इसे केंद्र मान कर दीवार पर एक अंशांकित वृत्त खिंचा रहता है जिससे आकाशीय पिंडों का याम्योत्तर उन्नतांश
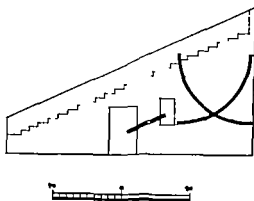
दक्षिणोवृत्ति-यंत्र काशी।
इससे याम्योत्तर उन्नतांश नापा जाता है।

नापा जा सकता है। इसी को दक्षिणोवृत्ति-यंत्र कहते हैं। सुविधा के लिए पूरे वृत्त के बदले वृत्त का केवल चतुर्थांश ही खिंचा रहता है और शिरोबिंदु के उत्तर और
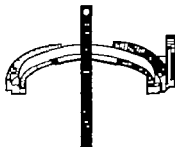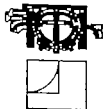
जंतर-मंतर, दिल्ली।
यह वेधशाला आज भी सुरक्षित अवस्था में है।

दक्षिण दोनों ओर वेध कर सकने के लिए दो कौसें रहती हैं और दो वृत्त-चतुर्थांश बने रहते हैं।

षष्ठांश-यंत्र

षष्ठांश-यंत्र में एक अँधेरी कोठरी में वृत्त का छठवाँ हिस्सा याम्योत्तर-समतल में बनी भीत पर अंकित रहता है। सूर्य की रश्मियाँ एक छिद्र से आती हैं। वे कहाँ पड़ती हैं यह देखकर सूर्य का उन्नतांश जाना जा सकता है।

मिश्र-यंत्र

मिश्र-यंत्र सम्राट-यंत्र की तरह होता है परन्तु बीच वाली सीढ़ी और भीतों की बगल-बगल दो या अधिक अंकित अर्धवृत्त होते हैं जिनके समतल क्षैतिज नहीं होते। दिल्ली में जो मिश्र-यंत्र है उसमें प्रत्येक ओर दो अर्धवृत्त हैं। एक अर्धवृत्त ग्रिनिच का याम्योत्तर प्रदर्शित करता है दूसरा ज्यूरिच (जरमनी) का। इस प्रकार इस यंत्र से दिल्ली में बैठे-बैठे वे वेध किये जा सकते हैं जो ग्रिनिच या ज्यूरिच में सम्राट यंत्र से हो सकते हैं।

दिल्ली और जयपुर की वेधशालाएँ

जयसिंह की प्रत्येक वेधशाला में पूर्वोक्त सब यंत्र नहीं हैं। दिल्ली में एक सम्राट-यंत्र, एक जोड़ी जयप्रकाश, एक जोड़ी राम-यंत्र और एक मिश्र-यंत्र केवल ये ही हैं। मिश्र-यंत्र की पूर्व भीत पर दक्षिणोवृत्ति-यंत्र भी बना है। मिश्र-यंत्र की उत्तर वाली भीत ऊर्ध्वाधर होने के बदले उससे ५ का कोण बनाती है। इस भीत पर एक बड़ा-सा अंकित वृत्त बना है। इसे कर्कराशि-वलय कहते हैं। जब सूर्य विषुवत् से महत्तम उत्तर दूरी पर (कर्क राशि में) पहुँचता है तो वह इस भीत के धरातल से कुछ बाहर (लगभग १ बाहर) उत्तर चला जाता है और इसलिए कुछ दिनों तक इस भीत पर धूप पड़ती है और कड़ीय कील की परछाईं अंकित वृत्त पर पड़ती है। इस यंत्र से प्रत्यक्ष हो जाता है कि दक्षिणायन कब से आरम्भ हुआ।

दिल्ली की वेधशाला बहुत कुछ टूट-फूट गयी थी परन्तु १८५२ में जयपुर के राजा ने यहाँ की मरम्मत करवा दी। १ १ में जयपुर के महाराजा ने वेधशाला का जीर्णोद्धार कराया। इस कार्य में कुछ यंत्रों को फिर से बनवाना पड़ा और प्रायः सभी अंकों को फिर से अंकित करना पड़ा। खेद है कि अधिकांश अंकन चूने में किये गये और फिर मिट रहे हैं।

जयपुर की वेधशाला सुरक्षित दशा में है। यहाँ पत्थर आदि के बड़े यंत्रों के अतिरिक्त धातु के भी कई यंत्र हैं। संग्रहालय (म्यूज़ियम) में अन्य कई यंत्र भी हैं,

को मिस्सरेह जयसिंह द्वारा संगृहीत हुए थे। जयपुर में सम्राट-यंत्र, षष्ठांश-यंत्र, राशिवलय-यंत्र, जयप्रकाश, कपाल, राम-यंत्र, दिगंश-यंत्र, नाड़ीवलय-यंत्र, दक्षिणोत्तर-भित्ति-यंत्र, दो बड़े यंत्रराज (७½ फुट व्यास का पीतल का), उन्नतांश, चक्र यंत्र और क्रांतिवृत्त-यंत्र हैं।

राशिवलय-यंत्र सम्राट-यंत्रों की तरह बने बारह यंत्रों का समूह है। एक-एक राशि के लिए एक-एक यंत्र बना है। इनमें चतुर्थांश वेधनाकार अंशांकित चाप विषुवत् के धरातल में न होकर ऐसे धरातलों में हैं कि जब यंत्र की विशेष राशि क्षितिज के ऊपर आती है तो उसका धरातल यंत्र के धरातल में रहता है।

कपाल बहुत कुछ जयप्रकाश की तरह है परंतु इससे 'उदय होते समय' राशियों का वेध किया जाता है।

चक्र यंत्र में ६ फुट व्यास का धातु का एक अंशांकित चक्र है, जिसकी धुरी पृथ्वी की धुरी के समानांतर है। चक्र पर दर्शनी लगी है। वस्तुतः यह धातु

चक्र यंत्र, काशी।
इस धातु के बने चक्र से विषुवांश और क्रांति
की नाप हो सकती है।

सिक इक्वेटोरियल यंत्र की तरह है, अंतर केवल इतना ही है कि इसमें दूरदर्शी के बदले सरल दर्शनी है।
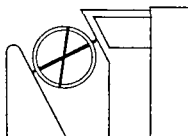
क्रांतिवृत्त-यंत्र में पीतल के दो वृत्त हैं, जिनमें से एक सदा विषुवत् के धरातल में रहता है और दूसरा रविमार्ग के धरातल में लाया जा सकता है। सिद्धांततः
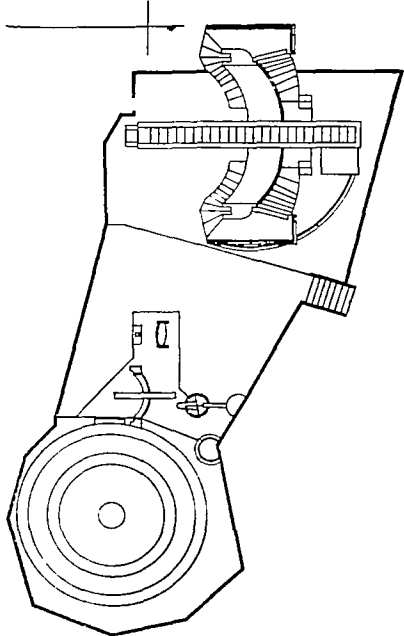
मानमंदिर, काशी।
जयसिंह की बनवायी यह वेधशाला आज भी देखी जा सकती है।

इससे नतांश और दिगंश नापे जा सकते हैं परन्तु यह सादा यंत्र है और इससे नापें सूक्ष्म नहीं हो पाती हैं ।

अन्य यंत्रों का वर्णन पहले दिया जा चुका है । जयपुर का सम्राट-यंत्र बहुत भव्य यंत्र है । यह ९ फुट ऊँचा है और १४७ फुट लंबा । इसके वृत्ताकार चतुर्थांश की त्रिज्या ४ फुट १ इंच है । इससे सिद्धान्ततः में एक विकला तक नाप संभव है परन्तु वस्तुतः इतनी सूक्ष्मता नहीं आ पाती क्योंकि परछाईं पर्याप्त तीक्ष्ण नहीं पड़ती ।

काशी की वेधशाला

काशी में जयसिंह की बनवायी वेधशाला मानमंदिर की छत पर है । मानमंदिर को अंबर-नरेश मानसिंह ने बनवाया था । वेधशाला मणिकर्णिका घाट के पास है और साधारणतः वेधशाला ही को लोग अब मानमंदिर कहते हैं । यहाँ ये प्रधान यंत्र हैं (१) सम्राट-यंत्र (२) नाड़ीवलय-यंत्र (३) दिगंश यंत्र और (४) चक्र-यंत्र ।

सम्राट-यंत्र काशी में वैसा ही बना है जैसा अन्य वेधशालाओं में परन्तु नाप में यह जयपुर के सम्राट-यंत्र से छोटा है । इसकी ऊँचाई २२ फुट ३½ इंच है और तिरछी कोर, जिसकी परछाईं देखी जाती है ३९ फुट ८½ इंच लंबी है । प्रत्येक चतुर्थांश की त्रिज्या ९ फुट ११¼ इंच है । तिरछी कोर और चतुर्थांशों की बारियाँ पत्थर की हैं और अवशेष साधारण सामग्री से बने हैं । चतुर्थांशों पर भाग कटे वाले चिह्नों पर धातु के छोटे वृत्त लगे हैं जिन पर अंक खुदे हैं । उत्तर वाली बारी पर देवनागरी अंक हैं दक्षिण वाली पर अंग्रेजी अंक । चतुर्थांशों के अंकन मिनट की चौथाई तक बने हैं साथ ही घंटे और घंटे के दशांश भी बताये हैं ।

पूरब वाली खड़ी भीत पर दक्षिणोत्तरवृत्ति-यंत्र बना हुआ है । इस यंत्र के प्रत्येक चतुर्थांश की त्रिज्या १ फुट ७ इंच है । एक पृथक बना हुआ दक्षिणोत्तरवृत्ति-यंत्र भी है ।

एक छोटा सम्राट-यंत्र भी है जिसकी ऊँचाई केवल लगभग आठ फुट है ।

अन्य यंत्रों का ब्योरेवार वर्णन आवश्यक नहीं जान पड़ता । उनके निर्माण और प्रयोग की विधि पहले बतायी जा चुकी है ।

काशी की यह वेधशाला लगभग सन् १७३७ ई० में बनी थी परन्तु विविध यात्रियों और प्राचीन लेखकों ने विविध विचार बताये हैं जिससे यह निश्चय करके पक्का नहीं माना जा सकता ।

चित्र १९

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में वेधशाला की एक बार मरम्मत हुई थी। १९१२ में महाराजा जयपुर ने सारी वेधशाला का पुनरुद्धार कराया और कार्य बहुत सन्तोष जनक रीति से हुआ।

आधुनिक यन्त्रों से तुलना

बहुधा लोग यह जानना चाहते हैं कि आधुनिक यन्त्रों की तुलना में जयसिंह के यन्त्र कितने अच्छे ठहरते हैं। उत्तर यह है कि आधुनिक यन्त्र कहीं अधिक सूक्ष्म और शुद्ध मान देते हैं। सब से छोटा यन्त्र थियोडोलाइट भी जिसमें दिगंश और उन्नतांश नापने के लिए चार इन्च या पाँच इन्च के वृत्त लगे रहते हैं जयसिंह के यन्त्रों से अधिक उत्तम मान देता है। कारण यह है कि इन वृत्तों का अंशांकन चाँदी पर किया जाता है जो पीतल की अपेक्षा कम रवादार होती है और ये अंशांकन इतने बन होते हैं कि उन्हें प्रवर्धक ताल द्वारा पढ़ना पड़ता है। फिर यन्त्र की धुरी छेद में नहीं घिरी रहती है। वह अंग्रेजी अक्षर V की तरह ठिकुओं पर आरूढ़ रहती है। इससे धुरी में ढुलक हो ही नहीं पाती। फिर, यन्त्र घड़ी की तरह सच्चा बनाया जाता है और तिस पर भी उसकी सचाई पर भरोसा न करके उसकी त्रुटियों को नापा जाता है और गणना से इन त्रुटियों के प्रभाव को दूर किया जाता है। इन त्रुटियों को नापने में एक आवश्यक क्रिया यह है कि यन्त्र के घूर्णशील भाग को उठाकर पलट दिया जाता है जिसमें एक ओर की धुरी दूसरी ओर चली जाय। यह काम ईंट-पत्थर के बने विशालकाय यन्त्रों से नहीं हो सकता। परन्तु सबसे अधिक सूक्ष्मता तो इससे आती है कि यन्त्र में दूरदर्शी लगा रहता है। दूरदर्शी में आँख लगाने पर तारा तो दिखायी पड़ता ही है साथ ही समकोण पर परस्पर काटती हुई दो महीन रेखाएँ दिखायी पड़ती हैं जिन्हें स्वस्तिक तार कहते हैं और तारा तथा ये रेखाएँ दोनों पूर्णतया तीक्ष्ण और स्पष्ट दिखायी पड़ती हैं। जब तारा ठीक स्वस्तिक के कोण पर रहता है तब दूरदर्शी ठीक तारे की दिशा में रहता है। स्वस्तिक और तारा दोनों के तीक्ष्ण और स्पष्ट दिखायी पड़ने के कारण दूरदर्शी को तारे पर साधने का काम बड़ी सूक्ष्मता से किया जा सकता है। बिना दूरदर्शी के यन्त्रों में यन्त्र के दर्शनी नामक भाग के दोनों सिरे कभी भी स्पष्ट नहीं देखे जा सकते। जब निकट सिरे को स्पष्ट देखने की चेष्टा की जाती है तब केवल वही स्पष्ट दिखायी पड़ता है जब दूर वाले सिरे को स्पष्ट देखने की चेष्टा की जाती है तब निकट वाला सिरा अस्पष्ट हो जाता है। यही कठिनाई सम्राट्-यन्त्र जयप्रकाश राम-यन्त्र इत्यादि सभी में पड़ती है और उनसे सूक्ष्म वेध नहीं किया जा सकता।

अध्याय १७

जयसिंह के बाद

जयसिंह के बाद पाश्चात्य ज्योतिष भारत में सुगमता से आने लगा क्योंकि यहाँ अँग्रेजों की शक्ति बढ़ने लगी। नीचे केवल उन्हीं ज्योतिषियों की चर्चा की जा रही है जो प्राचीन भारतीय ज्योतिष के विद्वान थे।

मणिराम

ग्रहगणितचिन्तामणि में शक १६९६ चैत्र शुक्ल १ रविवार के प्रातःकाल का क्षेपक दिया गया है जो ग्रहलाघव से बहुत कुछ मिलता है और मुख्यतः उसके सदृश है।[1] इस प्रकार मणिराम सूर्य-सिद्धान्त के अनुयायी जान पड़ते हैं परन्तु उन्होंने ग्रहलाघव की पद्धति से काम लिया है। इन्होंने स्वयं बीज करके ग्रंथ में गुणांक शुद्ध किये हैं। अयनांश सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार माना है। इस ग्रंथ में कुल १२ अधिकार हैं और श्लोकों की संख्या १२ है।

नृसिंह उपनाम बापूदेव शास्त्री

बापूदेव शास्त्री बनारस में ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्य थे और इस प्रान्त में अब तक प्रसिद्ध हैं। भारतीय और पाश्चात्य ज्योतिष के ये अगाध विद्वान थे। इनका जन्म महाराष्ट्र प्रान्त के अहमदनगर जिले में गोदा नदी के किनारे टोंके गाँव में शक १७४३ (१८२१ ई०) में हुआ था। इन्होंने नागपुर में ढुंढिराज मिश्र से बीजगणित लीलावती और सिद्धान्तशिरोमणि का अध्ययन किया और अन्त में काशी में आकर संस्कृत कालेज में प्रधान गणिताध्यापक हुए। आप बंगाल एशिया

[1] इस अध्याय की सारी बातें मेरे द्वारा संपादित मासिक विज्ञान-सागर नामक पत्र में छपे श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव के एक लेख से ली गयी हैं।

रिंग सोसाइटी के आनररी सदस्य तथा कलकत्ता और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों के सदस्य थे। आपको महामहोपाध्याय की पदवी भी मिली थी।

आप भारतीय ज्योतिष में सुधार करने की आवश्यकता समझते थे और चाहते थे कि पंचांगों की गणना दृक् वेधसिद्ध मूलांकों से करनी चाहिए। इसका प्रचार करने के लिए आपने पुस्तकें लिखीं और पंचांग भी बनाना आरम्भ किया परन्तु उस समय काशी के पंडितों ने इस पर इनका घोर विरोध किया। दैवज्ञविलास के म० म० सुधाकर द्विवेदी इस विरोधी दल के अगुआ थे, इसलिए ज्योतिष संबंधी सुधार अब तक नहीं हो पाया। आश्चर्य तो यह है कि जिस सूर्य-सिद्धान्त को सुधाकर द्विवेदी स्वयं आर्षग्रन्थ नहीं मानते थे और कहते थे कि यह हिपार्कस नामक यवन ज्योतिषी के ग्रन्थ के आधार पर लिखा गया है, उसी को प्रामाणिक मानकर पंचांग बनाने के लिए आवश्यक समझते थे और पहले के आचार्यों के बताये हुए बीज संस्कार की पद्धति को भी त्याज्य समझते थे। सुधाकर द्विवेदी का मत था कि तिथियाँ अदृश्य घटनाएँ हैं, इन्हें सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार बनाना चाहिए, ग्रहण दृश्य घटना है, उसकी गणना आधुनिक ज्योतिष से करनी चाहिए। उत्तर प्रदेश के कई पंचांग आज भी इसी सिद्धान्त पर बनते हैं जिसका मुख्य कारण यही जान पड़ता है कि सूर्य-सिद्धान्त का नाता लोगों ने धर्म से जोड़ रक्खा है और इसलिए पूजा-पाठ की गणना के लिए उसके बदले किसी अन्य ग्रंथ को ठीक मानना अनुचित समझते हैं, परन्तु यदि वे ग्रहण की भी गणना सूर्य-सिद्धान्त से करते हैं तो घंटों का अंतर पड़ जाता है और जनता भी देख लेती है कि ज्योतिषीगण अज्ञानी ढोंगी हैं।

बापूदेव शास्त्री के बनाये हुए ग्रंथों के नाम नीचे दिये जाते हैं :

रेखागणित प्रथमाध्याय, त्रिकोणमिति, सायनवाद, प्राचीन ज्योतिषाचार्याशय वर्णन, अष्टादश विचित्र प्रश्न संग्रह सोत्तर, तत्त्वविवेक परीक्षा, मानमंदिरस्थ यंत्र वर्णन और अंकगणित। ये सब संस्कृत भाषा में हैं और छपकर प्रकाशित हुए हैं। कुछ संस्कृत ग्रंथ अप्रकाशित हैं जैसे चलन-कलन, सिद्धान्त के २ श्लोक, चापीय त्रिकोणमिति संबंधी कुछ सूत्र, सिद्धान्तग्रंथोपयोगी टिप्पणी, यंत्रराजोपयोगी छेदक और लघुशंकुच्छिन्न क्षेत्रगुण।

'कठोरकालान्तर भास्कराचार्यात प्रायेण भारतवर्षेऽस्य सूर्यसिद्धान्तस्य प्रचारो जात।' सुधावर्षिणी टीका की भूमिका पृ० १ (१९२५ ई० की छपी)।

पंचांग विचार पृ० ११, १२।

हिंदी में इनके नीचे लिखे ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं अंकगणित बीजगणित क्षेत्रमिति विचार और सामान्यवाक्यानुवाद। सिद्धांतशिरोमणि के गोलाध्याय का अँग्रेजी अनुवाद इन्होंने विलकिनसन के सहयोग से किया है। सूर्यसिद्धांत का अँग्रेजी अनुवाद भी किया है। ये दोनों ग्रंथ ई सन १८६१ ६२ में प्रकाशित हुए थे।

आपने सिद्धांतशिरोमणि के गणित और गोल दोनो अध्यायों का शोधपूर्वक टिप्पणी के साथ एक संस्करण शक १७८८ (१८६६ ई) में और लीलावती का १८ ५ शक में प्रकाशित किया था।

आप शक १७९० से १८१२ तक नॉटिकल अलमनक के आधार पर पचांग बनाकर प्रकाशित करते थे। अब भी आपके नाम के पचांग में यही विशेषता पायी जाती है। १८१२ शक में आप का देहावसान हुआ।

नीलांबर शर्मा

नीलांबर शर्मा का जन्म शक १७४५ (१८२३ ई) में हुआ था और आप गया और गंडकी के संगम से दो कोस पर पटना के रहने वाले मैथिल ब्राह्मण थे। आप ने यूरोपीय पद्धति के अनुसार गोलप्रकाश नामक ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखा है जिसको १७९३ शक में प बापूदेव शास्त्री ने शोधकर छपाया था। इसमें पाँच अध्याय हैं ज्योत्पत्ति त्रिकोणमितिसिद्धांत चापीयरेखागणितसिद्धांत चापीय त्रिकोणमितिसिद्धान्त और प्रश्न।

विनायक (उपनाम केरो लक्ष्मण छत्रे)

विनायक (उपनाम केरो लक्ष्मण छत्रे) का जन्म महाराष्ट्र प्रान्त में शक १७४६ (१८२४ ई) में हुआ था। आप गणित ज्योतिष और सृष्टि-विज्ञान में बड़े निपुण थे और आपने बम्बई प्रान्त के अनेक स्कूलों और कालेजों में उच्च पद पर काम किया। आपका लोकप्रिय नाम नाना था।

आपने फ्रांसीसी और अँग्रेजी ज्योतिष ग्रंथों के आधार पर ग्रहसाधनकोष्ठक नामक एक मराठी ग्रंथ शक १७७२ में तैयार किया था जो शक १७८२ में छापा गया था। इस ग्रंथ में वर्तमान सूर्य-सिद्धांत के अनुसार किया गया है परन्तु यह प्रतिस्थिति सायन किया है जीटा पिसियम को रेवती का योगतारा माना है जो शक ४९६ में वसंत विषुव पर था। अयन की वार्षिक गति ५ १ विकला मानी है। शक १७८७ (१८६५ ई) से आपने नाविक पचांग के अनुसार पचांग प्रकाशित करना आरंभ किया। इस काम में आपा साहब पटवर्धन ने आप की सहायता

की जिससे यह पचांग खूब चलन लगा और इसका नाम पड गया नानापटवर्धनी पचांग।

तिथि-साधन के लिए तिथि चिंतामणि के समान एक ग्रथ नाना साहब ने लिखा था परतु अब इसका प्रचार नही है।

आपने स्कूलो के लिए मराठी में पदार्थविज्ञान-शास्त्र और अंकगणित की पुस्तके लिखी थी।

लेले

विसाजी रघुनाथ लेले का जन्म नासिक मे शक १७४९ (१८२७ ई०) में हुआ था और शक १८१७ म ६८ वर्ष की अवस्था में देहान्त हुआ। आपने मराठी पत्रिकाओ में इस बात का खूब आन्दोलन किया कि पचांग सायन पद्धति से बनाना चाहिए और इस बात म केरोपत का विरोध किया। कई वर्ष तक बहुतायत की सहायता से सायन पचांग बनाकर चलाते रहे। फिर नाविक पचांग की सहायता से काम लेते थे परंतु इस काम के लिए अपना कोई स्वतन्त्र ग्रथ नही बनाया।

रघुनाथ

चिंतामणि रघुनाथ आचार्य का जन्म शक १७५ (१८२८ ई०) में तामिल प्रान्त में हुआ था। आप यूरोपीय ज्योतिष और गणित के अच्छे विद्वान थे और रायल एशियाटिक सोसायटी के फेलो थे। १८४० ई० से आप मद्रास वेधशाला में काम करने लगे और उसके प्रथम असिस्टेंट के पद पर पहुँच गये थे। आपने यहाँ से तारो की एक सूची तैयार की और दो स्वविकारी तारो की खोज की। ज्योतिष चिंतामणि ग्रथ आपका ही का लिखा हुआ है जिसके तीन भाग है। पहले में मध्यम गति पृथ्वी आदि ग्रहो के आकार और उनके महत्त्व पर विचार किया गया है। दूसरे में स्फुट गति आदि पर लिखा गया है और तीसरे का नाम करण-पद्धति है जिसमें ग्रह-गणित करने के लिए बहुत से कोष्ठक है। यह ग्रथ तामिल भाषा में लिखा गया था।

आप शक १७९१ से नाविक पचांग के आधार पर दृग्गणित पचांग बनाकर प्रकाशित करने लगे जिसे आपके पुत्र शक १८ ८ तक चलाते रहे। आपका वर्ष मान सूर्यसिद्धात के अनुसार था और अयनांश २२ ५ था[1]।

[1] भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ ३ ४ ३ ५।

गोडबोले

कृष्णशास्त्री गोडबोले का जन्म शक १७५३ (१८३१ ई०) में बम्बई प्रांत में हुआ था। इस प्रांत के कई स्कूलों के शिक्षक के पद पर रह कर आप हेडमास्टरी से रिटायर हुए और पूना में रहने लगे थे। आपने बम्बई की वेधशाला में भी कुछ दिन काम किया था। १८८९ ई० में आपका स्वर्गवास हुआ।

शक १७७८ में आपने वामनकृष्ण जोशी गाडे के सहयोग से ग्रहलाघव का मराठी भाषांतर उदाहरण सहित किया जो प्रधानतः विश्वनाथ की टीका का भाषांतर है। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण भी छपा है। कृष्ण शास्त्री ने ग्रहलाघव की उपपत्ति भी मराठी में लिखी है। शक १८ ७ में एक छोटा-सा ज्योतिषशास्त्र का इतिहास लिखा था। आपने पाठशालोपयोगी बहुत-सी गणित की पुस्तकों की रचना की थी।

चंद्रशेखर सिंह

चन्द्रशेखर सिंह सामन्त का जन्म शक १७५७ (१८३५ ई०) में उड़ीसा प्रांत में कटक से ५ १ मील पश्चिम खण्डपारा गाँव के एक राजवंश में हुआ था। बचपन में आपने संस्कृत व्याकरण स्मृति पुराण तर्कशास्त्र और आयुर्वेद की शिक्षा पायी थी और सभी महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रंथों को पढ़ लिया था। जब आप दस वर्ष के थे तब आपके एक चाचा ने आपको फलित ज्योतिष का कुछ पाठ पढ़ाया और आकाश के कुछ नक्षत्रों और ग्रहों को दिखाया। धीरे-धीरे इस बालक का मन आकाश का दर्शन करने और तारों की बदलती हुई स्थिति को देखने में लग गया। इन्होंने घर के पुस्तकालय में संस्कृत सिद्धांत के जितने भी ग्रंथ मिले सबको अपने आप ही भाष्यों की सहायता से पढ़ डाला।

जब आप ग्रहों की स्थिति की गणना करने लगे तब आपको विदित हुआ कि गणना से ग्रहों की जो स्थिति निकलती थी वह आकाश में ग्रहों की प्रत्यक्ष स्थिति से नहीं मिलती थी दोनों में बड़ा अन्तर पड़ता था।

अपने बनाये स्थूल यंत्रों से आपने सूर्य चंद्रमा और ग्रहों के भुजांशों का संशोधन करके एक पुस्तक लिख डाली जिसका नाम है सिद्धान्तदर्पण। यह ज्योतिष-सिद्धांत का एक सुन्दर ग्रंथ है। जगन्नाथपुरी और उड़ीसा प्रांत में इसी के अनुसार बनाये हुए पंचांग आज माने जाते हैं।

सिद्धान्तदर्पण का मूल संस्करण पर उड़िया अक्षरों में लिखा गया था जिसको कटक कालेज के गणित के अध्यापक श्री योगेशचन्द्र राय ने अपनी अँग्रेजी भूमिका

के साथ सन १८९९ ई (श १८२१) में कराया है। यह ग्रन्थ उडीसा और बिहार के ज्योतिष के छात्रों को पढाया जाता है।

शंकरबालकृष्ण दीक्षित

शंकर बालकृष्ण दीक्षित का जन्म भी शक १७७५ में आषाढ शुक्ल १४ सौम वार (ता २०-२१ जुलाई, सन १८५१ ई) को रत्नागिरी के मुरुड गाँव में हुआ था। कठिनाई के कारण आपकी शिक्षा मरिगुलन्यन से अधिक नहीं हुई थी। महाराष्ट्र प्रान्त के अनक मराठी और अंग्रेजी स्कूलों और ट्रेनिंग कालेजो में आपने शिक्षक का काम किया। आपकी बुद्धि बडी प्रखर थी। आपने मराठी में विद्यार्थी बुद्धिवर्धिनी (सन १८७६ ई) सृष्टिचमत्कार (१८८२ ई) ज्योतिर्विलास (१८९२ ई) और धर्ममीमांसा (१८९५ ई) नामक पुस्तके छपाई थी। डक्स्मू एन सिवेल के सहयोग से आपने इडियन कैलेंडर नामक ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखा था। परन्तु आपका सबसे उपयोगी और गभीर विद्वत्ता का ग्रन्थ मराठी का भारतीय ज्योतिषशास्त्र है जिसे आपने सन १८८७ ई (शक १८ ९) नवम्बर मास में आरम्भ किया था और सन १८८८ (शक १८१) के अक्टूबर तक समाप्त किया। इस *पुस्तक पर आप को पूने की दक्षिण पुरस्कार कमेटी से ४५) का पुरस्कार* मिला था।

इस ग्रन्थ के पहले भाग के पहले विभाग में वैदिक काल का वर्णन है जिसमे वैदिक संहिता और ब्राह्मण मे आये हुए ज्योतिष सबंधी वचनों का अवतरण देकर बताया गया है कि वैदिक ऋषियों को ज्योतिष सबंधी बातो का कितना ज्ञान था।

दूसरे विभाग मे वेदांगकाल की ज्योतिष का वर्णन है। इसमें आर्च और याजुष ज्योतिष का विस्तृत वर्णन है। इसके कुछ श्लोकों का अर्थ भी जो पहले नहीं ज्ञात था किया गया है। अथर्व ज्योतिष की भी चर्चा है। इसी विभाग में कल्पसूत्र निरुक्त और पाणिनीय व्याकरण में आये हुए ज्योतिष सबंधी वचनों का *विवेचन है। यह पहले प्रकरण में है। दूसरे प्रकरण में स्मृति और महाभारत में* आये हुए सब ज्योतिष सबंधी वचनों का विवेचन किया गया है। इस प्रकार पहला भाग विभाग अठ्ठैयी भाग के १४७ पृष्ठो में समाप्त हुआ है।

दूसरे भाग में ज्योतिष सिद्धांत-काल के ज्योतिष शास्त्र का इतिहास दिया गया है। पहले खड का नाम गणित-स्कंध है जिसके मध्यमाधिकार प्रकरण १ में प्राचीन सिद्धांतपंचक के पितामह-सिद्धांत वसिष्ठ-सिद्धांत रोमक-सिद्धांत और पुलिश-सिद्धांत का विवेचन बडी विद्वत्ता के साथ किया गया है। फिर वर्तमान काल के

सूर्य-सिद्धांत सोम-सिद्धांत वसिष्ठ-सिद्धांत और शाकल्य-संहितोक्त ब्रह्म-सिद्धांत का उत्तम वर्णन है। इसके बाद प्रथम आर्यभट (शक ४२१) से लेकर सुधाकर द्विवेदी (शक १८ १) तक के ज्योतिष के प्रसिद्ध आचार्यों और उनके ग्रंथों का वर्णन १११ पृष्ठों में किया गया है। ग्रंथों में लिखे हुए काल की सत्यता जाँचकर लिखी गयी है और यह भी बताया गया है कि किस ग्रन्थ में क्या विशेषता है।

इसके बाद भारतीय ज्योतिष पर मुसलमान ग्रंथकारों विशेषकर अलबीरूनी के मत का विवेचन किया गया है।

दूसरे प्रकरण में अयनचलन के संबंध में भिन्न-भिन्न आचार्यों के मतों का तुलनात्मक विवेचन है। तीसरे प्रकरण में अयन (विषुव चलन) पर विस्तृत विवेचन किया गया है। चौथा प्रकरण वेधप्रकरण है जिसमें दिखाया गया है कि हमारे ग्रन्थों में वेध संबंधी बातों और यंत्रों का कैसा वर्णन है।

स्पष्टाधिकार के प्रकरण १ में ग्रहों की स्पष्ट गति और स्थिति के संबंध में तुलनात्मक विवेचन है। प्रकरण २ में पंचांग और विविध सना तथा संवतों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकरण में पंचांगशोधन विचार नामक एक अध्याय है जिसके १२ पृष्ठों में दिखाया गया है कि पंचांग का शोधन करना क्यों आवश्यक है, सायन पंचांग क्यों स्वाभाविक है।

इस प्रकार कुल ४८२ पृष्ठों में इतनी बातें लिखी गयी हैं। इसके आगे संक्षेप में त्रिप्रश्नाधिकार, चंद्रसूर्य-ग्रहणाधिकार, छायाधिकार, उदयास्ताधिकार, शृंगोन्नति ग्रहयुति, भग्रहयुति और महापात अध्याय हैं। भग्रहयुति अध्याय में योगतारों के भोगांशों और शरों पर तुलनात्मक विचार विस्तार के साथ किया गया है।

संहितास्कंध में संहिता और मुहूर्त संबंधी पुस्तकों का वर्णन है।

जातकस्कंध में जातकशास्त्र संबंधी पुस्तकों का वर्णन है और बताया गया है कि जन्मपत्री क्या है, कैसे बनायी जाती है और उसका सिद्धांत क्या है। अंत में ताजिक पर भी थोड़ा-सा विचार है जिससे वर्षफल बनाया जाता है। (ताजिक —फलित ज्योतिष के एक विभाग का मुसलमानी नाम)

उपसंहार में भारतीय ज्योतिष की तुलना अन्य देशों के ज्योतिष से की गयी है और इस संबंध में अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानों के मतों का विवेचन किया गया है।

अंत में संस्कृत और अन्य ज्योतिष ग्रन्थों की एक बृहत् सूची तथा ज्योतिष ग्रन्थकारों की सूची दी गयी है। ज्योतिष के अतिरिक्त उन अन्य पुस्तकों की भी सूची है

जिसमें ज्योतिष संबंधी अवतरण दिये गये हैं। अन्त में विषयानुसार सूची देकर ५९ पृष्ठों में पुस्तक समाप्त की गयी है।

केतकर

वेंकटेश बापूजी केतकर का जन्म पौष शुक्ल १४ शुक्रवार शक १७७५ (१८५४ ई) में हुआ था और १८७४ ई से आप बंबई प्रान्त के स्कूलों में शिक्षण का काम करने लगे थे। आप बागलकोट के अंग्रेजी स्कूल में हेडमास्टर के पद पर भी रहे हैं। आप प्राच्य और पाश्चात्य ज्योतिष के अद्वितीय विद्वान और ग्रन्थकार थे। आपकी मृत्यु शक १८५२ (१९३ ई) में ७६ वर्ष की अवस्था में हुई।

आपने ज्योतिष पर कई ग्रन्थ लिखे हैं जिनके नाम ये हैं : संस्कृत में ज्योतिर्गणित केतकीग्रहगणित वैजयन्ती केतकी परिशिष्ट, सौरार्यब्रह्मपक्षीय तिथिगणितम् केतकी वासना भाष्यम्, धास्यमुख्यचापमयनाख्य निर्णय और भूमण्डलीय सूर्यग्रहणगणित और मराठी में नक्षत्र विज्ञान ग्रहगणितम् पोषणग्रस्त भूमण्डलीयगणित।

ज्योतिर्गणित

यह बड़े आकार के लगभग ५ पृष्ठों का ग्रन्थ है जिसमें पंचांग बनाने ग्रहण की गणना करने नक्षत्रों के उदय और अस्त का गणित करने की सभी आवश्यक बातों के लिए कोष्ठक दिये गये हैं जिनके आधार पर पंचांग सुगमता और शुद्धता पूर्वक बनाये जा सकते हैं। जिन पाश्चात्य गवेषणाओं और गणनाओं के आधार पर यह कोष्ठक बनाये गये हैं उनके सूत्र भी दे दिये गये हैं। दशमलव भिन्न का उपयोग कर के गुणा भाग करने का काम बहुत सरल कर दिया गया है। भुजज्या कोटिज्या आदि की सारिणी दे दी गयी है। यह एक अपूर्व ग्रन्थ है जिससे ग्रन्थकर्ता के गंभीर परिश्रम और विद्वत्ता का पता चलता है। इसके पृष्ठांक शक १८ के हैं। इस ग्रन्थ में इन्होंने रेवती योगतारा को नक्षत्र चक्र का आदि बिन्दु मानकर तथा चित्रा को नक्षत्र चक्र का मध्य मानकर दोनों प्रकार से अयनांश दे दिये हैं क्योंकि महाराष्ट्र प्रान्त में इन दोनों पद्धतियों से पंचांग बनाये जाते हैं और प्रत्येक के समर्थक बड़े-बड़े विद्वान हैं। परन्तु पीछे से ये केवल चित्रा मत के समर्थक हो गये और केतकी ग्रहगणित तथा पंचांग अयनांश निर्णय में यह सिद्ध किया कि प्राचीन परंपरा के अनुसार चित्रातारा ही नक्षत्र चक्र का मध्य होना चाहिए, जिससे अश्विनी नक्षत्र या मेष का आदि बिंदु चित्रा से १८ पर पड़ता है। यह ग्रन्थ शक १८१२ के लगभग लिखा गया था।

केतकी ग्रहगणित

यह ग्रहलाघव के ढंग पर, संस्कृत श्लोकों में अर्वाचीन ज्योतिष के आधार पर पंचांग बनाने के लिए उपयोगी ग्रंथ है। पुराने ढंग के पंडित श्लोकों को याद करके गणना करने का काम सुगमता से कर सकते हैं, अतः उनके लिए यह बहुत उपयोगी है। इससे तिथि नक्षत्र आदि की तथा ग्रहों की स्पष्ट गणना पर्याप्त शुद्ध होती है।

इस पर ग्रंथकार ने अपनी अंकविवृति व्याख्या भी की है जिसमें उदाहरण देकर ग्रंथ को और सुगम बना दिया है। इसके साथ ग्रंथकार के सुयोग्य पुत्र दत्तराज वेंकटेश केतकर ने केतकीपरिमलवासनाभाष्य नामक टीका लिखी है जिसमें चित्र देकर वैज्ञानिक रीति से नियमों की उपपत्तियों का वर्णन विस्तार के साथ किया है। यह पुस्तक शक १८१८ में लिखी गयी थी और शक १८५१ (१९२९ ई.) में आर्यभूषण मुद्रणालय से प्रकाशित हुई। संस्कृत में अर्वाचीन ज्योतिष पर यह अच्छी पुस्तक है।

वैजयन्ती—इसमें पंचांगोपयोगी तिथि नक्षत्र और करणों की गणना करने के लिए सारणियाँ हैं जिनसे गणना बड़ी आसानी से की जा सकती है। इसमें चंद्रमा में केवल ५ संस्कार देकर काम किया गया है।

नक्षत्र विज्ञान—इसमें आकाश के विविध प्रकार के तारों का वर्णन, उनकी सूची, गोलार्ध चार तथा आकाश के मानचित्र दिये गये हैं। जिन नक्षत्रों के नाम भारतीय ज्योतिष में नहीं हैं उनके नाम इन्होंने स्वयं बनाए हैं, जैसे 'ओफियूकस' के लिए 'भुजंगधारि', 'पगासस' के लिए 'उच्चैःश्रवा', 'लायरा' के लिए 'स्वरमंडल' आदि।

तिलक

बाल गंगाधर तिलक का जन्म शक १७७८ (१८५६ ई.) में हुआ। आप गणित ज्योतिष विज्ञान प्राचीन इतिहास दर्शन और वेद के अद्वितीय विद्वान थे। राजनीति में भी आप प्रकांड पंडित और नेता थे जिसके कारण आपको कई बार जेल जाना पड़ा था। इससे आप देश-विदेश सभी जगह प्रसिद्ध हैं और आपको लोकमान्य कहा जाता है। आप मराठा नामक अंग्रेजी पत्र तथा 'केसरी' नामक मराठी पत्र के संस्थापक संपादक थे। आप के लिखे तीन ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं (१) ओरायन (२) आर्कटिक होम इन दि वेदाज और (३) गीता रहस्य।

ओरायन

यह अंग्रेजी में ज्योतिष-संबंधी ग्रंथ है और सन १८९३ ई० में लिखा गया था। इसमें आपने वेद ब्राह्मण संहिता तथा ज्योतिष के ग्रंथों से सिद्ध किया है कि किसी समय वसंत विषुव ओरायन (मृगशिरा) नामक नक्षत्र में था जिससे वेद का काल ४५०० वर्ष ईसा पूर्व ठहरता है। इसके पहले पाश्चात्य विद्वान कहते थे कि वेदकाल २००० ईसा पूर्व से अधिक पुराना नहीं है। आप के मत का समर्थन प्रोफेसर याकोबी ने भी अपनी स्वतंत्र गणना से किया। इस ग्रंथ की गंभीरता और नवीनता पर विदेशी पण्डित मैक्समूलर भी मुग्ध थे।

आर्कटिक होम इन दि वेदाज भी अंग्रेजी का ग्रंथ है जिसमें आपने वेदों पुराणों तथा ईरान की पौराणिक कथाओं और भूगर्भविज्ञान के आधार पर सिद्ध किया है कि प्राचीन आर्य उत्तरी ध्रुव के पास निवास करते थे और वहीं से जैसे-जैसे यह भाग अनुपयुक्त होता गया वे भारतवर्ष में आये। यह पुस्तक सन १९०३ ई० में लिखी गयी थी।

गीतारहस्य

यह दर्शनशास्त्र का एक अपूर्व ग्रंथ है। इसमें भगवद्गीता के अनुवाद के साथ-साथ प्राच्य और पाश्चात्य दर्शन की तुलना कर के दिखाया गया है कि भगवद्गीता का सिद्धान्त क्या है। इसी के एक श्लोक 'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्' के अर्थ की खोज में आपने 'ओरायन' ग्रंथ का निर्माण किया था।

इन पुस्तकों के सिवा आपने केसरी समाचार पत्र के द्वारा महाराष्ट्र प्रांत में ज्योतिष संबंधी बातों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और बताया कि पंचांग बनाने की रीति में किस प्रकार का सुधार करने की आवश्यकता है। आप के मत के अनुसार एक पंचांग महाराष्ट्र प्रांत में चलता है जिसमें अयनांश का मान रेवती पक्ष के अनुसार माना जाता है[1]। आप का देहावसान सन १९२१ ई० में हुआ।

सुधाकर द्विवेदी

सुधाकर द्विवेदी काशी के निकट खजुरी ग्राम के निवासी थे। आप का जन्म शक १७८२ (१८६० ई०) में हुआ था। पं० बापूदेव शास्त्री के पेंशन लेने पर आप बनारस संस्कृत कालेज के गणित और ज्योतिष के मुख्य अध्यापक हुए। आप को सरकार से महामहोपाध्याय की पदवी मिली थी। आप शक १८४४ (१९२२ ई०) में स्वर्गवासी हुए।

[1] अर्थात रेवती (जीटा पिसियम) नामक तारे से नक्षत्र चक्र का आरंभ माना जाता है।

आप गणित और ज्योतिष के अद्वितीय विद्वान थे। आपने अनेक प्राचीन ज्योतिष ग्रंथों को शोध करके टीकाएँ लिखी हैं और अर्वाचीन उच्च गणित पर स्वतन्त्र ग्रंथ भी लिखे हैं। आपके स्वतंत्र ग्रंथों के नाम ये हैं

(१) दीर्घवृत्त लक्षण (सन् १८) (२) विचित्र प्रश्न (सन् १८ १) जिसमें २ कठिन प्रश्न और उत्तर हैं (३) वास्तव चन्द्रशृंगोन्नतिसाधन (सन् १८ २) इसमें लल्ल, भास्कर, ज्ञानराज, गणेश, कमलाकर, बापूदेव आदि की लिखी रीतियों में दोष दिखा कर यूरोपीय ज्योतिषशास्त्र के अनुसार वास्तव शृंगोन्नति साधन कैसे किया जाता है दिखाया गया है। इसमें २ पद्य हैं।

४—द्युचरचार (सन् १८ ४) में ग्रहों की कक्षा का विवेचन यूरोपीय ज्योतिष के अनुसार किया गया है।

५—पिण्डप्रभाकर सन् १८ ७ में लिखा गया था इसमें वास्तु (भवन-निर्माण) संबंधी बातें हैं।

६—भाभ्रमरेखा निरूपण में दिखाया गया है कि शंकु की छाया से कैसा मार्ग बनता है।

७—धराभ्रम में पृथ्वी के दैनिक भ्रमण का विचार किया गया है।

८—ग्रहणकरण में इस पर विचार किया गया है कि ग्रहणों का गणित कैसे करना चाहिए।

९—गोलीय रेखागणित।

१०—यूक्लिड की ६ठी, ११वीं और १२वीं पुस्तकों का संस्कृत में श्लोकबद्ध अनुवाद।

११—गणक तरंगिणी में भारतीय ज्योतिषियों की जीवनी और उनकी पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय है जिसकी चर्चा यहाँ कई जगह पर आयी है। यह सन् १८९२ में लिखी गयी थी।

ये सब ग्रंथ संस्कृत में हैं। सुधाकरजी की संस्कृत टीका के ग्रंथ ये हैं—

१—यन्त्रराज पर प्रतिभाबोधक टीका सन् १८९५।

२—भास्कराचार्य की लीलावती पर सोपपत्तिक टीका सन् १८ ।

३—भास्कराचार्य के बीजगणित की सोपपत्तिक टीका सन् १८८ ।

४—भास्कराचार्य के करण कुतूहल की वासनाविभूषण टीका सन् १८ १।

५—वराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका पर पञ्चसिद्धान्तिकाप्रकाश टीका सन् १८८ में डा० डाक्टर थीबो की अंग्रेजी टीका और भूमिका के साथ सन् १८८९ में प्रकाशित हुई थी।

६—सूर्यसिद्धांत की सुधावर्षिणी टीका १९ ९ ई के जून मास में पूर्ण हुई थी और इसका पहला संस्करण 'बिब्लियोथिका इंडिका' के दो भागों (संख्या ११८७ और १२९९) म सन १९ ९ और १९११ ई में प्रकाशित हुआ था। इसका दूसरा सस्करण बंगाल की एशियाटिक सोसायटी ने १९२५ ई में प्रकाशित किया जो इस समय काशी में मिलता है।

७—ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत टीका सहित १९ २ ई में प्रकाशित हुआ था।

८—आयभट द्वितीय का महासिद्धांत टीका सहित पहले बनारस सस्कृत सीरीज संख्या १४८ १४९ और १५ में निकला था जो १९१ में पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया था।

९—याजुष और आर्च ज्योतिष पहले बनारसकी 'पंडित' पत्रिका में सोमाकर और सुधाकर के भाष्य सहित निकला था जो १९ ८ ई में अलग पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया गया था।

१०—ग्रहलाघवकी सोपपत्तिक टीका जिसमें मल्लारि और विश्वनाथ की टीकाएँ भी सम्मिलित की गयी हैं।

इन टीकाओं के अतिरिक्त हिंदी में चलनकलन चलराशिकलन और समीकरणमीमांसा नाम की उच्च गणित की पुस्तकें भी सुधाकर जी की लिखी हुई हैं। अंतिम पुस्तक दो भागों में विज्ञान-परिषद प्रयाग से प्रकाशित है। आपने हिंदी भाषा की भी कई पुस्तकें लिखी हैं।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि सुधाकर द्विवेदी इस प्रान्त में ज्योतिष और गणित के अद्भुत विद्वान हो गये हैं। पता नहीं आप ज्योतिष के आवश्यक सुधार के प्रतिकूल क्यों थे जब इस संबंध म बहुत प्राचीनकाल से यह परंपरा चली आयी है कि दृक्तुल्यता के लिए आवश्यक सुधार करते रहना चाहिए। इस विषय पर आपका मत बापूदेव शास्त्री के संबंध में बताया जा चुका है।

पिल्लई

एल डी स्वामी कन्नु पिल्लई का जन्मकाल जन्मस्थान आदि का पता नहीं मिल सका परंतु आपकी अँग्रेजी में लिखी इंडियन क्रोनोलोजी एक अनोखा ग्रंथ है। इसमें सौर और चांद्र तिथियों और ग्रहों की गणना करने की रीति उपपत्ति और सारणियाँ दी गयी हैं और इससे ईसवी सन के २ वर्षों की तिथि नक्षत्र लग्नपत्र तथा अन्य ऐतिहासिक लेखों की तिथियों की शुद्धता परखी जा सकती है। इसमें भारतवर्ष भर में प्रचलित सभी प्रकार के संवतों तिथियों और तारीखों के आमने

अक्ष के अन्तर के स्थानों तथा बम्बई और कलकत्ता के वर्ष के प्रतिदिन के सूर्योदय का समय दिया गया है। चौदहवी में नर्मदोत्तर भारत में व्यवहार किये जाने वाले ११६९ ई० से १९४ ई० तक के संवत्सरचक्र की सारणी है। पन्द्रहवी में आरम्भ से लेकर १४२१ हिजरी सनो के समानार्थक ईसवी सन और उन महीनो के नाम जिनमें हिजरी वर्ष आरम्भ होता है दिये गए है। सोलहवी मे अर्वाचीन चान्द्र गणना के अनुसार स्पष्ट तिथि निकालने के कोष्ठक है। सत्रहवी में सूर्य मगल बुध गुरु शुक्र शनि और राहु को स्पष्ट करने के कोष्ठक है। अठारहवी मे उपर्युक्त ग्रहो की स्पष्ट स्थिति दस-दस दिन के अतर पर सन १८४ से १९१९ ई० तक की बतायी गयी है जो जन्मपत्र मिलाने वालो के लिए बहुत ही उपयोगी है। उन्नीसवी मे घडी और पल के मान दिन के दशमलव भिन्नो मे तथा बीसवी में घटा और मिनट के मान दिन के दशमलव भिन्नो मे दिये गये है। एक्कीसवी में नक्षत्रपादो का (प्रत्येक नक्षत्र के एक-एक चरण का) नाम बताया गया है। बाईसवी में कलियुग के आरम्भ से किसी दिन तक के दिनो की सख्या (अहर्गण) जानने के कोष्ठक है। अत में एक वृष्टि सारणी है जिससे तिथियो की स्पष्ट गणना मौखिक ही की जा सकती है।

यह ग्रन्थ ज्योतिष के विद्यार्थियो इतिहासज्ञो पुरातत्त्व के अन्वेषको और अदालतो के लिए अत्यत उपयोगी है। इसके विद्वान लेखक का देहावसान अभी हाल ही में हुआ है।

छोटेलाल

लाला छोटेलाल का जन्म कब और कहाँ हुआ था यह नही ज्ञात हो सका। आप एक सुयोग्य इञ्जीनियर थे। कुछ वर्ष हुए आप का देहावसान हो गया। वेदाङ्ग-ज्योतिष पर आपने अँग्रेजी में एक सुन्दर भाष्य लिखा है जो १९ ६-७ के हिंदुस्तान रिव्यू मे प्रकाशित हुआ था। इसकी चर्चा वेदाङ्ग-ज्योतिष के सबध में आ चुकी है। उससे प्रकट होता है कि आपने भारतीय ज्योतिष का अच्छा अध्ययन किया था और इसके साथ यूनान मिस्र बैबिलन आदि के प्राचीन ज्योतिष का भी तुलनात्मक अध्ययन किया था। आपने वेदाङ्ग-ज्योतिष के कई श्लोको का अर्थ बडी विद्वत्ता पूर्वक लगाया था और अपना उपनाम बार्हस्पत्य रक्खा था।

दुर्गाप्रसाद द्विवेदी

दुर्गाप्रसाद द्विवेदी का जन्म सवत १९२ (शक १७८५) में अयोध्या से ८ कोस पश्चिम 'पण्डितपुरी' गाँव मे हुआ था। आप जयपुर के सस्कृत पाठशाला

अप्रमुद्रित हैं और हिंदी भाषा में लिखी गयी है। भाषा सरल और शुद्ध नहीं है; इसलिए पढ़ने वालों को कुछ कठिनाई पड़ती है।

प्रभाकर-सिद्धांत—इसमें ग्रहलाघव के मूलांकों में अर्वाचीन ज्योतिष के आधार पर बीजसंस्कार देकर ग्रहों की शुद्ध गणना करने की रीति बहुत सुगम कर दी गयी है। इसी के आधार पर शास्त्री जी पहले प्रभाकर पंचांग बनाते थे जिसमें ऐसा उपाय किया गया था कि वह सारे भारतवर्ष में काम दे सके। इसी के आधार पर बनाया हुआ भारतविजय पंचांग इन्दौर के ज्योतिष सम्मेलन के बाद जिसका आयोजन आप ने ही इन्दौर सरकार की सहायता से किया था संवत १९९५ में प्रकाशित हुआ था। इस पंचांग में भी इतनी सामग्री भर दी गयी है कि वह एक उपयोगी ग्रंथ-सा हो गया है।

इन्दौर के ज्योतिष सम्मेलन की रिपोर्ट भी एक बृहदाकार ग्रंथ है जिसमें दृग्गणना के पक्ष और विपक्ष दोनों ओर की बातें रखकर सिद्ध किया गया है कि दृग्गणना ही उचित है।

आप्टे

गोविन्द सदाशिव आप्टे का जन्म शक १७९२ (१८७० ई) में महाराष्ट्र प्रांत में हुआ था। आप गणित के प्रोफेसर रहे हैं और अवकाश ग्रहण करने पर उज्जैन की वेधशाला के प्रधान बहुत दिन तक रहे। आप का देहावसान १९४१ में हुआ। आप ने शक १८५१ (१९२९ ई) में सर्वानन्द-करण नामक ज्योतिष ग्रंथ की रचना प्रसिद्ध ग्रहलाघव के ढंग पर की है। इसके पूर्व खंड में कुल ११ अधिकार हैं जिनमें सूर्य चंद्रमा और ग्रहों की गणना करने की सरल रीतियाँ बतायी गयी हैं। चंद्रमा में केवल पाँच संस्कार करने को कहा गया है। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इससे ग्रहों के जो भोगांश आते हैं वे सायन होते हैं। सायन से निरयण बनाने के लिए अयनांश घटा देना पड़ता है जो अपने-अपने मत के अनुसार बनाया जा सकता है। इसलिए यह पुस्तक प्रत्येक पक्ष के लिए उपयोगी हो सकती है। इस संबंध में आप केतकर के चित्रापक्ष के प्रबल विरोधी हैं। आप ने एक अँग्रेजी पुस्तिका में कई प्रमाणों से सिद्ध किया है कि भारतीय राशिचक्र का आदि स्थान वह नहीं है जहाँ से चित्रा तारा ठीक १८० अंश पर है वरन् रेवती नक्षत्र का योटा पिसियम तारा है जिसके अनुसार अयनांश लगभग ४ अंश कम ठहरता है। आप के इस मत के समर्थक महाराष्ट्र में कई विद्वान हैं। इस पक्ष के अनुसार वहाँ कई पंचांग भी बनते हैं। चित्रा और रेवती पक्ष के पंचांगों में मलमास के संबंध में बहुत भिन्नता

रहती है जिसके कारण पर्वों और त्योहारों के निश्चय करने में यहाँ बहुत गड़बड़ी रहती है।

इस खंड में एक उपकरणाधिकार है जिसमें चन्द्रमा की सूक्ष्मगति निकालने की भी रीति बतायी गयी है। इससे चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण का समय सूक्ष्मतापूर्वक बताया जा सकता है।

सूर्यातिक्रमणाधिकार में यह बताया गया है कि बुध और शुक्र सूर्य के बिम्ब का भेद कब करते हैं। इस खंड के परिशिष्ट में आप ने दस-दस कलाओं की भुजज्या कोटिज्या और स्पर्शज्या की सारणी दी है जिसमें त्रिज्या १ मानी गयी है।

उत्तर खंड में आपने पहले दशमलव भिन्नों के गुणा-भाग की रीति बता कर नवीन रीति से ग्रहगणना करने की विधि लिखी है जिसमें त्रिकोणमिति और गोलीय त्रिकोणमिति के अनुसार गणना करने की रीति बतायी गयी है क्योंकि यह उन्हीं को प्रिय हो सकता है जो उच्च गणित का ज्ञान रखते हैं। इसलिए इस खंड का नाम प्रौढ़-रंजन रखा गया है।

इसमें सौरार्धतिथि-साधन सूक्ष्म नक्षत्रानयन तिथि-नाडिकानयन और उपपत्तिकथन नामक अध्याय बहुत महत्त्व के हैं।

यह ग्रंथ उज्जैन में लिखा गया था जिसकी वेधशाला का आप ने फिर से उद्धार किया है।

उपसंहार

भारतीय ज्योतिष और ज्योतिषियों के संबंध में यहाँ तक जो कुछ लिखा गया है उसकी बहुत-सी सामग्री महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी की गणक-तरंगिणी और आचार्य शंकर बालकृष्ण दीक्षित के मराठी भारतीय ज्योतिषशास्त्र से ली गयी है। इनमें आये हुए कुछ ज्योतिषियों और उनके ग्रंथों की चर्चा विस्तार-भय से छोड़ दी गयी थी जो नीचे की तालिका में दी जाती है

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विषय
बलभद्र	?	८८८ ?	कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। भट्टोत्पल और पृथूदक स्वामी की टीकाओं में कुछ श्लोकों के अवतरण हैं।

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
वरुण	खण्डखाद्यक की टीका	९६२ ?	इस टीका में ९६२ शक के उदाहरण हैं।
दशबल	करणकमल मार्तण्ड	९८	राजमृगांकोक्त बीजसंस्कृत ब्रह्मसिद्धांत के अनुसार करणग्रंथ।
राजा ?	करणोत्तम	१ १८	इसकी चर्चा महादेव कृत श्रीपति रत्नमाला में कई बार आयी है और जातक-सार में भी एक श्लोक है।
सोमेश्वर	अभिलषितार्थ चिंतामणि	१ ५१	अनेक विषयों का संग्रह जिसमें ज्योतिष का भी विषय है और १ ५१ शक के क्षेपक हैं।
मुंजालमल्ल	मानसोल्लास	?	
माधव	सिद्धांतचूडामणि	?	भास्कराचार्य के सिद्धांत शिरोमणि में उल्लेख है परंतु पुस्तक का अब पता नहीं है।
ब्रह्मा	बीजगणित	?	भास्कराचार्य के बीजगणित में उल्लेख है परंतु पुस्तक का पता नहीं है।
विष्णुदैवज्ञ	बीजगणित	?	(as above)
अनन्त दैवज्ञ	ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत के ध्यानग्रहोपदेशाध्याय और बृहज्जातक पर टीकाएँ	?	शक ११४४ के एक शिलालेख से ज्ञात।
भोजराज ?	आदित्यप्रताप सिद्धांत	?	श्रीपति की रत्नमाला की महादेवी टीका (शक ११८५) में इसके कुछ वाक्यों का उल्लेख है और आफ्रेच सूची में इसके कर्ता भोजराज कहे गये हैं।

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
चक्रेश्वर	ग्रहसिद्धि ?	?	
मार्कंड	सूर्य-सिद्धांत की टीका या इसके आधार पर कोई ग्रंथ जिसका पता नहीं है	११ के लगभग	ये पद्मनाभ के पिता थे।
सूर्यदेव यज्व	आर्यभटीय प्रकाशिका टीका	?	ईसवी की १२वीं शताब्दी (दत्त और सिंह)।
रामचन्द्र	कल्पद्रुम करण	?	करण-कुतूहल की १४८२ शक की टीका में यह नाम है।
अनन्त	महादेवकृत कामधेनु की टीका जातक पद्धति	१४८ ?	
रघुनाथ	सुबोधमंजरी (करण)	१४८४	बहुप्रचलित ग्रंथ
कृपाराम	वासनाचन्द्रिका	शक १४२ के बाद	बीजगणित मकरंद सर्वार्थचिंतामणि पर उदाहरण सहित टीका तथा सर्वार्थ चिंतामणि पंच-पक्षी और मुहूर्त-तत्त्व की टीका भी लिखी है।
रघुनाथ शर्मा	मणिप्रदीप (करण)	१४८७	सिद्धांतशिरोमणि और सूर्य सिद्धांत के आधार पर।
नारायण	मुहूर्तमार्तण्ड और इस पर टीका मार्तण्ड वल्लभा	१४९१ ९४	मुहूर्त ग्रंथ।
दिनकर	खेटकसिद्धि चन्द्रार्की	१५	ब्रह्मसिद्धांत के अनुसार करणग्रंथ।

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विषय
गंगाधर	ग्रहलाघव की मनोरमा टीका	१५ ८	
श्रीनाथ	ग्रहचिन्तामणि (करण)	१५१२	
गणेश	जातकालंकार	१५३५	जातक पर प्रसिद्ध पुस्तक।
नाम या नागेश	ग्रहप्रबोध	१५४१	दृग्गणितानुसार करणग्रंथ।
विट्ठल दीक्षित	मुहूर्तकल्पद्रुम और उसकी टीका मुहूर्तकल्पद्रुम मंजरी	१५४९ ?	मुहूर्तग्रंथ।
नारायण	केशवपद्धति टीका नारायणबीजम्		ये मुनीश्वर के गुरु थे जो शक १५२५ में पैदा हुए थे। दूसरी पुस्तक बीजगणित पर है।
शिवदैवज्ञ	अनन्तसुधारसविवृति (गणित) मुहूर्तचूड़ामणि (मुहूर्त)	जन्मकाल १५२८	कृष्ण दैवज्ञ के पुत्र और नृसिंह दैवज्ञ के अनुज।
बलभद्रमिश्र	होरारत्न (ताजिक ग्रंथ)	१५६४	रामदैवज्ञ के शिष्य शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र शाहशुजा के आश्रित।
सोमदैवज्ञ	कल्पलता	१५६४	संवत्सर के राजा मंत्री आदि, के शुभाशुभ फल पर विचार।
रंगनाथ	सिद्धान्त-शिरोमणि की मितभाषिणी टीका सिद्धान्त-चूडामणि	१५६२	ये नृसिंहदैवज्ञ के पुत्र और कमलाकर के भाई थे। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार करणग्रंथ की रचना की थी।

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
कृष्ण	करणकौस्तुभ	१५७५	महाराज शिवाजी के समय में ग्रहकौतुक ग्रहलाघव तथा निज बीज के अनुसार करण ग्रंथ बनाया।
माधव	ग्रहप्रबोध पर उदाहरण सहित टीका	१५८५	
रत्नकंठ	पंचांगकौतुक	१५८	करणकौस्तुभ के अनुसार पंचांग बनाने के लिए उपयोगी।
विद्दण	वार्षिक तंत्र	१६ से पूर्व	वर्तमान सूर्य-सिद्धांत के अनुसार।
जटाधर	फतेशाह प्रकाश	१६२६	श्रीनगर के गढ़वाली राजा के नाम पर।
दादाभट	किरणावलि	१६४१	सूर्यसिद्धांत की टीका।
शंकर	वैष्णव करण	१६८८	भास्कराचार्य के अनुसार।
परमानन्द पाठक	प्रश्नमाणिक्यमाला	१६७	जन्मकुण्डली के भावों का शुभाशुभ फल विचार है। यह काशिराज बलवंतसिंह के प्रधान गणक थे।
मुला	ब्रह्मसिद्धांतसार	१७ ३	ब्रह्मपक्षानुसार सिद्धांततत्त्व, सिद्धांत-शिरोमणि और ग्रहलाघव के आधार पर लिखा गया।
मथुरानाथ शुक्ल	१—यंत्रराज घटना २—मठाद्य स्थापन विधि	१७ ४	राजा शिवप्रसाद सितारे-हिंद, के बाबा डालचंद के आश्रित थे।

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
गंगाधर	ग्रहलाघव की मनोरमा टीका	१५ ८	
श्रीनाथ	ग्रहचिंतामणि (करण)	१५१२	
गणेश	जातकालंकार	१५३५	जातक पर प्रसिद्ध पुस्तक।
नाग या नागेश	ग्रहप्रबोध	१५४१	सूर्यसिद्धांतानुसार करणग्रंथ।
विट्ठल दीक्षित	मुहूर्तकल्पद्रुम और उसकी टीका मुहूर्त कल्पद्रुम मंजरी	१५४९ ?	मुहूर्तग्रंथ।
नारायण	केशवपद्धति टीका नारायणीबीजम्		ये मुनीश्वर के गुरु थे जो शक १५५५ में पैदा हुए थे। दूसरी पुस्तक बीजगणित पर है।
शिवदैवज्ञ	अनन्तसुधारसविवृति (गणित) मुहूर्त चूड़ामणि (मुहूर्त)	जन्मकाल १५२८	कृष्ण दैवज्ञ के पुत्र और नृसिंह दैवज्ञ के अनुज।
बलभद्र मिश्र	हायनरत्न (ताजिक ग्रंथ)	१५६४	रामदैवज्ञ के शिष्य शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र शाहसुजा के आश्रित।
सोमदैवज्ञ	कल्पलता	१५६४	संवत्सर के राजा मंत्री आदि के शुभाशुभ फल पर विचार।
रंगनाथ	सिद्धांत-शिरोमणि की मितभाषिणी टीका सिद्धांत चूड़ामणि	१५६२	ये नृसिंहदैवज्ञ के पुत्र और कमलाकर के भाई थे। सूर्य सिद्धांत के अनुसार करणग्रंथ की रचना की थी।

ग्रंथकर्ता	ग्रंथ	रचनाकाल शक	विशेष
चिंतामणि दीक्षित	१—सूर्यसिद्धांत की सारणी २—गोलानन्द (वेधग्रंथ)	 १७११	
राघव (खाडेकर)	१—खेटकृति २—पंचांगार्क ३—पद्धति चंद्रिका	१७१२ १७१९ १७४	पहली पुस्तक ग्रहलाघव के अनुसार है, दूसरी सिद्धांत ग्रंथ है और तीसरी जातक पर है।
शिवदैवज्ञ	तिथिपारिजात	१७३७	ग्रहलाघव के अनुसार।
यज्ञेश्वर (बाबा जोशी रोडे)	१—ज्योतिष पुराण-विरोध-मर्दन २—यंत्रराज-वासना टीका ३—गोलानंद की अनुभाविकी टीका ४—मणिकांति टीका ५—प्रश्नोत्तरमालिका	१७५९ १७६४	
विनायक पांडुरंग	वैनायिकी तालिकापत्र		
कानापूरकर	सिद्धांतसार		

भारतीय ज्योतिष का प्रसार (अरब देशों में)

ब्रह्मगुप्त के वर्णन में यह चर्चा की गयी थी कि इनके दोनों ग्रंथों का अनुवाद अरबी में कराया गया था। यहाँ इस संबंध में कुछ विशेष बातें बतायी जाती हैं। रोम के प्रोफेसर सी॰ ए॰ नलिनो 'इन्साइक्लोपीडिया ऑव रिलिजन ऐंड एथिक्स' अध्याय १२, ९५ में लिखते हैं: 'ज्योतिष के प्रथम वैज्ञानिक मूलांकों के लिए मुसलमान

जी॰ आर॰ के॰ की हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी, पृष्ठ ४९ की पाद टिप्पणी।

भारतवर्ष के ऋणी हैं। ७७१ ई० में भारतवर्ष की एक शिष्टमण्डली बगदाद गयी इसके एक विद्वान ने अरबो को ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत का परिचय कराया जिसे ब्रह्मगुप्त ने संस्कृत में ६२८ ई० में लिखा था। इस ग्रंथ से (जिसे अरब वाले अल सिंदहिंद कहते थे) इब्राहीम इब्न हबीब-अल-फजारी ने मूलांको और गणना की रीतियो को लेकर अपने ज्योतिष की सारणियाँ मुसलमानी चान्द्र वर्ष के अनुसार तैयार की। प्रायः इसी काल में याकूब इब्न तारीक ने अपनी 'तरकीब-अल-अफलाक' (खगोल की रचना) लिखी जो ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत के मूलांकों और रीतियो पर तथा उन प्रमाणो पर जिन्हे एक दूसरे भारतीय वैज्ञानिक ने एक दूसरी मण्डली के साथ १६१ हिजरी (७७७-७७८ ई०) में बगदाद आकर दिया था आश्रित था। ऐसा जान पड़ता है कि प्रायः उसी समय खण्डखाद्यक का भी अरबी में 'अल्अर्कंद' के नाम से अनुवाद किया गया जिसे ६६५ ई० में ब्रह्मगुप्त ने ही रचा था परंतु जिसके मूलांक उसके पहले ग्रंथ के मूलांको से भिन्न थे। अलफजारी और याकूब इब्न तारीक के समकालीन अबुल हसन अल अहवाजी ने विद्वान भारतवासियो के शायद मौखिक शिक्षाओं से प्रभावित होकर 'अल अर्जभर' (अर्थात आर्यभट) के अनुसार ग्रहगतियो का परिचय अरबो को कराया। मुसलिम संसार में हिजरी की पंचम शताब्दी के पूर्वार्द्ध (ईस्वी की ११वी शताब्दी) के अन्त तक इन भारतीय ग्रंथो के बहुत से अनुगामी हुए। कुछ ज्योतिषियों ने (जैसे हबश अलनरीजी इब्न अस्सम ने) भारतीय मूलांको और प्रणालियो के आधार पर भी पुस्तक लिखी और यूनानी-अरबी मूलांको के अनुसार भी। दूसरो ने (जैसे मुहम्मद इब्न इसहाक अस सरख्सी अबुल्वफा अल्बीरूनी अलहजीनी ने) उन मूलांको को ग्रहण किया जिनकी गणना मुसलमान ज्योतिषियो ने भारतीय ज्योतिषियो के अनुकरण में कृत्रिम दीर्घ युगो के अनुसार की थी।

इस संबंध में अल्बीरूनी ने भारत पर अपने अरबी ग्रंथ में जिसका अँग्रेजी भाषान्तर बर्लिन के प्रोफेसर एडवर्ड सी० साखो ने किया है और जिसका हिंदी अनुवाद इंडियन प्रेस ने प्रकाशित किया है बहुत कुछ लिखा है। यह विद्वान ९७३ ई० में खीवा में उत्पन्न हुआ था और महमूद गजनवी के साथ भारतवर्ष मे आकर यहाँ सन् १०१७ से सन् १०३१ ई० तक रहा था और संस्कृत भाषा सीख कर इसने साहित्य की बहुत-सी विशेषकर ज्योतिष की बाते जान कर अरबी में पूर्वोक्त ग्रंथ का निर्माण किया था। वह लिखता है कि पूर्वकालीन मुसलिम ज्योतिषियो ने आर्यभट और अन्य सिद्धांत ग्रंथो की चर्चा की है। आर्यभट का एक अरबी रूपान्तर आर्जबह था जो और बिगड़ कर 'आरजभर' हो गया। अल्बीरूनी लिखता है कि 'सिंद हिंद' नाम की अरबी पुस्तक को हिंदू लोग सिद्धांत कहते हैं।

यूरोप और अमेरिका में

ईसा की १७वीं शताब्दी के अन्त में यूरोप में भारतीय ज्योतिष की चर्चा आरंभ हुई, जिसमें लाप्लास, बेली, प्लेफेयर, डीलाम्बर, सर विलियम जोन्स, जान बेंटली, आदि ने भाग लिया। १६९१ ई. में फ्रांस के प्रसिद्ध ज्योतिषी जियोवनी डोमिनिको कैसिनी ने डी. ला. लूबियर के आधार में लाए हुए कुछ ज्योतिष संबंधी नियमों का प्रकाशन किया और उसके थोड़ी ही देर बाद 'हिस्टोरिया रेगी पीर्सारम वैस्नीयागी' के परिशिष्ट में टी. एस. बेयर ने हिंदू ज्योतिष की चर्चा की जिसमें जियोमार्क ऑमल्डर का एक निबंध ३६५ दिन ६ घंटा १२ मिनट और ९ सेकेंड के हिंदू वर्ष पर था। १७६९ ई. में लीजेंटिल नामक ज्योतिषी पांडीचेरी में शुक्र की बेधयुति देखने के लिए आया और १७७२ ई. में उसने 'मिमेलोर' तारणी और हिंदू ज्योतिष पर एक लेख प्रकाशित किया। इस प्रकाशन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि जीन सिलवेन बेली (पेरिस का पहला मेयर और नेशनल एसेंबली का सभापति जिसने १७३६ ई. में जन्म लिया और जो १७९३ ई. में सूली पर चढ़ाया गया) इस ओर आकर्षित हो गया और १७८७ ई. में भारतीय ज्योतिष पर एक ग्रंथ[1] प्रकाशित किया। बेली की पुस्तक से लाप्लास और प्लेफेयर का ध्यान इस ओर बहुत आकर्षित हुआ। प्लेफेयर ने १७९२ ई. में एशियाटिक सोसाइटी में व्याख्यान देकर सुझाया कि हिंदू गणित और ज्योतिष का नियमपूर्वक अनुशीलन किया जाय।

इसी बीच में एस. डेविस ने १७८९ ई. में सूर्य-सिद्धांत का विश्लेषण किया और लिखा कि इस ग्रंथ में रविमार्ग की परम क्रांति २४ अंश है, जो आकाश के प्रत्यक्ष अवलोकन से जानी गयी होगी और यह अवलोकन २०५० ई. पूर्व किया गया होगा। सर विलियम जोन्स ने इसका समर्थन किया और कहा कि भारतीय नक्षत्र-चक्र अरब या यूनान से नहीं लिया गया। १७९९ ई. में जॉन बेंटली ने बेली की इस बात का विरोध किया कि भारतीय ज्योतिष बहुत प्राचीन है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि सूर्य-सिद्धांत १०९१ ई. के आसपास का बनाया हुआ है। इस संबंध में कोलब्रुक, डीलाम्बर और बेंटली में १८२५ ई. तक अच्छा वादविवाद किया। परन्तु इसके साथ-साथ भारतीय ज्योतिष का अनुशीलन भी होता रहा। बंगाल के सेनानायक सर राबर्ट बार्कर ने काशी के जयसिंह-निर्मित मान-मन्दिर के यन्त्रों का अध्ययन किया और इसके कुछ बाद ही प्लेफेयर ने अपना सुझाव उपस्थित किया।

[1] ट्रेट डी ला ऐस्ट्रॉनोमी इंडियन एट ओरियंटल।

१७९९ ई० में हंटरने उज्जैन की वेधशाला का ब्योरेवार वर्णन किया। परंतु भारतीय ज्योतिष के इतिहास का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेबर (१८१०-९८ ई०) ह्विटनी (१८५८) और थीबो (१८७७-१८८९) ने नींव डाली। वेबर ने वेदांग ज्योतिष ह्विटनी ने सूर्य-सिद्धांत का अनुवाद अपनी आलोचनात्मक टिप्पणियों के साथ और थीबो ने वराहमिहिर की पंच-सिद्धांतिका अपने अनुवाद और टिप्पणियों के साथ प्रकाशित किया। इनके साथ साथी ने अलबीरूनी के भारत विषयक ग्रंथ का अनुवाद किया और यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि मध्यकालीन हिंदू ज्योतिष और यूनानी ज्योतिष में घनिष्ठ संबंध हैं। इसलिए प्राच्यविद्या विशारदों का ध्यान वैदिक और वेदोत्तर कालों की ओर गया। १८९३ ई० में जैकोबी और तिलक ने अलग-अलग सुझाव उपस्थित किये कि वैदिक ग्रंथों में ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वैदिक काल बहुत प्राचीन है परंतु ह्विटनी ओल्डनबर्ग और थीबो ने इसका घोर विरोध किया।

बरजेस का कार्य

इस वादविवाद के बीच में रेवरेंड ई० बरजेस ने सन् १८६० ई० में सूर्य-सिद्धांत का प्रसिद्ध अनुवाद अमेरिकन ओरिएंटल सोसायटी के जरनल में प्रकाशित किया जिसमें भारतीय ज्योतिष के पक्ष और विपक्ष में बहुत बातों का वैज्ञानिक रीति से विचार किया गया और दिखाया गया कि भारतीय ज्योतिष का महत्त्व क्या है। इस सुन्दर अनुवाद का दूसरा संस्करण कलकत्ता विश्वविद्यालय के फणीन्द्रलाल गांगोली द्वारा सम्पादित होकर प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त की भूमिका के साथ कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९३५ ई० में प्रकाशित हुआ।

भारतीय ज्योतिष का एक दूसरा ग्रंथ जान बेंटले ने सन् १८२३ ई० में लिखा था जिसके प्रथम भाग के १३ अध्यायों में हिंदू ज्योतिष पर यूनान मिस्र चीन और अरब के ज्योतिष के साथ तुलनात्मक विचार किया गया है और कई पौराणिक कथाओं का जैसे शिव और दुर्गा का विवाह सती की मृत्यु आदि का संबंध ज्योतिषिक घटनाओं से बताया गया है और दूसरे भाग में सूर्य-सिद्धांत का अँग्रेजी में अनुवाद किया गया है। इस विद्वान का विश्वास था कि यूरोपवालों ने हिंदुओं को इनके साहित्य और गणितीय विज्ञान के लिए उतना श्रेय नहीं दिया जितने के वे अधिकारी हैं। यह ग्रंथ लंदन में १८९९ ई० में मुद्रित और प्रकाशित हुआ था। बेंटले महाशय बंगाल में बहुत दिन तक किसी कालेज के अध्यक्ष रह चुके थे।

बी० आर० के० की हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी की भूमिका का सारांश।

इन ग्रंथो के होते हुए भी जी थीबो के महाशय अपने विविध लेखो और हिंदू एस्ट्रोनोमी में हिंदू ज्योतिष के संबंध म कुछ बातें ऐसी लिखते है जिससे सिद्ध होता है कि वे भी भारतीय ज्योतिष को उतना श्रेय नही देना चाहते थे जितने का वह अधिकारी है। इसका उत्तर प्रयाग के श्री मश्रिनविहारी मिश्र ने १९१५ १६ के माडर्न रिव्यू में और कलकत्ता विश्वविद्यालय के कई आचार्यों ने विशेषकर डाक्टर विभूतिभूषण दत्त और प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त ने भारतीय और यूनानी ज्योतिष का तुलनात्मक अध्ययन करके दिया है।

आधुनिक खोज

वर्तमान समय म ज्योतिष में बहुत लगन के साथ खोज जारी है। सारी दुनिया के ज्योतिषी इसी में लगे है कि कोई नवीन बात निकालें। यह बात केवल एक देश के लिए ही नही सारे संसार के लिए नवीन होनी चाहिए। ज्योतिषियो की खोज के परिणाम ज्योतिष और वैज्ञानिक पत्रिकाओ में छपते रहते है और प्रति वर्ष कई हजार पृष्ठ नवीन खोजो के विवरण में छपते है। हमारे भारतीय ज्योतिषी भी इसमें सहयोग देते है यद्यपि बडी वेधशालाओ के अभाव से और प्रोत्साहन न मिलने से पिछले वर्षों में अन्य देशो से भारत पिछडा हुआ था। तो भी डॉक्टर मेघनाथ साहा प्रोफेसर एस चन्द्रशेखर, इत्यादि ने ऐसा काम किया है कि विदेश में भी भारत का नाम है। यो तो वे सभी जो ज्योतिष विषय लेकर विश्वविद्यालयो से डॉक्टर की उपाधि लेते है थोडी-बहुत खोज अवश्य करते है और ज्योतिष में नवीन बातो का पता लगाते है। उदाहरणत इन पंक्तियो के लेखक ने भी इस पर खोज की कि तारो की निजी गति और उनकी चमक में क्या संबंध रहता है। उत्तर प्रदेश के डॉक्टर चन्द्रिकाप्रसाद डॉक्टर हरिकेशव सेन और डॉक्टर रामसिंह कुशवाहा न तथा अन्य कुछ व्यक्तियों न भी ज्योतिष में खोज की है और कर रहे है।

हमारे प्राचीन ज्योतिषी इसी में जुटे रहते थे कि सूर्य चन्द्रमा और ग्रहो की स्थितियो की गणना कैसे की जाय। परन्तु यह विषय अब प्राय पूर्ण समझा जाता है। इस विषय पर सारे संसार में इने-गिने ही व्यक्ति काम करते होगे। इन दिनो अधिकतर खोज तारो के संबंध में हो रही है और गत पचास वर्षों में आश्चर्य जनक ज्ञानवृद्धि हुई है। उदाहरणत अब यह प्रमाणित हो गया है कि हमारे तारो की दुनिया का विस्तार सीमित है और हमारी ही जैसी तारो की बस्तियां असंख्य है। वे एक दूसरे से दूर-दूर पर बसी है। अब यह चेष्टा की जा रही है कि पता चले

कि तारों की भीतरी संरचना कैसी है । इसमें भी बहुत-कुछ सफलता मिली है । इस खोज में इन दिनों ज्योतिष का भौतिक विज्ञान और रसायन से बहुत घना संबंध हो गया है । एक प्रकार से ऐटम बम के बनने का सूत्रपात यहीं से होता है जब से ज्योतिषियों ने इस प्रश्न को उठाया कि सूर्य ठंडा क्यों नहीं हो जाता और यदि वह आग का गोला है तो अब तक जलकर भस्म क्यों नहीं हो गया ।

ज्योतिष के अब कई विभाग हो गये हैं । वर्णनात्मक ज्योतिष में आकाशीय पिंडों के रूप रंग का अध्ययन किया जाता है उनकी गति अथवा रासायनिक तथा भौतिक संरचना से विशेष सरोकार नहीं रहता । गणित ज्योतिष में इस विषय का अध्ययन किया जाता है कि आकाशीय पिंडों के परस्पर आकर्षण से उनमें क्या गति उत्पन्न होगी । सूर्य चंद्रमा और ग्रहों की स्थितियाँ बता सकने का काम इसी विभाग के आधार पर संभव है । भौतिक ज्योतिष में आकाशीय पिंडों की रासायनिक तथा भौतिक संरचना पर विशेष ध्यान दिया जाता है । भौतिक विज्ञान की उस शाखा को ज्योतिष-भौतिकी कहते हैं जिसमें तारों आदि की संरचना का अध्ययन किया जाता है । इसमें और भौतिक ज्योतिष में कोई भेद नहीं है । गोलीय ज्योतिष में आकाशीय पिंडों की स्थितियों पर विशेष ध्यान दिया जाता है—उनकी स्थितियाँ कैसे नापी जायँ इन नापों में क्या-क्या त्रुटियाँ रह जाती हैं और वे कैसे दूर की जाती हैं ग्रहणादि क्यों और कब लगते हैं और समय कैसे नापा जा सकता है इन सब विषयों पर ज्योतिष की इसी शाखा में विचार किया जाता है ।

देखें गोरखप्रसाद कृत 'नीहारिकाएँ' (बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद पटना) ।

अध्याय १८

भारतीय पंचांग

पञ्चांग

पूर्वगामी अध्यायों को पूर्णतया समझने के लिए यह आवश्यक है कि पाठक को भारतीय पञ्चांग का कुछ ज्ञान हो। इसलिए इस अध्याय में इस विषय को सरल रीति से समझा दिया गया है।

पञ्चांग बताता है कि वर्ष का आरम्भ कब हुआ, किसी दिन क्या तिथि (तारीख) है इत्यादि। पञ्चांग के संबंध में प्राचीन समय के लोगों को कठिनाई इसलिए पड़ती थी कि लोग वर्षमान—वर्ष की लम्बाई—ठीक-ठीक नहीं नाप पाते थे। फिर, तब और अब भी एक कठिनाई इसलिए उत्पन्न होती है कि एक वर्ष में दिनों की संख्या या चान्द्र मासों की संख्या कोई पूर्ण संख्या नहीं है और न एक चान्द्र मास में ही दिनों की संख्या कोई पूर्ण-संख्या है।

यदि उद्देश्य यह हो कि वर्षारम्भ सदा एक ही ऋतु में हो तो वर्षमान ठीक ठीक सायन होना चाहिए, अन्यथा गड़बड़ी पड़ेगी। उदाहरणतः मुसलिम धार्मिक वर्ष ठीक १२ चान्द्र मासों के बराबर होता है अर्थात् उसका मान मोटे हिसाब से २९ ½ × १२, अर्थात् ३५४ दिन होता है। परन्तु सायन वर्ष ३६५·२४२२ दिन का होता है। इसलिए किसी एक वर्ष में यदि मुसलिम वर्ष का आरम्भ उस दिन से हुआ जब वसंत में दिन रात बराबर होते हैं अर्थात् वसंत विषुव पर, तो आगामी वसंत विषुव से लगभग ३६५¼—३५४ अर्थात् ११¼ दिन पहले ही मुसलिम वर्ष का अन्त हो जायगा और नया वर्ष आरम्भ हो जायगा। अगली बार नया वर्ष वसंत विषुव काल से २२½ दिन पहले ही आरम्भ हो जायगा और इसी प्रकार आगे भी। यही कारण है कि मोहर्रम या रमज़ान का महीना किसी भी ऋतु में पड़ सकता है। यदि किसी वर्ष रमज़ान जाड़े में है तो कुछ ही वर्ष बाद वह बरसात में

पड़ेगा। अधिक समय बीतने पर वह गर्मी के ऋतु में पड़ेगा और लगभग २९५½—११½ वर्षों के बाद वह फिर जाड़े में पड़ेगा।

भारतीय पंचांग

संस्कृत में पंचांग का नाम इसलिए पड़ा है कि इसमें पाँच वस्तुएँ बतायी जाती हैं (१) तिथि (जो दिनांक अर्थात तारीख का काम करती है) (२) वार, अर्थात कोई दिन रविवार, सोमवार, . . . में से कौन-सा दिन है (३) नक्षत्र (जो बताता है कि चंद्रमा तारों के किस समूह में है) (४) योग (जो बताता है कि सूर्य और चंद्रमा के भोगांशों का योग क्या है) और (५) करण (जो तिथि का आधा होता है)।

पूर्वोक्त पाँच बातों के अतिरिक्त हिंदी पंचांगों में साधारणतः यह भी दिया रहता है कि अँग्रेजी दिनांक (तारीख) क्या है, मुसलिम तारीख क्या है, दिनमान क्या है (अर्थात सूर्योदय से सूर्यास्त तक कितना समय लगेगा), चंद्रमा का उदय और अस्त भिन्न-भिन्न समयों पर होगा, चुने हुए दिनों पर आकाश में ग्रहों की क्या स्थितियाँ रहेंगी और इनके अतिरिक्त फलित ज्योतिष की बहुत-सी बातें भी रहती हैं। नीचे हम तिथि आदि को अधिक ब्योरे के साथ समझायेंगे।

तिथि और वार

चंद्रमा और सूर्य के भोगांशों के अंतर से तिथि का निर्णय होता है। जब यह अंतर ० और १२° के बीच रहता है तो तिथि को प्रतिपदा कहते हैं। अंतर के १२° और २४° के बीच रहने पर तिथि को द्वितीया कहते हैं। इसी प्रकार तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी और चतुर्दशी होती है। आगामी तिथि अमावस्या या पूर्णिमा होती है। इस प्रकार एक चांद्र मास में ३० तिथियाँ होती हैं। परिभाषा से स्पष्ट है कि तिथि दिन या रात के किसी भी समय बदल सकती है। इसलिए पंचांग में लिखा रहता है कि अमुक तिथि का अंत अमुक समय होगा। पंचांगों में समय की इकाई साधारणतः १ घटी होती है (जो २४ घंटे के एक दिन के १/६० के बराबर होती है)। घटी के ६०वें भाग को पल और पल के ६०वें भाग को विपल कहते हैं। पंचांगों में समय साधारणतः सूर्योदय से नापा जाता है। उदाहरणतः यदि किसी विशेष तिथि (जैसे पंचमी) के सम्मुख समय ४ घटी ५१ पल लिखा है तो उस का अर्थ है कि पंचमी का अंत उस दिन सूर्योदय के ४ घटी ५१ पल बाद हुआ।

लौकिक कार्यों के लिए सूर्योदय के समय की तिथि उस क्षण से लेकर आगामी सूर्योदय तक बदली नहीं जाती है। इस प्रकार, ऊपर बताये गये उदाहरण में उस

दिन जिसमें पंचमी का अंत सूर्योदय के लगभग २ घंटे बाद हुआ महाराष्ट्र सारे दिन और सारी रात को पंचमी मानेगा यद्यपि उस दिन सूर्योदय के लगभग २ घंटे बाद से ज्योतिष की परिभाषा के अनुसार षष्ठी का आरंभ हो गया था।

ऊपर की परिभाषा से स्पष्ट है कि तिथियों की अवधि (घंटों या घटियों में नाप) बराबर नहीं होगी क्योंकि चंद्रमा और सूर्य के भोगांश समान अर्थ (दर) से नहीं बढ़ते। वे तो केपलर के नियमों के अनुसार बढ़ते हैं और ऊपर से कई विक्षोभ भी होते हैं। *इसलिए तिथि की अवधि एक सूर्योदय से आगामी* सूर्योदय तक के समय से छोटा भी हो सकता है बड़ा भी। इसलिए ऐसा हो सकता है कि कोई तिथि इतनी छोटी हो कि किसी दिन सूर्योदय के थोड़े ही समय बाद उसके आरंभ होने पर आगामी सूर्योदय के पहले ही उसका अंत हो जाय। इस से स्पष्ट है कि वैध (लौकिक) तिथियाँ क्रमागत नहीं होतीं। उदाहरणतः पंचांग के अनुसार बुध ११ दिसंबर १९५ को चतुर्थी का अंत सूर्योदय के १ घटी के ५ पल बाद हुआ और आगामी तिथि का (अर्थात् पंचमी का) अंत आगामी सूर्योदय होने के ५ घटी २५ पल पहले ही हो गया। इस प्रकार बुध के दिन सूर्योदय के समय ज्योतिष तिथि चतुर्थी थी और अगले दिन बृहस्पति को सूर्योदय के समय तिथि षष्ठी थी। इसलिए बुध को सारे दिन वैध तिथि चतुर्थी थी और बृहस्पति को सारे दिन षष्ठी थी। इस प्रकार इस पक्ष (अर्धमास) में पंचमी किसी दिन थी ही नहीं।

फिर, ऐसा भी हो सकता है कि कोई तिथि २४ घंटे से अधिक की हो और वह किसी दिन सूर्योदय के थोड़े समय पहले आरंभ हो और आगामी दिन के सूर्योदय के कुछ समय बाद उसका अंत हो। इसका परिणाम यह होगा कि दो क्रमागत दिनों में एक ही तिथि रहेगी। उदाहरणतः सोमवार, १९ दिसंबर १९५ और मंगल २० दिसंबर १९५ दोनों ही दिन एकादशी थी। परन्तु चांद्र मास की अवधि लगभग २९½ दिन है और उनमें ३० तिथियाँ हैं। इसलिए अधिकतर तिथियों का क्षय ही होता है पुनरावृत्ति कम होती है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि वैध तिथि सूर्योदय के समय पर भी निर्भर है और इसलिए ऐसा हो सकता है और होता भी है कि विभिन्न स्थानों में एक ही दिन विभिन्न तिथियाँ हों। परन्तु एक क्षेत्र के लोग साधारणतः किसी करीब स्थान का पंचांग मानते हैं और ठीक अपने स्थान का पंचांग आवश्यक नहीं समझते। इसलिए व्यवहार में वस्तुतः कठिनाई नहीं उत्पन्न होती।

महीनों में तिथि बताने की दो पद्धतियाँ हैं या तो अमावस्या के बाद से आरंभ करके उनकी गणना १ से ३० तक की जाती है या पक्ष बता कर और

अमावस्या या पूर्णिमा के बाद से आरंभ करके १ से १५ तक। पक्ष आधे चांद्र मास को कहते हैं। एक पक्ष कृष्ण पक्ष कहलाता है जिसमें संध्या के समय चंद्रमा का उदय नहीं हुआ रहता, दूसरा शुक्ल पक्ष कहलाता है।

वार सात होते हैं: रविवार, सोमवार, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनिवार। मंगल, बुध, बृहस्पति और शुक्र को क्रमानुसार मंगलवार, बुधवार इत्यादि भी कहते हैं। रविवार को आदित्यवार (या हिंदी में इतवार) भी कहते हैं।

नक्षत्र

रविमार्ग को २७ बराबर भागों में बाँट कर प्रत्येक को एक नक्षत्र कहते हैं। चंद्रमा को तारों के सापेक्ष एक चक्कर लगभग २७⅓ दिन में लगता है। इसलिए चंद्रमा (वस्तुतः चंद्रमा से रविमार्ग पर डाले लंब का पाद) एक नक्षत्र में लगभग १ दिन तक रहता है। नक्षत्रों के नाम अश्विनी, भरणी, कृत्तिका आदि हैं। अश्विनी का प्रथम बिंदु मेष के प्रथम बिंदु को ही माना जाता है (नीचे भी देखो)।

जब कहा जाता है कि इस समय अश्विनी नक्षत्र है तो साधारणतः अर्थ यही रहता है कि चंद्रमा अश्विनी नामक नक्षत्र में है। परंतु कभी-कभी यह अर्थ भी होता है कि सूर्य अश्विनी में है। उदाहरणार्थ जब कहा जाता है कि कृष्ण भगवान का जन्म रोहिणी नक्षत्र में हुआ था तो अभिप्राय यह है कि उस समय चंद्रमा रोहिणी नक्षत्र में था, परंतु जब कहा जाता है कि वर्षा का आरंभ आर्द्रा नक्षत्र में होता है तो अभिप्राय यह होता है कि वर्षा का आरंभ तब होता है जब सूर्य आर्द्रा नक्षत्र में रहता है। नक्षत्र का अंत कब होगा (अर्थात् चंद्रमा उस नक्षत्र को छोड़ कर आगामी नक्षत्र में कब जायगा) यह पंचांगों में दिया रहता है।

नक्षत्र का एक अर्थ तारा भी है। कुछ तारों के समूह को भी नक्षत्र कहते हैं, विशेषकर तारों के उन छोटे-छोटे समूहों को जो चंद्रमा के मार्ग में पड़ते हैं। ये समूह तारामंडलों से छोटे हैं और इनके वे ही नाम हैं जो ऊपर रविमार्ग के भागों के लिए बताए गए हैं, अर्थात् अश्विनी, भरणी आदि। ऐसा जान पड़ता है कि अत्यंत प्राचीन समय में अश्विनी, भरणी आदि से तारों के समूह ही समझे जाते थे और इन्हीं से केवल यह पता लगाया जाता था कि चंद्रमा किस नक्षत्र में, अर्थात् किस तारका-पुंज में है; पीछे गणना की सुविधा के लिए नक्षत्र को रविमार्ग का ठीक सत्ताईसवाँ भाग मान लिया गया।

योग और करण

सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों के योगफल से योग ज्ञात किया जाता है। योगफल को संख्याओं में न बताना पड़े इस अभिप्राय से यह मान लिया गया है कि २७ योग होते हैं और उनके नाम रख दिये गये हैं जैसे विष्कंभ, प्रीति इत्यादि। योग ज्ञात करने के लिए सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों के योगफल को कलाओं में व्यक्त करना चाहिए और तब उसे ८०० से भाग देना चाहिए। भजनफल के पूर्ण संख्या में एक जोड़ देने से योग की क्रमसंख्या प्राप्त होगी। उदाहरणतः यदि भजनफल १.१७२ मिले तो योग की क्रमसंख्या २ होगी और इसलिए उस क्षण प्रीति नामक योग होगा। पंचांगों में योगों के अंतिम क्षण दिये रहते हैं। योग देने का उद्देश्य यही जान पड़ता है कि तिथि और नक्षत्र की गड़बड़ी की जाँच हो सके।

करण—आधी तिथि का एक करण होता है। उदाहरणतः प्रतिपदा के पहले आधे को बालव नामक करण माना जाता है, दूसरे आधे को कौलव, इत्यादि। परंतु ३० × २ नाम होने के बदले नाम थोड़े ही हैं और करणों का क्रम जानने के लिए एक नियम है जिसे यहाँ देना आवश्यक नहीं जान पड़ता।

लग्न

किसी क्षण क्या लग्न है यह इससे पता चलता है कि उस क्षण रविमार्ग का कौन सा बिंदु पूर्वीय क्षितिज को पार कर रहा है। लग्न के उल्लेख से वही उद्देश्य सिद्ध होता है जो आधुनिक प्रणाली में घंटा बताने से।

मास

पूर्वोक्त पाँच बातें प्रतिदिन (और कुछ तो दिन में कई बार) बदलती हैं। इसलिए किसी घटना का समय बताने के लिए इनके अतिरिक्त अवश्य ही मास और वर्ष भी बताना पड़ता है। हिंदू पंचांगों में चांद्र मासों का उपयोग होता है और नियमानुसार समय-समय पर एक वर्ष में १२ के बदले १३ मास रख कर ऐसा प्रबंध किया जाता है कि महीनों और ऋतुओं का संबंध टूटने नहीं पाता। तेरहवें मास अर्थात् अधिमास के जोड़ने के लिए वैज्ञानिक नियम बने हैं। यूरोप के लोगों के महीनों का अमावस्या-पूर्णिमा से कोई संबंध नहीं रह गया है और उन्होंने महीनों में इच्छानुसार दिन रखकर १२ महीनों को एक वर्ष के बराबर बना लिया है। मुसलिम वर्ष जैसा हम देख चुके हैं १२ चांद्र मासों का होता है जिससे मास और ऋतु में कोई अचल संबंध नहीं रहता। यह उनका धार्मिक वर्ष है। लगान वसूल करने के लिए मुसलमान

चांद्रमासों को एक अन्य वर्ष का प्रयोग करना पड़ता था जिसे फसली (—फसल वाला) वर्ष कहते थे और जिस की लंबाई लगभग सायन थी।

वर्ष में चांद्र मासों के नाम और यदि अधिमास लगे तो उसका भी नाम हिंदू पंचांग में सौर महीनों के नाम पर पड़ते हैं। एक विशेष बिंदु से आरम्भ करके रविमार्ग को १२ भागों में बाँटा गया है जिनमें से प्रत्येक को एक राशि कहते हैं। जब तक सूर्य प्रथम राशि में रहता है उतने समय तक प्रथम सौर मास रहता है दूसरी राशि में जब तक सूर्य रहता है उतने समय तक द्वितीय सौर मास रहता है इत्यादि।

इस प्रकार ज्यौतिष सौर मास जिसकी परिभाषा ऊपर दी गयी है दिन-रात के किसी क्षण पर आरम्भ हो सकता है। सुविधा के लिए नेम (मर्यादित लौकिक व्यवहार वाला) सौर मास ज्यौतिष सौर मास के प्रथम सूर्योदय से आरम्भ होता है।

राशि नामों के अर्थ वे ही हैं जो यूरोपीय नामों के। वे या हैं

मेष वृष मिथुन कर्क सिंह कन्या तुला वृश्चिक धनु मकर कुम्भ मीन।

उस क्षण को संक्रांति कहते हैं जब सूर्य एक राशि से आगामी राशि में जाता रहता है। मेष-संक्रांति उस क्षण को कहते हैं जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है। ज्यौतिष सौर मास एक संक्रांति से आगामी संक्रांति तक चलता है।

सौर महीनों के वे ही नाम हैं जो राशियों के हैं परन्तु विकल्प से उनके वे नाम भी हैं जो चांद्र मासों के हैं। उदाहरणतः मेष सौर मास को वैशाख सौर मास भी कहते हैं।

सौर मासों में दिनांक १ से २९, ३० ३१ या ३२ तक हो सकता है क्योंकि सूर्य के स्पष्टाधिक कोणीय वेग के कारण सौर मासों की लंबाइयाँ विभिन्न होती हैं। बंगाल उड़ीसा और मद्रास के कई जिलों में सौर मास ही अधिक चलते हैं परन्तु इन स्थानों में भी धार्मिक कृत्य त्यौहार और फलित ज्योतिष की गणनाएँ चांद्र तिथियों पर आश्रित हैं।

ज्यौतिष के काम के लिए उत्तर भारत में चांद्र मास पूर्णिमा के क्षण के ठीक बाद से आरम्भ होकर आगामी पूर्णिमा के क्षण तक (और उस क्षण को सम्मिलित करके) चलता है। परन्तु लौकिक कार्यों के लिए चांद्र मास ज्यौतिष चांद्र मास के प्रथम सूर्योदय से आरम्भ होता है। दक्षिण भारत में चांद्र मासों की गणना अमावस्या से अमावस्या तक होती है यही प्रथा पहले उत्तर में भी चलती थी। अब केवल शुक्ल पक्ष में उत्तर और दक्षिण के महीनों में एकता रहती है। कृष्ण पक्ष में उत्तर भारत में चांद्र मास का नाम दक्षिण की तुलना में एक मास आगे बढ़ा रहता है।

चांद्र मासों का नाम २७ नक्षत्रों में से चुने हुए १२ नक्षत्रों पर पड़ा है। ये १२ नक्षत्र इस प्रकार चुने गये हैं कि ये यथासंभव बराबर बराबर कोणीय दूरी पर रहें और उनमें कोई चमकीला तारा रहे। महीने का नाम उस तारे या नक्षत्र पर पड़ जाता है जहाँ चंद्रमा के रहने पर उस मास पूर्णिमा होती है। उदाहरणतः उस मास को चैत्र कहते हैं जिसमें पूर्णिमा तब होती है जब चंद्रमा चित्रा (प्रथम कन्या ऐल्फा वर्जिनिस) के पास रहता है। चैत्र को हिंदी में चैत कहते हैं।

अधिमास का लगना सौर और चांद्र मासों के संबंध पर आश्रित है। इसे समझने के लिए चांद्र और सौर मासों की लंबाइयों पर ध्यान देना चाहिए

हम जानते हैं कि एक वर्ष में लगभग ३६५¼ दिन होते हैं। इसलिए एक सौर मास इसका बारहवाँ भाग अर्थात् लगभग ३ दिन और १ ½ घंटे का होता है। यह चांद्र मास (२९½ दिन) से अधिक है। इसलिए बहुधा ऐसा होगा कि एक ही सौर मास में दो अमावस्याएँ पड़ेंगी। ऐसे अवसरों पर दो क्रमागत चांद्र मासों को एक ही नाम दे दिया जाता है। इस चांद्र मास को (अमावस्या से अमावस्या तक के समय को) अधिमास (या मलमास) कहा जाता है जिसमें संक्रांति नहीं होती। इस प्रकार उस वर्ष १३ महीने होंगे। स्पष्ट है कि चांद्र मास वस्तुतः सौर मासों के अधीन होते हैं और अधिमासों का नियम अपने-आप चांद्र मासों और ऋतुओं का संबंध बनाये रखता है यदि अंतर पड़ता है तो अधिक-से-अधिक १५ दिन इधर या १५ दिन उधर।

सूर्य विभिन्न राशियों को बराबर समयों में नहीं पार करता। कुछ सौर महीने २९½ दिन के चांद्र महीने से छोटे होते हैं। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उस छोटे सौर मास में कोई अमावस्या नहीं पड़ती। ऐसे अवसर पर एक महीना पड़ता ही नहीं परंतु ऐसा विरले अवसरों पर ही होता है।

वर्ष

समय की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण इकाई वर्ष है। आप्टेकृत अँग्रेजी-संस्कृत कोश में वर्ष के अँग्रेजी शब्द के लिए वर्ष संवत्सर वत्सर, अब्द हायन समा शरद और संवत् ये शब्द दिये हैं और इन सब शब्दों का संबंध ऋतुओं से है। वर्ष और वर्षा का संबंध तो स्पष्ट है ही संवत्सर का अर्थ है वह कालखंड जिसमें सब ऋतुएँ

यहाँ यह मान लिया गया है कि सौर मास स्वयं ऋतुओं के साथ चलते हैं अर्थात् वर्ष का मान ठीक सायन है।

अंतिम पचीस दिनों में रहती है दूसरे शब्दों में जिस महीने को ऋतु के अनुसार हमें कुआर कहना चाहिए उसे हम वर्तमान की अशुद्धि के कारण माघो कहते हैं। वेदांग-ज्योतिष के समय से तो लगभग ४४ दिन का अंतर पड़ गया है।

कुंडली

कुंडली में एक विशेष रूप से बारह घर (कोष्ठ) बना कर, सूर्य चंद्रमा और पाँच प्राचीन ग्रह तथा चंद्रकक्षा के पातों (राहु और केतु) की स्थितियाँ किसी विशेष क्षण पर, विशेषकर किसी व्यक्ति के जन्म के क्षण पर, दिखायी जाती हैं। कुंडली के बारह घर बारह राशियों को निरूपित करते हैं। ऊपरी पंक्ति के बीच वाले घर में उस राशि का क्रमांक लिखा जाता है जो अभीष्ट क्षण पर लग्न या अर्थात् पूर्वी क्षितिज को काट रहा था। इसके बाद अन्य घरों में क्रमानुसार अन्य राशियों की संख्या लिख दी जाती है (चित्र देखो)। इस प्रकार प्रत्येक घर अब उस राशि को निरूपित करता है जिसकी संख्या उस घर में लिखी है (अवश्य ही मेष को प्रथम राशि माना जाता है)। अब जिस राशि में जो ग्रह उस क्षण आकाश में था कुंडली के उसी घर में उसका नाम लिख दिया जाता है।
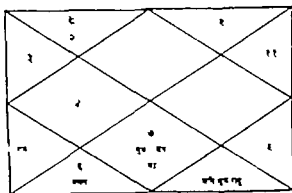
मूलन वर्ष २ ११ विकमी के आविर्भाव की कुंडली।
अम्मबलि नामक गमारुगिड निरमन कार्निंबी प्रकाशक अनुसार)

कुंडलियाँ फलित ज्योतिष में भविष्य बताने के काम में आती हैं परन्तु गणितज्ञों और इतिहासज्ञों के लिए भी ये महत्वपूर्ण हैं क्योंकि कुंडली में दी सभी ग्रह और सूर्य

आदि की स्थितियों से उस समय के दिनांक और समय का पता चल सकता है जिसके लिए कुंडली बनायी गयी थी[1]।

भारतीय पंचांग-पद्धति वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आश्रित है और इसके अनुसार चांद्र मास और वर्षारंभ दोनों ऋतु के अनुसार चलते हैं। एक दोष इसमें यह अवश्य है कि ज्योतिष में आसन्न वाली गणना स्पष्ट दिनांकों की गणना नहीं कर सकती परंतु मध्यकालीन दिनांकों की सत्यता की जाँच में यह अवगुण वस्तुतः महान गुण सिद्ध हुआ है। यह खेद की बात है कि सारा भारत एक ही पंचांग नहीं मानता परंतु इस बात का सुधार करने के लिए उपाय किया जा रहा है।

भारत सरकार की पंचांग-संशोधन समिति

काउंसिल ऑव सायंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च, ओल्ड मिल रोड, नयी दिल्ली से प्रकाशित भारत सरकार की पंचांग-संशोधन समिति की रिपोर्ट अब जनता भी खरीद सकती है। इसमें लगभग [illegible] पृष्ठ हैं और आकार बहुत बड़ा है। आरंभ में श्री जवाहरलाल नेहरू का संदेश है। भूमिका में सभापति डॉक्टर मेघनाद साहा ने बताया है कि पंचांग और सरकार में क्या संबंध है। फिर पंचांग की मोटी मोटी बातें बता कर समिति की विविध बैठकों का विवरण है। इस समिति के परामर्शों में सब सदस्य सहमत थे, केवल एक सदस्य डाक्टर दफ्तरी एक बात में नहीं सहमत हुए। उनका विचार था कि उन धार्मिक त्योहारों की गणना सायन[2] नक्षत्रों से करनी चाहिए, जिनका संबंध धर्मशास्त्रों के अनुसार नक्षत्रों से है। उनकी गणना निरयन[3] नक्षत्रों से करना अनुचित होगा। परिशिष्ट ४ में डाक्टर दफ्तरी का लिखा हुआ इस मतभेद का समर्थन छपा है। परिशिष्ट ५ में उन पंचांगों की सूची है जो पंचांग-संशोधन समिति की विज्ञप्ति के अनुसार सारे भारत से आये थे। परिशिष्ट ६ में इन सब पंचांगों के कर्ताओं का वह उत्तर है जो उन्होंने समिति की प्रश्नावली पाने पर भेजा था। इन उत्तरों से पता चलता है कि ३६ पंचांग आधुनिक रीति से बनते हैं और ६५ प्राचीन रीति से। परिशिष्ट ७ में उन सब व्यक्तियों के सुझावों का सारांश है जिन्होंने समिति को इस विषय पर पत्र लिखा था (समिति की ओर से सुझावों की

[1] कभी-कभी हिसाब में तीन दिन का अंतर पड़ सकता है, क्योंकि चंद्रमा एक राशि से दूसरे में जाने में दो दिन से अधिक समय लेता है।

[2] अर्थात् वसंत विषुव के साथ चलने वाले।

[3] अर्थात् तारों के हिसाब से स्थिर।

भी सब समाचार पत्रों में छपी थी)। इसके बाद शक १८७६ से शक १८८ तक (१९५४ मार्च से १९५९ मार्च तक) के लिए आधुनिक पंचांग हैं। इसके बाद त्यौहारों के लिए नियम विविध धर्मशास्त्रों या लोकाचारों के आधार पर बताये गये हैं। साथ में विविध प्रांतों के लिए छुट्टियों की सूचियाँ भी संलग्न हैं।

यहाँ तक की सामग्री खंड क और ख में है। इसके बाद खंड ग है जिसे डाक्टर मेघनाथ साहा और श्री निर्मलचन्द्र लाहिड़ी ने मिलकर लिखा है। इसमें विविध देशों में प्राचीनतम समय से आधुनिक समय तक पंचांग का इतिहास दिया गया है।

समिति के परामर्श निम्नलिखित हैं

(१) वर्ष ३६५.२४२२ दिन का हो। इसका परिणाम यह होगा कि ऋतुओं के हिसाब से महीने भविष्य में न खिसकेंगे। जिन महीनों में जैसा ऋतु आज रहता है वैसा भविष्य में भी बना रहेगा। जो गड़बड़ी पड़ चुकी है उसे ठीक करने की चेष्टा नहीं की गयी है। वर्षमान का बदल जाना जनता को पता ही न चलेगा क्योंकि अंतर बहुत सूक्ष्म है।

(२) भारतीय वर्ष का आरंभ वसंत-विषुव दिवस से (अर्थात् २२ मार्च से) हो। सौर महीनों का उपयोग करने वाले प्रांतों में इससे विशेष कठिनाई न पड़ेगी केवल एक वर्ष कुछ असुविधा होगी। उत्तर प्रदेश में इन दिनों हिंदू वर्ष चैत्र से आरंभ होता है जो आगे-पीछे हुआ करता है।

(३) वर्ष के दूसरे से लेकर छठे सौर महीनों में ३१ दिन रहें शेष में ३० दिन। अधिवर्षों में सातवें महीने में भी ३१ दिन रहेंगे। भारतीय प्रथा में अधिवर्ष उसी वर्ष होगा जब यूरोपीय वर्ष में अधिवर्ष (लीप इयर) होगा। यह बंगाल आदि में प्रचलित प्रथा के इतना निकट है कि वहाँ कोई कठिनाई न पड़ेगी।

(४) दिन का आरंभ मध्य-रात्रि से माना जाय।

(५) भारत सरकार का पंचांग उज्जैन के अक्षांश और ग्रिनिच से ५½ घंटा पूर्व देशांतर के लिए बना करे।

(६) शक वर्षों का प्रयोग किया जाय।

५ प्रहचार निबंधन—ग्रंथकार हरिदत्त।
के वी शर्मा द्वारा संपादित मद्रास १९५४।

६. महाभास्करीय—ग्रंथकार भास्कर प्रथम (६२९ ई)।
मूल और परमेश्वर कृत संस्कृत टीका संपादक बी डी आप्टे, पूना १९४५।

७. लघुभास्करीय—ग्रंथकार भास्कर प्रथम (६२९ ई)।
मूल और परमेश्वर कृत संस्कृत टीका संपादक बी डी आप्टे, पूना १९४६।

८. ब्राह्मस्फुटसिद्धांत—ग्रंथकार ब्रह्मगुप्त (६२८ ई)।
मूल और स्वयं ग्रंथकार कृत संस्कृत टीका संपादक सुधाकर द्विवेदी बनारस १९ २।

९. खंडखाद्यक—ग्रंथकार ब्रह्मगुप्त (६६५ ई)।
(क) मूल और पृथूदक कृत संस्कृत टीका संपादक पी सी सेनगुप्त कलकत्ता १९४१।
(ख) मूल और आमराज कृत संस्कृत टीका संपादक बबुआ मिश्र कलकत्ता १९२५।
(ग) अंग्रेजी अनुवाद पी सी सेनगुप्त कलकत्ता १९३४।

१ शिष्यधीवृद्धिद—ग्रंथकार लल्ल।
सुधाकर द्विवेदी द्वारा संपादित बनारस १८८६।

११ लघुमानस—ग्रंथकार मंजुल (९३२ ई)।
(क) मूल और परमेश्वर कृत संस्कृत टीका संपादक बी डी आप्टे, १९४४।
(ख) अंग्रेजी अनुवाद, एन के मजूमदार, कलकत्ता १९५१।

१२ महासिद्धांत—ग्रंथकार आर्यभट द्वितीय (लगभग ९५ ई)।
मूल और स्वयं ग्रंथकार कृत संस्कृत टीका संपादक सुधाकर द्विवेदी बनारस १९१ ।

१३ राजमृगांक—ग्रंथकार किंवदंती के अनुसार राजा भोज (१ ४२ ई)।
संपादक के माधव कृष्ण शर्मा आधार, १९४ ।

१४ सिद्धांत-शेखर—ग्रंथकार श्रीपति (लगभग १ ३९ ई)।
संपादक बबुआ मिश्र संस्कृत टीका सहित अक्षत मक्कि भट्ट कृत और अंशत संपादक कृत कलकत्ता १९३२, १९४७।

१५ करण-प्रकाश—ग्रंथकार ब्रह्मदेव (१ ९२ ई)।
मूल और संस्कृत टीका सुधाकर द्विवेदी बनारस १८९९।

१६ भास्वती—ग्रंथकार शतानंद (१०९९ ई०)।
मूल और स्वयं ग्रंथकार कृत संस्कृत तथा हिंदी टीकाएँ, संपादक एम पी पांडे बनारस १९१७।

१७ सिद्धांत-शिरोमणि—ग्रंथकार भास्कर द्वितीय (११५ ई)।
(क) बापू देव शास्त्री द्वारा संपादित और गणपति देव शास्त्री द्वारा संशोधित बनारस १९२९।
(ख) भाग १ मूल और गणेश दैवज्ञ कृत टीका संपादक वी डी आप्टे, पूना १९४३।
(ग) भाग २, अंग्रेजी अनुवाद एल विल्किन्सन कलकत्ता १८६१।
(घ) हिंदी अनुवाद, गिरिजा प्रसाद द्विवेदी लखनऊ, भाग १ (१९२६) भाग २ (१९११)।

१८ करण-कुतूहल—ग्रंथकार भास्कर द्वितीय (११५ ई)।
मूल और सुमति हर्ष कृत टीका संपादक माधव शास्त्री बंबई, १९ १।

१९ यंत्रराज—ग्रंथकार महेंद्र सूरी।
मूल और मलयेन्दु सूरी कृत टीका संपादक कृष्णशंकर केशव शर्मा रैक्व बंबई, १९३६।

२ गोलदीपिका—ग्रंथकार परमेश्वर (१४३ ई)।
संपादक टी गणपति शास्त्री त्रिवेंद्रम १९१६।

२१ राशिगोलस्फुटानीति—ग्रंथकार अच्युत।
मूल और संस्कृत टीका के वी शर्मा अडयार, १९५५।

२२ सिद्धांत-दर्पण—ग्रंथकार नीलकंठ (समय १५ ई)।
मूल तथा अंग्रेजी अनुवाद, के वी शर्मा अडयार, १९५५।

२३ ग्रहलाघव—ग्रंथकार गणेश दैवज्ञ (१९४५ ई)।
मूल और मल्लारि कृत विश्वनाथ कृत तथा अपनी टीकाएँ सुधाकर द्विवेदी बंबई, १९२५।

२४ सिद्धांत-सार्वभौम—ग्रंथकार मुनीश्वर।
संपादक मुरलीधर ठाकुर, बनारस १९३२, १९३५।

२५. सिद्धांत-तत्व-विवेक—ग्रंथकार कमलाकर।
  (क) संपादक सुधाकर द्विवेदी बनारस १८८५।
  (ख) मूल और संस्कृत टीका भाग १ कलकत्ता, १९२८ भाग २, भागलपुर, १९३५ भाग ३ बनारस १९४१।

अन्य ग्रंथ

१ गणक-तरंगिणी—सुधाकर द्विवेदी बनारस १८९२।
२ बृहत्संहिता—वराहमिहिर कृत—मूल और भट्टोत्पल कृत संस्कृत टीका सहित सुधाकर द्विवेदी बनारस १८९५, १८९७।
३ सिद्धांत-दर्पण—चन्द्रशेखर सिंह कृत—योगेशचंद्र राय।
४ भारतीय ज्योतिषशास्त्र (मराठी में)—शंकर बालकृष्ण दीक्षित पूना १९११।
५. एनशेन्ट इंडियन मैथिमैटिक्स एंड वेद—एस बी दीक्षित, पूना १९४७।
६. हिंदू ऐस्ट्रॉनोमी—जी आर के।
७ ऐस्ट्रोनोमिकल ऑबज़रवेटरीज़ ऑफ जयसिंह—जी आर के।
८. दि जयपुर ऑबज़रवेटरी एँड इट्स बिल्डर—आर ई गैरट।
९. गाइड टु दि ऑबज़रवेटरीज़ ऑफ जयसिंह—जी आर के (१९२)।
१ ऐस्ट्रोलोजी, ऐस्ट्रोलोजी एंड मथिमटीक (जरमन में)—जी थीबो।*

---

*संपूर्ण सूची डाक्टर कृपाशंकर शुक्ल की कीतिल से संकलित।

अनुक्रमणिका